नै मु न्ना

[गांधीवादी परम्परा का एक राजनैतिक उपन्यास]

लेखक

शिवचन्द्र

किताब महल

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १६४५

मुद्रक—बी० एल० वारश्नी, वारश्नी प्रेस, इलाहाबाद

परिभाषा

चेतना और जीवन का एक दूसरे से बड़ा गहरा सम्पर्क है। घटना की तीव्रता में भी इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है, विशेष कर निम्न वर्ग से उठे हुये शिष्ट या मध्य वर्ग के लिये। वातावरण की प्रतिकूल-परिस्थिति के बीच शिष्ट वर्ग (आज का) अपनी चेतना, अपने जीवन पर सोचने के लिये विवश हो उठा है। और ठीक इसके विपरीत श्रमिक या निम्न वर्ग को इन पर सोचने नहीं आता या वह इसकी ज़रूरत ही महसूस नहीं करता। उसकी पृथक् अपनी एक गति है, धारा है, जिसमें वह बहा जाता है, यह बहा जाना, उसकी एक आदत-सी हो गई है। सीमित नितान्त परिमित ज्ञान के लिये वह प्रसिद्ध है। Middle class (मध्य वर्ग) को अपनी बुद्धि पर भरोसा है, शायद इसी-लिये बौद्धिक ज्ञानार्जन के निमित्त वह अनेकों प्रबल प्रयत्न या प्रयास करता है। यद्यपि आज बुद्धिवादी होता हुआ भी वह मस्तिष्कशून्य प्रमाणित हो रहा है। उसे जैसे अब लग रहा है, निपट, निरर्थक, घिनौना जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। अपनी उपयोगिता सिद्ध करने के लिये मानो उसके पास कोई साधन नहीं, कोई आरगूमेण्ट, कोई दलील नहीं। और अब तर्क-वितर्क के इस संघर्ष के युग में सिर्फ थोथी दलील से भी तो काम नहीं चलने का। घण्टों, मासों, वर्षों सोचते-विचारते रहने पर भी वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाता। काठ को लोहा सिद्ध करने की मूर्खता का परिणाम वह देख चुका है। विश्व अपने सतीक्ष्ण नेत्रों एवं कानों से काम लेने लगा है, यह उसे भी विदित हो गया है। तर्क का दूसरा नाम झूठ है, शिष्ट समाज ने यह घोषित कर दिया है। इस घोषणा से वह और त्रस्त, संकुचित हो गया है। जब अपने आप को सोचता है, देखता है, ढूँढ़ता है, तब पाता कुछ नहीं, हाँ, एकदम नहीं। वह विशाल अश्वत्थ वृक्ष का खुढ़ला, उसमें खोखलापन मात्र है। अपनी त्वचाओं, धम-नियों, रगों में वह कड़क नहीं पाता। एकदम वह कमजोर हो गया है। बहुत हुआ तो हाथ-पैर हिलाने पर बड़ी कड़ी मेहनत (बुद्धि सम्बन्धी) के बाद उदर-पूर्त्ति कर लेता है और पशुवत् महत्त्वरहित, अपूर्ण, असन्तुष्ट जीवन बिता

लेता है। सोचना-समझना आ जाना क्या है, अपने को विनष्ट करना है। निम्न वर्ग इस सोचने-समझने से दूर है, अतः अपने आप में वह पूर्ण है, सन्तुष्ट है। तथा कथित प्रगतिवादी समालोचक यह भूल गया है कि दयनीय, शोचनीय जीवन उसका नहीं, मध्य वर्ग का है। इन्हीं दो विपरीत, प्रतिकूल वातावरण के कारण वर्गी करण को कदाचित् प्रश्रय दिया गया जो राष्ट्र से अधिक सम्बन्धित है। क्रूरता, नृशंसता से बहुत दूर गान्धीवाद का सिद्धान्त कहता है, भारतीय प्रत्येक समाज को (चाहे वह निम्न वर्ग का हो या मध्य वर्ग का) भूख का ज्वाला शान्त करने के लिये कई यातनायें सहनी पड़ती हैं। नमक, लकड़ी, चावल, दाल की समस्या सब को हल करनी पड़ती है; इसमें बँटवारा काहे की। और इसी को साहित्य में स्थान देना, मेरे जानते, उसके आगे विराम देना है। ऊहा-पोह के इस जीवन में मध्य वर्ग घबरा उठा है। सोचने-विचारने के मूड में रहते-रहते जैसे अकुला गया है। इसलिये इसको भी प्रश्रय मिलना चाहिये। यहाँ ही-भी का प्रश्न है जो अत्यन्त सुस्पष्ट है। इज्म की भावना से अभिप्रेत हो वाद-विवाद वितण्डावाद में जान बूझ कर डाल कर आधुनिक साहित्यिकार किसी एक वर्ग को ले कर साहित्य-सर्जना करेगा, तो मेरे जानते एक सीमान्त रेखा में ही उसे रह जाना पड़ेगा। विस्तीर्ण की जगह सङ्कीर्ण साहित्य की सृष्टि होने लगेगी जिसमें स्थायित्व कदाचित् नहीं रहेगा। विश्व के प्रान्त-विप्रान्त की संस्कृति सभ्यता में विभिन्नता एवं विच्छिन्नता रहती है। इसलिये अविचारे कोई एक दूसरे का अनुज नहीं बन सकता। सर्वत्र की परिस्थितियाँ एक-सी नहीं हो सकतीं। रूस के सोशलिज्म-कम्युनिज्म से प्रभावित हो कर साहित्य-सृष्टि करने वालों को पहले यह सोच लेना होगा कि भारतीय समाज की कैसी परिस्थिति है। यदि सम्मिलित स्वर से सभी गान्धीवाद को प्रत्यक्ष, मूर्त्तिमान् स्वीकार कर कहें कि रूस की तरह किसी वृक्ष को जल की जगह खून से सींचना हमें इष्ट नहीं, तो! इस का तो उत्तर देने में शायद उन्हें समय लगे। जिसकी नींव तलवार के जोर पर पड़ेगी, उसकी रक्षा करने के लिये तलवार की ही जरूरत होगी। आम्र-वृक्ष भी यदि खून से सींचा गया तो सत्य है, उसका फल भी उपयोगी नहीं सिद्ध होगा। गङ्गा की सुफेद-नील जल-

धारा से प्यास बुझ सकती है, सन्तुष्टि मिल सकती है। परन्तु मानवीय नृशंसता के परिणाम में रक्त-धारा से कदापि नहीं। परिस्थिति के प्रतिकूल प्रवाहित होने का हमें परिणाम सोच लेना होगा। नागरिक छलना युक्त-प्रवृत्ति (जो पश्चिम की है) वाले लोग प्राचीन संस्कारों को कल्मष, दूषित, नितान्त हेय प्रमाणित करने के लिये आतुर हैं, परन्तु ऐतिहासिक प्रौढ़ ज्ञान रखने वाले जरा एकान्त में इस पर सोचेंगे तो बिना प्रयास ही उन्हें विदित हो जायगा, प्राचीन सब नहीं तो कुछ ही सही ऐसे भी संस्कार हैं जो किसी भी समय, किसी भी परिस्थिति में, किसी भी युग में अनुकरणीय प्रमाणित होंगे। उनकी उपयोगिता सिद्ध करने के लिये प्रमाण भी ढूँढ़ने की जरूरत न होगी। रूढ़ि को ध्वस्त-ग्रस्त कर आगे बढ़ने का वे प्रयास करें, पर जरा कामा दे कर, विराम दे कर। यदि फूँक-फूँक कर रास्ता तय करना उन्हें इष्ट नहीं तो उनकी गाड़ी की रफ़्तार तेज़ ही रहे। सम्भव है, अति तीक्ष्णता का परिणाम उनकी आँखें देख लें, भीषण दुर्घटना। उनकी यह भ्रान्तिपूर्ण धारणा अनुचित है कि वे समझने लगे हैं, प्राचीन संस्कारों पर विश्वास करना, अपनी अन्ध प्रज्ञा का द्योतक या सूचक है। साम्य-वादी भित्ति सुदृढ़ करने के प्रयास के पूर्व उन्हें सोचना चाहिये रूस या अन्य प्रान्तों के active workers की कैसी कब परिस्थिति थी। उनके और इनके विचारों-आदर्शों में क्या अन्तर है। यहाँ कुछ कह सकते हैं, यह Chronologist का कार्य है, मेरा नहीं। पर उनका यह कहना, पलायन-प्रवृत्ति की सूचना देना है। बुद्धि को प्रधान मान कर भी उससे काम न लेना, मूर्खता है। किसी स्वरूप निश्चय पर तो ऐसा कहना या करना पड़ता है। प्रश्न के उत्तर से भागने के प्रयास का यह अर्थ हुआ कि मनुष्य अब तक सत्य की जगह असत्य को ही घर बनाये हुये था। यह तो मान्य ही है कि severe reproof (तीव्र भर्त्सना) किसी भी वर्ग को असह्य है, और इसके बहिष्कार का प्रयास स्तुत्य है। किन्तु इतने के लिये उतना करना व्यर्थ निरर्थक है। एक दूसरे के विपरीत कुछ खड़ा करने के पूर्व सोच लेना, अपनी बुद्धिमता का द्योतक है, न कि मूर्खता का। साहित्यिकार इन्हीं सब सिर्फ सीमाओं में अपने को उलझा देगा तो एक ऐसा युग आयेगा जिसे उपर्युक्त सीमा में स्थित

साहित्य से विरक्ति होगी। और जहाँ तक मेरा अनुमान है, अर्थ में सच्चा साहित्यिक कभी भी offensive (विरक्तिकर) साहित्य-सृष्टि के पक्ष में नहीं रहेगा। Heart touching literature (मर्मस्पर्शी साहित्य) का यह अभिप्राय नहीं कि अकेले के एक की सीमा को लक्ष्य मान कर वहीं तक पहुँचने का हम प्रयास करें। इसका, उसका, तीसरे तक के वातावरण को लख कर ही साहित्य-सर्जना होनी चाहिये, वह भी मर्मस्पर्शी सिद्ध हो सकती है। नेतृत्व करने की दृष्टि से जो वर्ग निमित्तक साहित्य-चिन्तन में निमग्न हैं, उन्हें सोच लेना चाहिये कि कोई भी नेता या महाजन, महा पुरुष स्वयं अपने निर्धारित मार्ग पर चलने में असमर्थ रहता है। व्यवहार-कुशल सभी नहीं हो सकते। सिद्धान्त-निरूपण में भी वे कभी-कभी भयङ्कर भूल कर बैठते हैं। शोभालाल गुप्त ने भी साम्यवादी स्वरूप पर विचारते हुये लिखा है:—'महापुरुष किसी व्यवसाय को कुशलतापूर्वक चलाना नहीं जानते।* सामन्तवाद के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करने वाले भी अपना विशिष्ट महत्त्व रख सकते हैं किन्तु उसे जामा पहना कर वैज्ञानिक शब्द से सम्बोधित करने का विफल प्रयास न करें, जो रूस की एक विशेष प्रवृत्ति है। आन्दोलन या काण्ड के पर्यवसान या परिणाम पर बिना सोचे ही किसी की नकल करने की प्रवृत्ति विनाशमूलक सिद्ध होती है। निष्कर्ष के पूर्व विचारों का तह पर तह रहना अनिवार्य है। किन्तु भूलना नहीं होगा कि किसी भी दशा में विचार से व्यवहार का कम महत्त्व नहीं रहता है। 'फ्रेड्रिक एन्जील्स' और 'कार्ल मार्क्स ने विचार' विमर्श कर क्रान्तिकार आन्दोलन वाला घोषणा-पत्र प्रस्तुत किया, पर व्यवहार शब्द से वे विशेष परिचित कदाचित् न थे। प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'हौक्सले' के सिद्धान्त से वे दूर थे, फिर भी 'उन्होंने साम्यवाद को वैज्ञानिक जामा पहनाने की कोशिस की है।'† परिस्थिति जब सुधर-सी गई, और जब अपने जानते वे उत्तरोत्तर विकास-सोपान पर अग्रसर होते गये, तब भी उन्हें स्मरण नहीं रहा कि 'विचार और व्यवहार

---

*समाजवाद: पूँजीवाद पृ० १८३

† ,, ,, ,, ,,

दो अलग-अलग चीजें हुआ करती हैं।'* वैसी परिस्थिति में भारतीय समाज की अनुकरण-प्रवृत्ति कहाँ तक उचित है, सोचा जा सकता है।

जन वर्ग आन्दोलन से प्रभावित होकर गान्धीवाद के सिद्धान्त को समक्ष रख कर प्रेमचन्द्र जी ने वैसे उपन्यास का निर्माण किया जो मध्य वर्ग की मनोवैज्ञानिक-परिस्थिति से सर्वथा दूर रहा। उनके पाठक आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास को पढ़ने में शायद असमर्थ रहेंगे। 'शेखर एक जीवनी, सन्यासी, पर्दे की रानी, परख, दिन के तारे, को समझने का उन्हें प्रयास करना होगा।' सच्चे अर्थ में मनोवैज्ञानिक उपन्यास में तो उसका मन एकदम नहीं रम सकता। पर्दे की रानी, प्रेत और छाया, के लिए तो मध्यवर्गीय शिष्ट पाठक को भी श्रम करना पड़ेगा; चूँकि इनके मनोवैज्ञानिक धरातल बहुत ऊँचे हैं। इन्हें भी प्रगतिशीलता की संज्ञा दी जा सकती है, किन्तु प्रगति के उन तत्त्वों से ये कदापि निर्मित नहीं हैं जो एक सीमा में ही अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ये Repulsive literature (विमुख-साहित्य) के प्रबल विरोधक हैं। इनके विचार से Inner feeling (अन्तः प्रवृत्ति) को भी साहित्य में स्थान देना अनिवार्य है जो साम्यवादी प्रगतिवादी सिद्धान्त के पृष्ठपोषकों को किसी भी प्रकार से स्वीकार नहीं है। आभ्यन्तरिक प्रवृत्ति से निम्न वर्ग चूँकि अनभिज्ञ हैं, इसलिए वे इसकी आवश्यकता अनुभव नहीं करते। किन्तु सूक्ष्म सिंहावलोकन पर उन्हें ज्ञात होगा, मार्क्सियन सिद्धान्त के किसी कोने में भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अवश्य ही महत्त्व रखेगा। सिर्फ प्रगति का मैं भी प्रेमी हूँ, पर जान-बूझ कर सर्वत्र प्रगतिशीलता ढूँढ़ने की मूर्खता नहीं करता। शब्दतः प्रगति का अर्थ प्र+गम्+क्तिन, ही सब भावों का पूरक है। प्रगतिशील अर्थ व्यापक है, जो सीमा में नहीं रखा जा सकता। मानव, मनोविज्ञान की तुला पर तौलने योग्य एक उपन्यास का प्रधान पात्र (हीरो , कहा जा सकता है। उसका ढाँचा तभी खड़ा हो सकता है जब कोई विचार या विवेक से कार्य ले। प्रत्येक युग की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं। भीषण

---

*समाजवादः पूँजीवाद पृ० १८३

नर-संहार के द्वन्द्व संघर्ष के इस युग में परम्परा के अनुसार इतिहास की दृष्टि से आज का सत्य कल के असत्य के रूप में भी परिणत हो सकता है; यदि इसमें कुछ जीवित रह सकता है तो वह है, सर्वमूल परिचालन-शक्ति एक अन्तः अज्ञात चेतना, जो विदित, अविदित परिस्थिति में भी अपना कार्य किये जाती है, स्वतः अनायास ही, अपनी गति से। वह अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। इससे दूर अपने को कहने वाला एक प्रवञ्चक है जिसकी वृत्ति दूषित एवं कलुषित है। भारतीय हिन्दू-संस्कार में भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण निहित है, किन्तु पाश्चात्य सांस्कृतिक अध्ययन कर्त्ता चूँकि इस संस्कार से अनभिज्ञ है, अतः मुँह फट की तरह बहुत कुछ बकाया कहा करता है। योरप के मनो-विज्ञान से यहाँ का मनोविज्ञान विशेष महत्त्व नहीं रखता, यह कहना अनुचित एवं असङ्गत होगा। प्रकृति के प्रत्येक प्रान्त में इसका व्यापक प्रभावपूर्ण साम्राज्य है, इससे दूर कोई रह नहीं सकता। इस साम्राज्य का कोई भी सिद्धान्तवादी व्यक्ति यह नहीं कहता कि मैं जो कुछ कहूँगा, पत्थर की लकीर होगा। और न वह यही कहता कि 'अहमेव सर्वं'। ठीक इसके विपरीत वे अपने को मानते या कहते हैं।

अस्तु, प्रस्तुत उपन्यास 'तैमुन्ना' का दृष्टिकोण भी मनोवैज्ञानिक ही है। अन्तस्तल प्रवृत्ति का चित्रण मनोवैज्ञानिक ही ढंग से किया गया है। जीवन के चक्र-कुचक्र का परिणाम कहाँ तक संगत है. यह मैं नहीं कह सकता, परन्तु मध्य वर्ग की पुरुष-प्रवृत्ति के स्वरूप निश्चय पर मैंने ध्यान दिया है। राष्ट्रीय विचार धारा को एकत्र बाँधने का प्रयास सम्भव है, किसी की दृष्टि में अनुचित जँचे। पर मेरे जानते, सामाजिक जीवन के स्तर से ऊपर उठने पर स्पष्टतः ज्ञात होगा, मेरा यह प्रयास स्तुत्य नहीं तो हेय भी न होगा। घटना, सिनेमा की रील की भाँति दौड़ती हुई दृष्टि गोचर नहीं होगी। पाठक को रुक-रुक कर शायद दुहरा कर भी पढ़ने का प्रयास करना पड़े। 'रमेश' यदि राष्ट्र का अग्रदूत है, तो 'अशोक' समाज का शान्त स्वरूप। 'अमरावती' में उद्वेग है तो चढ़ाव-उतराव भी; लीला में इसका सर्वथा अभाव है। हाँ, इन सब से हट कर 'तैमुन्ना' एक विलक्षण नारी है जिसके विरोध में हर समय विवशता मुँह बाये खड़ी है।

ये सभी बुद्धि से प्रभावित हैं। इनकी आन्तरिकता या मनोवैज्ञानिकता एक विचित्र ही प्रकार की है। मैंने इन्हें पृथक्-पृथक् सिद्धान्त के रूप में उपस्थित किया है।

पुरुष-प्रवृत्ति मध्य वर्गीय) बड़ा उग्र है। परिस्थिति के अनुकूल बना लेने का वह प्रयत्न करती है, पर क्षणिक ही। प्रवञ्चना-शक्ति उसमें प्रबलता से व्याप्त है। उसे अपनी स्वाभाविक दुर्बलता पर यह सोचने का तनिक अवसर नहीं देती। नारी के हृदय में अपने प्रति करुणा की सजग भावना उभाड़ कर पुरुष अपना स्थान बना लेता है। यह उसकी एक बहुत बड़ी ध्वन्समूलक प्रवृत्ति है जो आगे चल कर भयंकर विनाशकर प्रमाणित होगी। द्वन्द्व युद्ध में हारते जाने को जीतते जाना समझना, अपने को अस्तित्वरहित सिद्ध करना है। 'त्रला' होना जाने कैसे पुरुष भी सीख गया! इस समय वही सागर की लहरी प्रमाणित होने लगा, और नारी उसकी समस्त गम्भीरता ढोने लगी। अपनी उत्तप्त आकांक्षा की पूर्ति के लिये ही वह सतत जागरुक रहता है, मानवता की भिति सुदृढ़ करने की उसे फिक्र नहीं। आधुनिक पुरुष-नारी की दो शब्द में यही व्याख्या हो सकती है कि पुरुष पर्यायवाची शब्द में 'नव दो ग्यारह' हैं, तो नारी 'छः पाँच' हैं। सारांश यह कि स्वार्थ साधना के पश्चात् वह भाग खड़ा होना जानता है और नारी छः पाँच में पड़ी रह जाती है। इस विवशता की ओर भी मेरा पर्याप्त संकेत है। यवन-हिन्दू को मैंने चाहा है, ये हम-तुम को दूर फेंक कर कब्र में सोने और चिता में भस्म होने की प्रवृत्ति का आश्रय न लें; और भेद-भाव को भूलते हुए एक ही पताका फहरायें।

तिलक कुटीर,
छपरा
११-५-६४

शिवचन्द्र

तैमुन्ना

१

गङ्गा की धारा अविराम गति से बह रही थी। पश्चिम की धूमिल रक्तिम-रेखा, उसमें पड़ कर सोयी प्रकृति के वैधव्य की याद दिला रही थी। नीरव आह्वान हो रहा था। सृष्टि की विलक्षणता में सन्ध्या का बहुत बड़ा स्थान है। उस आह्वान में इसी सन्ध्या की हूक थी। मानव चाहता है, और चाहेगा, यह सन्ध्या मेरे जीवन में कभी नहीं आये। यों तो यह सन्ध्या साहित्य की एक अनमोल वस्तु है। भावना का प्रवाह है। इसमें चञ्चलता इस सन्ध्या का सबसे बड़ा दोषी है। किन्तु जाने क्यों—कभी-कभी इसकी इस गम्भीर दुःखद प्रकृति पर क्लेश होता है। तैमुन्ना को भी रह-रह कर दुःख हो आता है। प्रति सन्ध्या को वह इस प्रकार देखती मानो कोई उलझी समस्या हो। आँखें न जाने कैसे स्थिर कर लेती कि सन्ध्या हो आई। वे कभी भूल नहीं करतीं, इस विषय में। उसके नैतिक कार्यों में यह भी एक प्रधान कार्य था। प्रातः उठते ही वह सन्ध्या की अँगड़ाइयाँ लेती। दिन भर कई कार्यों में व्यस्त रहती, पर सन्ध्या में बड़े गर्व के साथ उन्नत, उद्ग्रीव, उद्वक्षोज हो गङ्गा की निस्तब्ध धारा के समीप जाती। और उसमें पैरों को डाल कर, जलकी छींटों से खेलती। इस प्रवृत्ति पर उसकी अम्मा ने कितनी बार खीझ प्रकट की है। पर अल्हड़ तैमुन्ना पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। उसका अब्बा रहता तो कुछ कहता किन्तु, वह उसे पाटल की कली-सी छोड़ कर वहाँ चला गया, जहाँ तैमुन्ना की स्मृति उसी धूमिल सन्ध्या-सी विराजती रहती।

इस समय भी वह उसी गङ्गा की धारा में पैरों को डाल कर जाने क्या सोच रही थी। यौवन की उच्छृङ्खलता उसमें पूर्ण रूप से व्याप्त थी। परन्तु सरलता

की इतनी अधिकता थी कि अनाचार नहीं होने पाता था। यों तो आज के युग में यौवन एक महा पाप है, पाखण्ड है, विशेष कर नवोढ़ा का। सखियों से सुहागरात को चर्चा तैमुन्ना ने सुनी थी। पति के प्रेम को सुनकर उसे रोमाञ्च अवश्य हो आता था। सोचती थी, अल्लाह, एक दिन मुझे भी वह जौहर दिखायेगा, जो मेरे लिए जेवर साबित होगा; वह नूर देगा जो मेरे गले का हार होगा।

सन्ध्या वेला में ये विचार और तीव्र हो जाते तथा वह भविष्य का सुख-स्वप्न देखने लगती। थी तो एक गँवारू लड़की, पर रहती थी एक नगर की तितली-सी। माँ चने-चने की मुहताज बनी फिरती थी, किन्तु इस तैमुन्ना की हर एक साध को पूरी करती। भाई था, किन्तु पहले सिरे का अवारा। तैमुन्ना को इसकी फिकर भी न थी। वह तो मस्त रहती, मदमाती हवा में बहती रहती। आस-पास के युवक भौंरे-से मड़राते रहते, इसका वह अर्थ ही नहीं समझती, या समझ कर भी धीरे से सकुचाती-सी विहँस कर रह जाती। उसकी भावना बिलकुल पवित्र थी। उसके उद्दाम यौवन में जोर का बवंडर था; भीषण आँधी थी, किन्तु कालुष्य भावना का उसमें आरोप न था। उसके लिए हिन्दू-मुसलमान में कोई अन्तर न था, या इसकी भावना का कभी सञ्चार ही नहीं होता। क्योंकि राजनैतिक वातावरण, तथा राष्ट्रीय समस्या से बहुत दूर उसका जीवन बीता है। हृदय से सबका भला सोचती है। मानव-मानव ही रहे, यही उसके सारे विचारों का निष्कर्ष है। दानवता के द्वन्द्व में वह कदापि पलना नहीं चाहती। यद्यपि ईद मानती थी, परन्तु होली में भी उमङ्ग का रङ्ग घोलकर फाग खेलने से नहीं हिचकती थी।

रात के आरम्भ में एक छोटी गली में, हाथ में प्रदीप लिये तैमुन्ना यह चिल्लाती आती थी कि अबे हलीम, केका मुर्गा है रे, देख तो, बिल्लों ने चाँप दिया। खुदा जानता है, मैं परेशान हो गई, पर मुए ने नहीं छोड़ा। जरा हिमाकत तो देख, हाँ, हाँ, करती ही रह गई, मगर मरदूद ने नहीं माना। और न जाने मुर्गावाला भी यों कहाँ बेखबर सो रहता है कि किसी की फिकर ही नहीं करता।—बिना जबान बन्द किये वह बकी जा रही थी कि एक सम्भ्रान्त युवक

से भिड़ गई। रात घनी थी। किसी ने किसी को नहीं देखा। प्रदीप का शीशा चकनाचूर हो गया था। युवक को ग्लानि हो रही थी। वह चाहता था, यह घटना यही इसी अन्धकार में छुप जाय या विलीन हो जाय। और तैमुन्ना को दूसरा ही सूझता था। वह सोचती थी गलती से बेचारे को कितनी ग्लानि होती होगी। उसने कहा, कोई बात नहीं; किन्तु जरा संभल कर चलना चाहिए था। आज कोई दूसरा रहता तो . ...।

युवक को तिनके का सहारा मिला। उसने भी दबे स्वर में यह कहने का साहस किया कि आप बड़ी भली हैं, भोली भी। गलती माफ करें।

'या खुदा, इसमें माफी की कौन बात, आखिर इन्सान ही से तो गलती होती है।'

युवक अपने ऊपर खीझता हुआ उठा और चल पड़ा। उसके मनमें तैमुन्ना के प्रति बड़ी स्वच्छ भावना हो आयी। सोचने लगा, कितनी सरल स्वभाव की है; यदि दूसरा कोई रहता तो आज सब कुछ हो जाता। किन्तु यह कितनी समझदार है, कहती है, गलती इन्सान ही से होती है। क्या ही अच्छा होता, सभी समझदार ही होते। विश्व में यदि ऐसे दो-चार व्यक्ति भी हों तो राष्ट्र का बड़ा कल्याण होगा। सभी एक दूसरे से सहानुभूति रक्खेंगे, फिर एकता का सूत्र बँध जायगा और भ्रातृत्व भावना का अखण्ड साम्राज्य भी स्थापित हो जायगा, जिससे कोई प्रतिद्वन्द्विता में जीत न सकेगा। मानव में मानवता का सञ्चार होगा। वे समझने लगेंगे मेरा भी कुछ कर्त्तव्य है, मेरा भी कुछ ध्येय है; लक्ष्य है। यों ही केवल पशुता का नग्न नृत्य करने के लिए ही मेरा जन्म कदापि नहीं हुआ। जन्म-भूमि के प्रति भी मेरा कुछ कर्त्तव्य है।

उधर तैमुन्ना हँसती हुई, और यह सोचती हुई चली जा रही थी कि कितना भोला युवक था, शर्म के मारे उसका क्या होता होगा। आह, जरा उसका दिन में चेहरा देखती! समझता होगा, मैं उसे कुछ कहती, करती, शायद गाली भी देती, धत् तेरे की, भला तैमुन्ना ऐसा कर सकती थी!

उस दिन दोनों यों ही विचार-कल्पना में विचरते रहे। फिर प्रातः यह सोचते हुए उठे कि क्या ही अच्छा होता, एक दूसरे को देखते! हृदय की विचार-

धारा में बस ये ही दो वाक्य उठते, क्या ही अच्छा होता, एक दूसरे को देखते ! तैमुन्ना के हृदय में पहले-पहल एक कम्पन-सा हुआ, एक गुदगुदी-सी हुई। रह-रह कर विचित्र विचार श्रृंखला में उलझ पड़ती। उसके यौवनारम्भ में युवक ने एक बहुत बड़ी उथल-पुथल मचा दी। यहाँ तक कि आज सान्ध्य-प्रकृति के मनोहर दृश्य में भी रात की वही घटना, वही युवक के शब्द ! तट पर वह गयी किन्तु गङ्गा की धारा में आज गति न थी। शायद उसका सूना प्रान्त था, अतः वह ऐसा अनुभव करती हो। जाने कितने घंटों तक वह पैरों को धारा में डाले रही, जड़ता उसमें समा गयी थी। कभी खूब हँसती, कभी निस्तब्ध नितान्त नीरव प्रकृति संसार में दूर तक अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को, जो भावनाओं का केन्द्र थीं, फैलाती, पर सिवा युवक के आकार-प्रकार के कुछ नहीं पाती। वह कभी-कभी यह भी सोचती, अब युवक से भेंट नहीं होगी, वह कभी मुझे नहीं मिलेगा। मिलेगा भी तो पहचानेगा कैसे ! या अल्लाह, वह शख्स मुझे पहचान पाता। मैं उसे देख पाती। जिन्दगी में उसकी सूरत न भूलती। उसकी याद में ही मेरी कब्र होती, दुनिया की निगाहों में बला से गिरती, सुख की दरिया में तो बहती। मुआ रात का चिराग भी गुल हो गया। कम्बख्त ने जाने कब का कैसा बदला लिया। बड़ा कसाई है।

बहुत देर तक यों ही वह बकती रही, फिर बड़ी रात में आयी और युवक की याद में करवटें बदलने लगी। दिल में बेचैनी भरी थी, उसको दूर करने के लिए कोई उपाय ढूँढ़ती; पर परिणाम में बेचैनी घटने के बजाय बढ़ती ही गई। हाँ, युवक के आकार-प्रकार की कल्पना के समय उस बेचैनी को अवश्य ही भूल-सी जाती। कभी इस विचार से खीझ उठती कि आखिर मैं किसी की याद क्यों करूँ ! फिर दूसरे ही क्षण यह विचार उसे झकझोड़ता कि एक भोले युवक को याद नहीं करना तो भूल जाना भी कौन न्याय की बात है। ऐसे ही कई विपरीत विचारों से लड़ती रही, लड़ती ही गई। किन्तु प्रातः अम्मा के जगाने पर ही जगी, जब कि चारों ओर सूर्य की किरणें फैल चुकी थीं। वह कुछ बिखरे स्वप्नों को लेकर इस प्रकार उलझी थी कि उसे कुछ याद ही न रहा। दैनिक कार्यों का ताँता भी टूटने-सा लगा। अम्मा की बातें उसके

कानों तक पहुँचते-पहुँचते हवा हो जातीं। उसकी इस प्रकृति के कारण अम्मा कई बार बिगड़ भी चुकी है। और तैमुन्ना, तुम्हें हो क्या गया! इस तरह खो-सी क्यों गई। परन्तु बेसुध तैमुन्ना ने इसके उत्तर में चुप्पी ही साध रक्खी है। कभी-कभी इस पर सोचती भी, हाँ, मुझे हो क्या गया है। मैं तो ऐसी नहीं थी! फिर.... इस फिर के बाद वह अपने आप तक को भूल जाती। बर्तन मलने, चुल्हा-चौका देने के समय यन्त्र का दूसरा रूप बन जाती और यन्त्र ही होकर कार्य करती जाती। ओठ खुल कर हँसने के लिए खुलते, पर तुरन्त बन्द हो जाते। ललाट पर यौवन की बिजली चमक पड़ती साथ ही वेदना की लम्बी रेखा खिंच जाती। और वह कह उठती, नहीं, नहीं, यह सब कुछ नहीं होने का; मैं मुसलमान और वह......हि......हूँ; हाँ, नहीं, हाँ, वही होगा। हिन्दू ही। वह मेरे मजहब का कट्टर दुश्मन। यहाँ इस विराम चिन्ह पर पहुँचने के बाद उसे अपनी स्थिति का ख्याल आता। किन्तु हृदय में मचे द्वन्द्व का दूर होना तब तक सम्भव न था, जब तक वह एक खास किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच जाती। यह नहीं कि निष्कर्ष पर पहुँचना नहीं चाहती, चाहती—और खूब चाहती पर यौवन की इस विनाशमयी अवस्था में अलख वह युवक सर्वत्र व्याप्त हो चुका था। वह स्वयं ही नहीं जान पा रही थी कि युवक उसमें कैसे समा-सा गया। जिधर दृष्टि दौड़ाती उधर ही वही युवक आता-सा दीखता। अपनी विवशता लखती भी पर मानव की विभिन्नता एवं विच्छिन्नता से अपरिचित होने के कारण युवक के प्रति विश्वास हो आया। और यहां विश्वास उसके भविष्य की आशा-रेखा प्रमाणित होने लगा; फलतः उधर ही लुढ़कती गई जिधर अचेतन भावना की ही प्रबलता रहती है। साँझ हो आई उसके पैर गंगा की ओर बढ़ पड़े। आने पर एक ओर बैठकर गालों पर हाथ रख, गंगा के बीच की लहरों को देखने लगी, जिनमें युवक की अनहोनी घटना इधर से उधर दौड़ लगा रही थी। चारों ओर शून्यता भरी थी। सूर्य की लाल, उदास किरणों का अभी-अभी झलमलाना समाप्त हुआ था। प्रकृति में खिन्नता छा गई थी। तैमुन्ना का हृदय उमड़ आया और उसके मुख से निकल पड़ा, किसी की याद करना गुनाह तो नहीं

है ! फिर, गुनाह तो नहीं है। गुनाह......!! रात हो जाने पर भी कई बार उसने इसे ही दुहराया। धारा की अस्थिरता में भी उसके काल्पनिक और कुछ वास्तविक युवक की मूर्ति नाचने लगी, जिसे देखकर वह किसी नैसर्गिक आनन्द में विभोर हो उठी। हृदय-सागर में आवेग, उद्वेग का ज्वार उमड़ आया। हलकी हवा के झोंके में उसके बाल उड़ने लगे, और वह इसमें इतना मस्त हो गई कि तट पर ही एक बार जोर से नाच उठी। उमंग के आवेश में अपने आपको कुछ देर के लिए भूल गई।

ऐसे ही कई दिनों नहीं मासों तक तैमुन्ना की अवस्था रही। जाने, सहसा एक क्षणिक महत्वरहित घटना ने कौन-सी भावना उसके हृदय में भर दी कि यों वह विक्षिप्त रहने लगी। उसकी अम्मा ने अन्दाज लगाया, यौवन की आँधी उसमें समा गई है, फलतः उसे तैमुन्ना की शादी की चिन्ता हो आई। सोचने लगी, कहीं अन्धेर न हो जाय। उसका भाई हैदर भी जान गया कि तैमुन्ना को शायद प्रेम की हवा लग गयी है। हैदर बड़ा भारी क्रोधी युवक था। पहले तो वह उस पर भभका। पर इसका उस पर कोई प्रभाव न पड़ा; अतः उसे मार भी खानी पड़ी। वह सोचने और समझने लगी, जवानी एक भारी गुनाह है, कसूर है, जिसका उसे बड़ी कड़ी सजा भुगतनी पड़ती है। हैदर कभी एकान्त में यह सोचने को भी बाध्य होता कि इसमें तैमुन्ना का क्या दोष है। हम सभी यदि पहले ही उसकी शादी कर देते तो उसकी ऐसी अवस्था कभी नहीं होती, किन्तु इससे क्या, उसे अपने आपे में रहते क्या हुआ था। चाहे जो भी हो, अम्मा के बार-बार कुरेदने से हैदर को भी इसकी फिकर होने लगी। पर वह करे क्या, घर में दोजख पेट की आग बुझाने के लिए एक चना भी न था, फिर शादी और बिरादरी निभाने के लिए रुपयों-पैसों का क्या सवाल ! रह-रह कर उसे अपनी गरीबी पर खीझ हो आती, चाहने लगता रुपयों की सेज पर सोनेवालों की गर्दन दबोच दूँ और उनके व्यर्थ जमा किये रुपयों से अपनी तैमुन्ना की शादी कर दूँ। किन्तु दुनिया क्या कहेगी, हैदर चोर, बदमाश, हत्यारा है, और फिर मुझे जेल की हवा खानी होगी। परन्तु ऐसी दुनिया की परवाह ही मैं क्यों करूँ जो मेरी जरूरतों

को नहीं समझती और जिसे मेरी ही परवाह नहीं है। मेरा घर जलता है, वह देखती है और खूब जोर का ठहाका लगाती है। मेरा अब्बा चने-चने का मुहताज था, पर उसकी भूख मिटाने के लिए दुनिया ने कुछ नहीं किया। वह बीमार पड़ा-पड़ा कराहता रहा, किन्तु उसे इसकी कोई परवाह नहीं रही। तड़प-तड़प कर मर गया किन्तु कफन की उसने जरूरत न समझी। ऐसी दुनिया की चिन्ता मैं क्यों करूँ !

संघर्षमय विचारों से लड़ने के बावजूद हैदर के दिमाग में ऐसी खुराफात मची कि वह व्याकुल हो तड़फड़ाने लगा। आँखों के आगे तैमुन्ना की जवानी और उसकी लाचारी, तथा दुनिया की लापरवाही नाचने लगी। खाना-पीना छोड़ रात-दिन आँखें खोल कर सोता रहा और ऊपर की बड़ेरियों को गिनता रहा। तैमुन्ना को उसका चेहरा देखते ही बड़ा भय हो आता। हैदर की लाल-लाल अंगार लिए आँखों को देखते ही चीख उठती। अम्मा का हृदय भी काँपने लगा, हैदर कहीं अनर्थ न कर बैठे। उसके भयानक रोष से सभी परिचित थे। यहाँ तक कि आस-पास के लोग उसके खिलाफ आवाज उठाने में हिचकते और साहसका अनायास ही अभाव-सा अनुभव करने लगते। खासकर उस समय उसकी बड़ी भयानक आकृत हो जाती जिस समय वह खूब ढाल चुका रहता। कई प्यालियों के गटाक कर जाने पर भी न तो उसकी प्यास बुझती और न तृप्ति होती। और बेचारा पासी भय के मारे दबता-दबता ताड़ी देता ही। न दे तो उसकी खैर ही कहाँ। गालियों का बौछार करता हुआ, घैले फोड़ता हुआ कई तमाचे जड़ देता। नशा की अवस्था में किसी शक्ति से भय खाता ही न था। उसकी इस अवस्था के परिणाम में कितने भलों का नुकसान हुआ। और इसी नुकसानी की वजह बड़ी मुश्किल से जेल की हवा खाने से बचा है। किन्तु इतना सब होते हुए भी अभी कम से कम चोर, डाकू, हत्यारा न था। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि बचपन से ही उसके अब्बा कहा करते थे, चोरी की लत बड़ी बुरी है, और अल्लाह की निगाह में भी यह एक बड़ा भारी गुनाह है। परन्तु तंग आकर हैदर सब भूल गया। उसका हृदय कहने लगा,

दुनिया में समझो तो सब गुनाह ही गुनाह है । पाप ही पाप है, न समझो तो कुछ नहीं। बल्कि यह सब ढोंग है, मक्कारी है। बिना नशा के इस तरह की भयानक बेहोसी से सभी घबरा रहे थे। रात के घने अन्धकार में भी हैदर जाने क्या ढूँढ़ता रहता, बर्बराता रहता, दिल में एक अजीब बेचैनी भरी थी। बेचैनी के मारे हमेशा करवटें बदलता रहता । खाट की चोंय-चाँय से अम्मा की लगी हुई नींद भी उचट जाती । और बेचारी तैमुन्ना की आँखों में नींद कहाँ ! उसकी भी अजीब अवस्था थी भाई । हैदर की चुप्पी के भीषण परिणाम की आशङ्का से काँप उठती, उसका दिल मसोस कर रह जाता, रोम-रोम खड़े हो जाते । कभी सोचती सारे फसाद की जड़ मैं ही हूँ; जहर खा कर सो रहूँ तो हैदर भैया की बेचैनी दूर हो सकती है। या अल्लाह मैं पैदा होते ही क्यों न मर गई । या इश्क को तूने पैदा ही क्यों किया या इसे पैदा किया तो गरीबी क्यों पैदा की ?

यहाँ पहुँचते-पहुँचते उसे भूली हुई बात याद आ जाती और एक बार कुछ समय के लिए सबको भूल जाती। केवल एक धुँधली याद में खुशी के गजब की दुनिया देखती। कल्पना की भावना में सत्यता भरी सी देखती, और वह तमाम झंझटों, दुखों को दूर फेंक, आगे की घटना को आप गूँथती चली जाती। इसलिए कि इसमें-उसे सच्चा आराम मिलता। दिल की धड़कन मिट जाती। शान्ति की लहरें उसके दिल में हिलोरें मारने लगतीं । किन्तु जब सवेरा होने लगता या हैदर की खाट चोंय-चाँय करने लगती तब काँप उठती और कह उठती, नहीं नहीं, सब झूठ, सब कल्पना, सब बेकार है । हैदर जान से मार डालेगा । मैं देख चुकी हूँ, उसे तड़पा-तड़पा कर मारने में बड़ा मजा आता है। फिर वह हिन्दुओं को नफरत की निगाह से देखता है। दुनिया नहीं जानती पर मैं तो जानती हूँ, दंगे में कितनों को हलाल करने पर भी उसका दिल नहीं पसीजा है। आदमियत, इन्सानियत थोड़े ही है उसमें. वह तो जल्लाद है ! जल्लाद ! अगर जान गया कि मैं एक हिन्दू से प्रेम करती हूँ, मगर वह हिन्दू है कि नहीं, यह कैसे समझूँ । ऊँ, हूँ, हिन्दू ही है। हाँ, हाँ, वह हिन्दू ही है, उसके अलफाज कह रहे थे वह हिन्दू है

हैदर मुझे तो मार ही देगा, कहीं उसे भी न मार डाले। चूँकि हैदर को अपनी जान की तनिक भी परवाह नहीं। वह उसका गला दबोच देगा।

मानव जीवन क्रान्तिमय है, जो शान्ति का द्रोही है। हैदर के हृदय में क्रान्ति का बवंडर उठा था, फिर भला वह शान्त कैसे रह सकता था। और अब वह इस क्रान्ति के बाद एक निष्कर्ष पर पहुँचा है। चोरी कर वह तैमुन्ना की शादी कर सकता है। और आप अपना जीवन भी सुखमय बिता सकता है। इस पूर्ण विराम चिन्ह पर पहुँचने के बाद. अँगड़ाइयाँ लेता हुआ उठा। अम्मा ने बड़ा साहस कर पूछा, कुछ खाना-पीना है या नहीं! उसने बड़े गम्भीर शब्दों में कहा, पहले जाकर ढालूँगा। उसके इस एक सुनिश्चित, संयत, सीमित उत्तर के आगे किसी की कुछ नहीं चली। तैमुन्ना सब देखकर भी चुप थी। आँखें खुली थीं। पर जैसे कुछ देख नहीं पाती थीं। मस्तिष्क में चञ्चलता भरी थी और हृदय में अस्थिरता। अम्मा ने इसी समय आकर कहा, उठ बेटी चल, कुछ खा ले। हैदर का पेट पीने से ही भर जाता है, खाने की उसे जरूरत नहीं। किन्तु सभी तो हैदर नहीं हैं। पर तैमुन्ना, तुम भी एक-ब-एक बदल कैसे गई। कभी चञ्चलता जिसकी रानी थी, आज वह समुद्र की गम्भीरता ढो रही है। बेटा, बाप से सब कुछ कहता है, बेटी माँ से। लेकिन तू तो जैसे अपनी माँ को माँ समझती ही नहीं।

तैमुन्ना यह सब सुन रही थी, फिर भी चुप थी। उसके दिमाग में कई द्वन्द्व की भावनाएँ पैठ रही थीं, जिनकी वजह से वह कहीं और, दूर विचर रही थी। माँ के शब्द, कानों तक अवश्य जाते, पर विपरीत भावनाओं से टकरा कर फिर लौट आते, किन्तु कुछ देर बाद यों ही उसकी आँखें माँ की ओर गईं, तब वह व्याकुल हो उठी। माँ की आँखों से दुखद अतीत की स्मृति, बर्फ बन कर बह रही थी। वह सोच रही थी, इसी तैमुन्ना के लिए, उसका अब्बा सुबह से शाम तक दारोगा जी की चीलम बोझा करता। इसकी हर एक साध पूरी करने के लिए कई दिनों तक भूखे ही वह सो रहता था। मरने के समय भी उसने यही कहा था, तैमुन्ना को कोई तकलीफ न हो।

तैमुन्ना ने माँ की भावनाओं को लखा हो या नहीं, किन्तु आँखों की इन

दयनीय, कारुणिक भावनाओं को वह देख या सह न सकी। आँसू के इस भयङ्कर मेघ को उमड़ते देख, उससे रहा नहीं गया। वह माँ से लिपट पड़ी। माँ उसे पुचकारने लगी, लाड़ प्यार में पली तैमुन्ना और भभक पड़ी। मानो वह कब से भभकने की बाट जोह रही थी।

२

युवक एक धनी परिवार का एकलौता पुत्र था। प्रयाग में शिक्षा पा रहा था। तैमुन्ना के घर के पूरबवाले छोर पर उसका घर था। होली के अवकाश में घर आया था। संसार के कुचक्र पर उसे क्षोभ था। जीवन और आडम्बर का एक दूसरे से कोई सम्पर्क नहीं; उसके सारे विचारों का निष्कर्ष था। राष्ट्र की उन्नति के लिए अपना जीवन दान देना, सबसे बड़ा कर्त्तव्य समझता था। कालेज के विद्यार्थी अपने से उसे पृथक् समझते थे। किन्तु उसे इसकी परवाह नही थी। अपनी भावनाओं एवं उद्‌गारों को प्रकट करने के लिए कलम का सहारा लेकर कुछ पृष्ठों को रंग देता। इससे अधिक उतावला होता तो अशोक और आनन्द के साथ बीसवी सदी के मनोरञ्जन का सबसे बड़ा साधन चित्रपट देखने चल पड़ता। मानव दानव के रूप में न परिणत हो, यही सब से, सब समय कहता। जातीय कलह को दूर करने के लिए हमेशा अशोक और आनन्द, इन्हीं दो मित्रों के साथ आगे बढ़ता। कई बार यवन-हिन्दू दंगे के समय उसके प्राण सङ्कट में पड़ गये हैं। पर अपने अमूल्य किन्तु क्षणभङ्गुर प्राणों का मोह छोड़ कर सर्वदा उसने अपना कर्त्तव्य पालन किया है। यही कारण है कि तीव्र बुद्धि होने पर भी उसने परीक्षा में प्रथम श्रेणी न प्राप्त की। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि हृदय से यवनों और हिन्दुओं का भला चाहने पर भी दोनों का ही वह शत्रु रहा है। माता-पिता दोनों ने कई बार इसके लिए समझाया कि आज की दुनिया में अपने आप की ही चिन्ता करनी चाहिए। दूसरे की परवाह या चिन्ता करने से अपनी ही हानि होती है। आज के मानव में, स्वार्थ और अहङ्कार की भावना घर कर गई है। तुम जैसे परोपकार की भावना

से प्रेरित निःस्वार्थ व्यक्ति के लिए कहीं ठौर नहीं मिलने की। यदि तुम यों अपने आप को उनके बीच फेंकते रहे तो यह सच है, जिन्दगी से भी हाथ धो बैठना होगा। लेकिन युवक पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। गांधीवाद की भीत्ति सुदृढ़ है, वह कभी ढहने की नहीं; ऐसी उसकी धारणा है। कुत्तों जैसे अपने आप पेट भरने के वह खिलाफ था। एकत्व स्थापित करने की प्रवृत्ति का आरोप, सब में, कर देने की उसकी बड़ी अभिलाषा थी। अपना यह जीवन, प्राण और शरीर सब दूसरों के लिए है। अपने आप पर मेरा नहीं दूसरों का अधिकार है। इन्हीं सब विचारों के कारण युवक उत्कृष्ट मानव कहा जा सकता है। प्रतिक्रिया या प्रतिदान की भावना, मानव के हृदय में नहीं रहनी चाहिए। क्रूरता, मानव का शत्रु है। ये सभी उसके स्थायी विचारों में से हैं। शान्त आनन, भोली आकृति देख कर आरम्भ में माता-पिता ने उसका नाम 'रमेश' रक्खा। प्रयाग आने के पूर्व भी उसके ऐसे ही संयत, सुनिश्चित विचार थे। किन्तु तब इसके विचारों में परिपक्वता नहीं आने पायी थी। धारणा में भ्रांतियों की गुंजाइश थी, परन्तु धीरे-धीरे वातावरण बदलने के कारण विचारों में प्रौढ़ता और सुदृढ़ता का समावेश होता गया, और अब तो उसके विचारों की स्थिरता में सन्देह ही न रहा। कुछ उलझे विचारों से लड़ता हुआ वह रात में आ रहा था कि सहसा तैमुन्ना से टकरा गया। इसका स्वयं उसे कई दिनों तक खेद रहा कि वह क्यों किसी महिला से टकरा गया। आवाज एवं शब्दों से यह पहचानते उसे देर न लगी कि महिला मुसलमान है। किन्तु इस पर उसे आश्चर्य भी कम नहीं हुआ कि एक अपरिचित युवक के साथ महान अपराध होने पर भी ऐसा मधुर व्यवहार, एक महिला रख सकती है। कई दिनों तक वह इसे सोचता रहा। कभी प्रबल आकांक्षा होती, उससे मिलने और पुनः क्षमा माँगने की। इस उद्देश्य से कई बार इधर वह आया, पर तैमुन्ना उसे न मिली। यह भी सम्भव है, मिलने पर भी उसे उसने न पहचान पाया हो। किन्तु उसका अनुमान था, आवाज से मधुर भाषिणी मुसलमान महिला को वह अवश्य पहचान लेगा। परन्तु ऐसा न हो सका। फिर इस विचार से वह स्थिर हो गया कि दुनिया या समाज क्या कहेगा, मैं एक महिला से मिलने जाता हूँ। कालुष्य

का केन्द्र सबका हृदय है। सभी नाना प्रकार की शंकायें करेंगे। फिर महिला पर भी आँच आयेगी। मैं पुरुष हूँ और वह नारी, सभी मिल कर उसे दबा सकते हैं। किन्तु घटना का प्रभाव उसके रोम-रोम पर पड़ा था। उस घटना को भूलना उसके लिए कठिन था। मधुर व्यवहार, मधुर स्मृति के रूप में परिणत हो गया। और स्मृति को लेकर वह प्रयाग चला गया। अशोक और आनन्द ने भी देखा, उनके मित्र में एक अवश्य कोई परिवर्त्तन की रेखा दौड़ रही है। धीरे-धीरे यह रेखा वेदना और करुणा में सिमटती चली गई। मित्रों ने सोचा यह ठीक नहीं। हठपूर्वक इसका कारण पूछना चाहिए।

दूर तक फैले वृक्षों की कतार हैं। और बीच ही से होकर एक सड़क गई है। इसी जन-रव शून्य पथ पर रमेश कुछ सोचता हुआ चला जा रहा था। प्रकृति एक धुँधला प्रकाश लिये उदास प्रांगणमें सोयी-सोयी कुछ सोच या समझ रही थी। चारो ओर दृष्टि दौड़ाता हुआ रमेश बढ़ता चला जा रहा था। बहुत दिन बाद इस प्रकृति की परछाहीं में उसकी पुरानी स्मृति, छाया का घना रूप लिए दीख रही थी। विचार श्रृंखला का ढूँढ़ना तब तक सम्भव न था जब तक वह स्मृति विलीन न हो जाय। अस्त-व्यस्तता पर बड़ी कभी-कभी खीझ हो उठती है। रमेश भी इस पर खीझ उठता था। परन्तु घटना का कारण याद आते ही, खीझ एक कल्पना के मृदु कम्पन में मिल जाती। और वह कुछ देर के लिए आनन्द अनुभव करने लग जाता। एकान्त इस वातावरण में खुलकर हँसने का उसका प्रथम ही अवसर था। अपने जीवन की गति के विषय में सोचना होगा। उसके आगे यह भी एक गम्भीर समस्या हो गई। किन्तु आनन्द की इस लहर में समस्या और चिन्तन की जगह स्मृति ने ले रक्खी थी, अतः वह सब भूलने लगा। परन्तु हृदय का उछाह एक उद्वेग को लिए था, अतः इधर भी उसे झुकना पड़ा। चिन्ता ने उसे आ घेरा। और वह माथे पर एक भारी बोझ अनुभव करने लगा। आगे बढ़ने की उसे थोड़ी भी इच्छा न हुई, और पीछे लौटने के लिए पैर प्रस्तुत न थे। फलतः एक वृक्ष के नीचे उसे बैठ जाना पड़ा। आनन्द, वेदना और चिन्तना में मिल गया। आँखों में दीनता और विवशता भर गई। और हृदय में विचारों के तूफान उठने लगे। कल्पना

में भीषणता समा गई, और स्मृति में कुछ खौलने लगा। उधर रात के कई प्रहर बीतने लगे, वह उठा और व्याकुलता की परिधि में मड़राता हुआ लौज की ओर चल पड़ा। किन्तु वहाँ भी न जाकर झूठे मन-बहलाव के लिए सिनेमा देखने चला गया। सेकेण्ड शो आरम्भ हो जाने पर भी सिनेमा-हाल में उसने प्रवेश किया ही। विचार स्वातन्त्र्य में इतना प्रवाह था कि छोटी-छोटी तृण सम आकांक्षाएँ यों ही उसमें बही जा रही थीं। राष्ट्रीय उद्भावना की लहरों का कभी उस पर आधिपत्य था। आज पहली बार एक ऐसे भाव का उसमें सञ्चार हुआ जो उसके अमिट सिद्धान्तों की जड़ तक उखाड़ फेंकने पर तुला था। यही कारण था कि शान्ति क्रान्ति का द्वन्द्व मचा था। रमेश घबड़ा कर सिनेमा समाप्त हुए बिना ही वहाँ से भी निकल पड़ा। आज ढूँढ़ने पर भी इस प्रकार मची उथल-पुथल का कोई कारण नहीं मिल रहा था। सिवा मधुर व्यवहार लिए घटनाओं को छोड़कर। स्मृति का सहसा इतना भीषण प्रभाव उस पर पड़ेगा, ऐसा उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। मनस्तत्त्व के विश्लेषण का उसमें अभाव था। शायद इसी वजह से शान्ति उससे कोसों दूर थी। उसका कभी विश्वास था, वह शान्ति को अपने संयत विचारों से हमेशा कभी भी खरीद सकता है। किन्तु इन सब का परिणाम विपरीत देख वह उस अवस्था तक पहुँच गया कि विचार विमूढ़ हो रो पड़ा। प्रथम बार उसे एक अवलम्ब, साथी की आवश्यकता अनुभव हुई। वह चाहने लगा, कोई सान्त्वना देता, सहारा देता। इस पर कभी-कभी उसे खेद भी होता कि ऐसी अवस्था आखिर क्योंकर हुई ! मैं स्वयं एक स्वावलम्बी पुरुष था, फिर मुझमें विवशता की कमजोरी कैसे और क्यों आई, जिसके विचार में इतनी दृढ़ता थी कि उसके परिवर्त्तन की किसी को भी आशा न थी। आज उसी के विचारों में इतनी अदृढ़ता और अस्थिरता आ गई कि परिवर्त्तन की भीषण आँधी में वह बहने लगा। नहीं, नहीं, वह ऐसा नहीं होगा, न होने देगा। परन्तु स्मृति और घटना दोनों चिल्ला-चिल्ला कर कहतीं कि हाँ, हाँ, वैसा ही होगा, होना पड़ेगा। इसलिए कि तुम्हारे विचारों की अपेक्षा उसमें अधिक बल है, साहस है। वह एक बार तलमला कर गिरते-

गिरते सहम गया, परन्तु जाने कैसे बच गया। पैर आगे बढ़ने लगे। चिन्ताओं का बोझ लिए, विचार कल्पना के सहारे व्यक्ति और परिवर्त्तन पर क्षुब्ध होता हुआ, वह बढ़ता गया।

सवेरा होने पर आनन्द और अशोक को यह देखकर बड़ा खेद हुआ कि रमेश बाहर छत पर ही सोता रहा। उसकी इस दयनीय अवस्था पर एक बार सभी का चित्त चञ्चल हो उठा। रमेश के प्रति उनकी सच्ची सहानुभूति थी। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि तीनों आदि के मित्र थे। और रमेश के गम्भीर उच्च विचारों की वजह उसके प्रति श्रद्धा की भावना थी। इसलिए उनके हृदय में भी वेदना की कोमलता का आरोप होने लगा। उन्होंने करुण स्वर में कहा, सहसा इस भयङ्कर परिवर्त्तन का कारण क्या है? रमेश की आँखें स्थिर थीं। उसने कहा, स्वयं मैं इसका कारण ढूँढ़ता हूँ। विचारों में परिवर्त्तन की कभी मुझे आशा न थी। और आशा के विपरीत यह देखकर अपने ऊपर बड़ी ग्लानि होने लगी है, शायद यह भी प्रमुख कारणों में से एक हो।

'आखिर यह परिवर्त्तन क्यों?' रमेश इसका क्या उत्तर दे। चुप, निस्तब्ध वातावरण की ही उसने शरण ली। मित्रों को इसके लिए झुँझलाहट भी हुई। किन्तु रमेश की वेदनामयी आकृति देखकर उनकी झुँझलाहट विलीन हो गई। कर्त्तव्य की सच्ची भावना से प्रेरित होकर हठपूर्वक उसके बहुत मना करने पर भी अपने साथ उन दोनों ने खिलाया-पिलाया, और साथ ही कालेज भी घसीट ले गये। परन्तु वहाँ भी रमेश अपने हृदय की दुर्बलता पर दुखित ही रहा। करुणा की प्रबलता के कारण मानसिक उत्थान-पतन जारी रहा। परन्तु साथियों के सहवास से कभी झेंप भी जाता, अपनी स्मृति को सबके सम्मुख प्रकट करने के लिए कभी वह प्रस्तुत न था। जीवन की आने वाली कठिनाइयों को मजे में वह सह सकता है, पर आक्षेपों एवं प्रहारों को सहने की उसमें सामर्थ्य न थी। विचार में परिवर्त्तन देख, लोग क्या कहेंगे, यह सोचते ही मानवमात्र से अलग, दूर भाग जाने की प्रवृत्ति हो जाती। एकदम अकेले के संसार में रहने के लिए उतावला हो उठता। अफवाह

और तिरस्कार के भय से सदा वह काँपता रहा। संयम, सदाचार और आत्म-विश्वास पर उसे भरोसा था। पर आत्मबल के अभाव के कारण अनेक प्रकार की शङ्काएँ उसके हृदय में उठती थीं। किन्तु अब धीरे-धीरे आत्मबल का भी समावेश होने लगा। अतः अतीत की स्मृति सजग भावना से आलोड़ित होने पर भी अब रमेश पर वैसा प्रभाव डालने में असमर्थ थी, जिससे वह अपने पग से डिग सकता। समाज के भय की भी परवाह मिटने लगी। आनन्द और अशोक ने अन्त में उसे यह बताने के लिए बाध्य किया कि किस घटना या स्मृति ने तुम पर गहरा प्रभाव डाला है। रमेश को सब उगलना ही पड़ा। बाद में उगल देने से उसकी चिन्ता या वेदना का कम होना स्वाभाविक ही था। पर इसके मिटने या कम होने पर अनायास ही मनुष्य का भार हल्का हो जाता है। और वह शान्ति की साँसें लेने लगता है। रमेश अब पूर्ववत् ही हँसने-खेलने लगा। राष्ट्रीय-विचारों का पुनः ताँता बँध गया। अशोक, आनन्द को भी मित्र के परिवर्त्तन पर प्रसन्नता हो रही थी। तीनों साथी सान्ध्य-पर्यटन के लिए निकले। हृदय में दौर्बल्य पर रह-रह कर कभी-कभी रमेश को क्षोभ हो आता था। अशोक, आनन्द को अचानक आश्चर्यमयी इस घटना पर हँसी आये बिना न रहती थी। छोटी-सी इस घटना के इतने बड़े परिणाम की कल्पना भी उन लोगों ने कभी नहीं की थी। महत्त्वरहित घटना की महज छोटी स्मृति से रमेश के विशाल हृदय में इतनी उथल-पुथल मचेगी, इस पर कभी दोनों ने सोचा ही न था। किन्तु कभी-कभी घटना की उस नायिका को देखने की उत्सुकता भी होती थी। इस उत्सुकता को रमेश के आगे भी प्रकट किया, किन्तु रमेश ने यह याद दिलाई कि हम पहिचानेंगे कैसे ? हाँ, भाग्यवश कान यदि उसकी आवाज सुन लें तो मेरा ख्याल है, मैं पहिचानने में भूल नहीं करूँगा। किन्तु ऐसा कभी नहीं होने का। फिर यह उचित भी तो नहीं है कि किसी महिला को इस प्रकार हम पहिचानते फिरें। किन्तु सबने यहाँ इस पर विरोध किया कि घटना सभी महिला के साथ थोड़े घटती है। वह और महिलाओं से सर्वथा पृथक् है। इस पर रमेश ने कहा, पर वहाँ के अगल-बगल वाले क्या कहेंगे, कैसा वेहया है ?

३

सामाजिक, सांसारिक जीवन व्यतीत करने वाले मानव के मार्ग में असंख्य रोड़े एवं काँटे आते हैं। जिनसे कभी-कभी वह अपने जीवन के कर्म पर दृष्टिपात न कर अस्तित्वहीन होने के लिए बाध्य हो जाता है। और उद्देश्यरहित होकर इधर-उधर भटकने लगता है। पुनः एक अजीब चेतना या साधना के फल स्वरूप कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होता है। रमेश ऐसा ही मानव था। उसके माध्यनिक जीवन की दशा सहसा बदल-सी गई, और उसमें कर्त्तव्य की भावना जाग्रत् हुई। ऐसा लग रहा था, मानो भीषण आँधी आई थी। जब उसकी समाप्ति हो गई और चारो ओर शान्ति का साम्राज्य फैल गया। कर्त्तव्य ज्ञान का संचार हो जाने से वह एक ऐसे पथ पर चलने लगा जो एकान्त आदर्श का द्योतक था। यों तो झूठ के आदर्श को ढोंग का एक बहाना समझता था, परन्तु बीच की विवश अवस्था के कारण उसका भी महत्त्व उसे ज्ञात हुआ। कुव्यवस्थित खोखले वातावरण से दूर रह कर वह एक ऐसे संस्कार का आविष्कार करना चाहता था जिस का सब पर प्रभाव समरूप से पड़े। हृदय की सबसे बड़ी दुर्बलता को प्रकट करना गुणों में से ही कहा जा सकता है; जो इसे दोष समझते हैं वे ही वस्तुतः एक भयङ्कर अपराध करते हैं। प्रत्येक मानव को अपनी कमजोरी व्यक्त करनी चाहिए, अपना दोष स्वीकार करना चाहिए, अन्यथा वह एक ऐसी जगह फेंक दिया जायगा, जहाँ पशु से भी शायद ही अधिक उसका महत्त्व हो। उच्चता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति भी उसमें नहीं होगी फलतः निम्न स्तर पर पहुँचने या रहने वाले व्यक्ति-सा ही अपना जीवन-यापन करेगा। वास्तविकता की भीत्ति तो खड़ा करना उसके लिए एक दम दूभर साबित होगा। और जो ऐसा न करे उसे मेरे जानते यहाँ इस भूतल पर टिकने के लिए भी स्थान नहीं मिलना चाहिए। आनन्द, अशोक, रमेश सब ने चाहा, मिल कर हम ऐसी भीत्ति खड़ी करें, किन्तु ज्ञानचक्षु ने कहा अभी नहीं, समय की प्रतीक्षा करो। परन्तु युवकों के विचार में इतना आवेग रहता है कि वे प्रतीक्षा करने

के लिए प्रस्तुत ही नहीं रहते। रमेश ने कहा, आज के युग में साम्यवाद की नितान्त आवश्यकता है। इसके लिए हमें सत्ताधारियों से लड़ना होगा। भूख की ज्वाला शान्ति करने को सबको समान रूप से अधिकार है, फिर दो पृथक्करण क्यों ! यह बटवारा क्यों ! ! नमक, लकड़ी, चावल, दाल की समस्या सब को हल करनी है। यह समझते हुए भी उठा हुआ वर्ग निम्न वर्ग को पीसता क्यों है। सर ऊपर उठाने वालों को सजा क्यों ! यह सर्वथा अन्याय एवं अनुचित है। आश्चर्य तो यह है कि यह सब रूढ़ि में ही सम्मिलित हो जाता है। भारतीय औद्योगिक प्रधानता में हेय मानव का सब से बड़ा स्थान है, परन्तु फिर भी उसकी जिन्दगी में सुखका एक कण भी नहीं। इसका एक दिन परिणाम यह होगा कि जनता रूस की क्रान्ति को सम्मुख रख आदर्श का एक नकाब पहरा कर भीषण युद्ध कर बैठेगी। उस समय भारतीयों के आगे एक जटिल समस्या उपस्थित हो जायगी। तो क्या रूसवाली क्रान्ति का बीज बोना ही भारतीय समाज के लिए श्रेयस्कर होगा। यदि हाँ, तो नृशंसता के वातावरण में सबको समान रूप से सुख मिल सकेगा ! नहीं, तो हमें रूस की साम्यवादी भित्ति या आदर्श का अनुकरण कर, हिन्सा या क्रूरता से अलग हट कर दूसरे अहिंसामय सिद्धान्त या आदर्श की शरण लेनी होगी। अभिप्राय स्पष्ट है कि भारतीय समाज के लिए गांधीवाद ही हितकर है। किन्तु इस गांधीवाद की भी व्याख्या असलियत को लेकर होनी चाहिए। झूठे सिद्धान्त या थोथा प्रसार वाला आदर्श लेकर कुछ लोग यों ही आपस में झगड़ते हैं, जिससे गांधीवाद के सिद्धान्त में वैसे बल का आरोप नहीं हो पाता जो एक दर्पण का कार्य करता। इस वाद की भी हमें विवेचना करनी होगी।

रमेश के मस्तिष्क में ऐसे ही राष्ट्रीय विचार उठ रहे थे कि उसने सोचा, हाँ, इन सबसे पहिले तो हमें जातीय भेद-भाव को दूर करना होगा। हम-हम, तुम-तुम, की भावना मिटानी होगी। यवन, हिन्दू ये दो भारतीय होकर भी अन्योन्य विलग हो हमेशा लड़ते-झगड़ते हैं। इसी कारण भारत को अखंड रहने देना भी लोगों को असह्य हो गया, फलतः पाकिस्तान-योजना का प्रस्ताव आया। अच्छा होता, आपस के भेद या बैर भाव को दूर कर हम एकत्व के

सूत्र में बँध जाते और अपने आपकी रक्षा करने के लिए एक अपूर्व बल का संचय करते। परन्तु राष्ट्रीय समस्या के निराकरण के लिए हमें अपने प्राणों का उत्सर्ग करना होगा। सम्भव है, इस महायज्ञ में हमें भी आहुति देनी पड़े। ऐसे ही विचार जाल में उलझता हुआ रमेश पुनः तैमुन्ना के विस्तृत विश्व में पहुँच गया। और उसके हृदय में एक बार फिर स्मृति का बवन्डर उठने लगा। संसार तो नहीं किन्तु भारतीय समाज सुधार में उसे जाने क्यों तैमुन्ना एक प्रबल कारण बन कर नाचने लगी। वह चाहने लगा, इसमें तैमुन्ना भी मिल जाती तो सिद्धि की कितनी आशा होती, पर यवन, उस पवित्र भावना का संस्कार उसमें होगा या नहीं यह कैसे कहा जा सकता है। शब्द या उक्ति की स्वाभाविकता मापने पर रमेश को ऐसा भाता था, मानो विच्छिन्न कुप्रवृत्ति का संचार कदाचित् ही उसमें हुआ हो। किन्तु कौन कहे, अपरिचिता यवन महिला तैमुन्ना के हृदय में ऐसे विचार उठते हैं या नहीं। बहुत अधिक सम्भव है, उसकी भी प्रकृति एक पुरातन यवन संस्कार से प्रभावित हो। और यह भी आवश्यक नहीं कि वही तैमुन्ना ही इस विचार में सम्मिलित होकर मेरा साथ दे। अन्य महिला भी साथ दे सकती हैं। हाँ, महिला ही क्यों, कोई यवन पुरुष साथ दे तो क्या बुरा होगा।

आनन्द, अशोक देखने लगे, पुनः उनके मित्र की अवस्था में परिवर्त्तन होने लगा। उन लोगों ने कहा, रमेश, इस प्रकार परिवर्त्तनशील प्रवाह में प्रवाहित होना अनुचित है। तुम्हें सर्वप्रथम अपने जीवन का ध्येय, एक मात्र अध्ययन ही समझना चाहिए। बाद में और सब समस्याएँ सुलझाते रहना। हमारे मस्तिष्क में भी राष्ट्रीय विचार गोते लगाते रहते हैं; इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हम अध्ययन से विलग होने के विषय में भी सोचते हैं। यवन-हिन्दू की समस्या हल करना टेढ़ी खीर है। इस पर रमेश ने उलझते हुए कहा, नहीं भाई, सोच रहा हूँ, तैमुन्ना इसमें साथ दे तो कितनी सफलता मिलेगी।

"ओ, तो आप तैमुन्ना से यहाँ तक आशा किये बैठे है!"

"और नहीं तो क्या!"

"तब रात-दिन इसी सोच और प्रयत्न में लगे रहो कि तैमुन्ना कैसे हमारा साथ दे। अरे भले आदमी, पहले अपने आपकी सहायता देने के योग्य बनाओ; फिर दूसरों को घसीटना। तैमुन्ना एक कट्टर यवन की लड़की होगी, यदि उसका कोई तुम्हारे इस विचार को लख ले तो समझो, जान की भी खैर नहीं।"

"मुझे अपनी जान की परवा नहीं।"

"तब तो तुम निरे मूर्ख निकले। व्यर्थ कार्य में जान गँवाने वाले बुद्धिमान् नहीं कहलाते। और फिर शायद तैमुन्ना तक ही तुम्हारा जीवन सीमित है। उसके बाहर, उससे हटकर सामूहिक मानव के कल्याण की तुम्हें कोई चिन्ता नहीं। बिना कर्त्तव्य पालन किये ही तुम यह चाहते हो कि केवल तैमुन्ना में हम खो जायँ। रमेश, भ्रान्तिपूर्ण इस स्वार्थ विचार को दूर कर सच्चे कर्त्तव्य की ओर झुको। अन्यथा तुम जैसे सीमित विचार के पृष्ठ-पोषकों से राष्ट्र या समाज की उन्नति की कोई आशा नहीं की जा सकती।"

मित्रों के इतने महत्त्वमय विचारों के आगे रमेश घबड़ा-सा गया। वह सोचने लगा, क्या तैमुन्ना में ही मेरा जीवन सीमित है, उसके बाहर मेरी दुनिया नहीं। मैं स्वार्थी हूँ, नहीं, नहीं, फिर......फिर......। हृदय कहने लगा, रमेश, प्रवञ्चना शक्ति सबसे बड़ी हार का सूचक है। यदि जीत चाहते हो तो अपने आपको इस प्रकार ठगो नहीं। जीवन तन्तु का इस प्रकार उलझना भविष्य के लिए बुरा है। रमेश तलमलाने को हुआ कि मित्रों ने कहा, सारे विचार स्वप्नों को फेंक पहले कालेज जाने की शीघ्रता करो। वह चिन्ता के प्राङ्गण में ठुमुक-ठुमुक कर चलता हुआ औंधे घड़े की-सी अवस्था में बढ़ने लगा। कालेज पहुँचने पर उसे विदित हुआ; आज प्रोग्रेसिव लिट्रेचर पर बहस छिड़ेगी। आनन्द, अशोक ने उसमें सम्मिलित होने के लिए बाध्य किया। प्रगतिशील विचार के परिवर्त्तन पर एक दृष्टि फेंकता हुआ रमेश सोचने लगा, चलो तैमुन्ना के प्रति सारे विचार आज यहीं दूसरे रूप में प्रकट होंगे। किन्तु अवसर आने पर उसे दूसरी धारा में प्रवाहित होना पड़ा। आधुनिक समाज पर प्राचीन रूढ़िवाद का कहाँ तक, किस रूप में प्रभाव पड़ा

है; इसी विषय पर उसे बहुत देर तक बोलना पड़ा। युक्तिसंगत तथा पूर्ण तर्क के आगे प्रोफेसरों तक को उसकी दलील माननी पड़ी। उसका कहना था, परिवर्त्तन युग का सूत्रधार है, इसकी महत्ता सब को स्वीकार करनी होगी। हमेशा आदर्श और सिद्धान्त में परिवर्त्तन होता आया है, जो इस परिवर्त्तन के साथ पैर में पैर मिला कर नहीं चलेगा, वह कभी भी समाज या राष्ट्र को कोई अच्छी ठोस वस्तु नहीं देगा। युग बराबर नई माँग के लिए हाथ पसारता रहा है, और रहेगा। ऐसे समय में जो पुराने विचार की लकीर पर ही चलेगा, वह महत्त्व-रहित प्रभावित होगा। उसकी संसार में कोई सत्ता नहीं रहेगी। रूढ़िवाद के सिद्धान्तों के विरोध में हमें रहना चाहिए। परन्तु इन तर्कों का उचित और मार्मिक प्रभावशाली खण्डन अमरावती नाम की लड़की ने किया। रमेश के तर्कों की अपेक्षा उसके तर्कों में बल था, ऐसा नहीं कहा जा सकता। किन्तु स्वयं अमरावती रमेश के तर्कों के आगे अपने तर्कों का महत्त्व देने के लिए कभी तैयार नहीं थी। पहली बार उसने नये तुले शब्दों में अपने ठोस सिद्धान्त का प्रतिपादन करनेवाले युवक को देखा। अब तक उसे अपने ही ऊपर गर्व था, पर आज रमेश की युक्ति के आगे उसकी एक न चली और इधर रमेश ने अमरावती के आगे अपना अस्तित्व लुटता-सा देखा। यद्यपि यह उसकी कमजोरी मात्र थी, चूँकि आज उसने जो कुछ कहा, सबका सब पर समान रूप से गहरा प्रभाव पड़ा। मित्रों ने भी अभी तक उसका ऐसा ओजस्वी तर्क कभी नहीं सुना था। कालेज के विद्यार्थियों में इसकी जोरों से चर्चा चलने लगी कि रमेश लोगों पर एक जादू-सा प्रभाव डाल सकता है। किन्तु सब होने पर भी उसे लगता, नहीं यह सब अन्याय है, अनर्थ है। अमरावती को ही यह सम्मान मिलना चाहिए। उसके ऐसा सोचने का सबसे बड़ा कारण यह था कि जीवन में उसने शायद अमरावती-सी तीक्ष्ण बुद्धिशाली लड़की को पहली मरतबा देखा। सोचने लगा, यदि रङ्गमञ्च से वह आज इस प्रकार बोली होती, उसका बड़ा मान होता। उसके शब्द-शब्द उसे धन्यवाद देने लगे। साम्यवादी भित्ति की नीव में अमरावती को भी घसीटना चाहा, परन्तु यह तभी सम्भव था, जब वह उससे कुछ कहता। फिर उसी के क्लास में वह पढ़ती

भी न थी कि कभी कुछ कहने की आशा रख सकता था। आनन्द, अशोक से यह आकांक्षा उसने नहीं जतायी। विचारों के इस उमड़ते बादल को रोक देना ही वह अच्छा समझता था।

४

सांझ-उषा के आँगन में यों ही एक दिन अमरावती को देखकर रमेश मुस्कुरा पड़ा। अमरावती भी संकुचित हो कुछ विचारों में उलझती हुई हंस पड़ी। एक दूसरे से दोनों प्रभावित थे। दोनों की समझ में एक दूसरे की तार्किक शक्ति का अधिक प्रभाव था। सामाजिक जीवन का दृष्टिकोण कैसा होना चाहिए। यह जानने के लिए अमरावती ने रमेश से कहा, मानव जीवन के सिद्धान्त या उद्देश्य क्या होना चाहिए। इसके उत्तर में रमेश अपने आपको असमर्थ पाता हुआ बोला, स्वानुभूति की प्रेरणा या आध्यात्मिक प्रवृत्ति के समावेश से मानव अपने जीवन को समाज के दूषित वातावरण से हटा कर एक प्रशस्त मार्ग का अवलम्ब ले, निम्न वर्ग को अपनी परिस्थिति का परिचय दिलाने में लगाये। चूँकि मेरी दृष्टि में केवल एक से ही सामाजिक भित्ति सुदृढ़ नहीं होने की। और बिना समाज की उन्नति के राष्ट्र की उन्नति की कभी भी सम्भावना नहीं की जा सकती। शृंखला की कड़ी-सा दोनों का सम्बन्ध है। यदि समाज को राष्ट्र से अलग कर दें तो राष्ट्र बन ही नहीं सकता; यदि राष्ट्र को समाज से अलग कर दें तो समाज एक सीमित रेखा के भीतर ही रह जायगा; जिसका विश्व के आगे कोई खास महत्त्व नहीं रहेगा। आधुनिक युग में आन्तरिक भेद से सर्वथा पृथक होकर अपसारित, निस्कासित वर्ग का पीसा जाना सब को खल रहा है। अतः अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रबल प्रयत्न कर हमें उस वर्ग को ऊपर उठाना होगा जो ज्ञान शून्य हो अपनी सदियों से आती हुई लगी आदत से लाचार हैं। उससे कहना होगा, तुम्हारे सामने जो एक हौवा-सा बन कर खड़ा है वह वस्तुतः हौवा नहीं, तुमसे अधिक कमजोर और भीरु है वह! सर उठाकर आँखें फैला कर यदि तुम उसकी ओर देखोगे,

तो वह त्रास से भाग खड़ा होगा। तुम्हारे आगे टिकने की उसमें थोड़ी भी शक्ति नहीं।

"तो आप साम्यवाद के सिद्धान्तों का भारतवर्ष में भी प्रचार करना चाहते हैं !"

"आप के लिए साम्यवाद भारत के लिए एक नयी चीज है !"

"और नहीं तो क्या !"

"यह आपकी गलत धारणा है, यह यहीं की उपज है !"

"समाजवाद, साम्यवाद का दूसरा प्रतिशब्द है जो रूस और थोड़ा फ्रांस का कहा जा सकता है।"

"अपनी अज्ञानता के कारण कुछ लोग रूस के साम्यवाद या समाजवाद के सिद्धान्तों को एक नया सिद्धान्त मानते हैं। वस्तुतः आप देखेंगी, बहुत पहले प्रसेनजित् और बाहुलाश्व के समय में भी कुछ लोग साम्यवाद के सिद्धान्तों की जड़ का आरोप भारत में करते थे। किन्तु उस समय जनता की पुकार में ताकत न थी, उसकी बोली में बल न था। अतः उसे सफलता न मिली। दूसरी बात यह कि सर्व प्रथम इसकी स्थापना में रूस की जनता को सफलता मिली, जिस कारण लोग उसी को आगे रख एक नया आदर्श खड़ा करना चाहते हैं। बल्कि मेरी दृष्टि में वहाँ और यहाँ के साम्यवाद में महान् अन्तर है। बहुत पहले जहाँ-तहाँ पञ्चायत ही विवाद निर्णय का काम करती थी, इसका अर्थ कदापि नहीं कि मेरी उक्ति का सम्बन्ध बुर्जुआ वर्ग की माध्यमिक अवस्था से है। बड़ा खेद है। समाजवाद या साम्यवाद का उल्टा-सीधा अर्थ लगा कर कुछ साहित्यिक भी उन्हीं भावनाओं से अनुप्राणित हो तथा कथित प्रगतिवाद से सम्बद्ध साहित्य की रचना करने लगे हैं।" इतने लम्बे-चौड़े व्याख्यान का अमरावती पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उसने कहा, ऐतिहासिक आधार पर आपने आधुनिक साम्यवाद को प्राचीन भारतीय साम्यवाद से आन्तरिक भिन्नता दिखाते हुए साबित तो कर दिया कि यह यहीं की देन है, कहीं दूसरे की नहीं; परन्तु इसको सबसे आगे प्रत्यक्ष रखने का प्रयत्न भी करते हैं ?

"मैं एक साधनहीन पुरुष कहाँ तक इस क्षेत्र में सफलता पा सकूँगा, इसको आप सोच या समझ सकती हैं।"

"भला पुरुष भी कहीं कमजोर होते हैं!"

"यह तो पुरुषों के प्रति आप का तीखा कटु व्यंग है जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती।" इस पर दोनों हँस पड़े। साथ ही घड़ी में समय देखते हुए रमेश ने कहा, अच्छा कल मिलेंगे।

महीनों अपनी बहस के बल पर रमेश ने अमरावती को अपने सिद्धान्तों का पृष्ठ-पोषक बना दिया। अमरावती अब कहने लगी है, मेरे विचार या सिद्धान्त सब रमेश के ही हैं। चूँकि निकट से मैंने देखा है, उनके सिद्धान्तों से, सच, समाज का बड़ा उपकार होगा। कितनों ने इस निर्भीक स्वीकारोक्ति की वजह अमरावती को रमेश में उलझा हुआ समझा। किन्तु यह उनकी भ्रांति थी, चूँकि अमरावती उन नारियों में नहीं जो क्षण में ही अपने आपको खोकर किसी की कठपुतली बन जाती हैं। रमेश की बहस में, विचार में, तर्कों की प्रधानता थी या यों कहें सुदृढ़ता एवं प्रौढ़ता थी जिस कारण अमरावती उसके विचारों मात्र से सहमत हो गई। इससे अधिक अभी तक उसके हृदय में किसी विशेष भावना का प्रवेश न था। उसका हृदय यह कहने को कभी बाध्य नहीं हुआ कि इससे अधिक तुम रमेश के प्रति कुछ सोचो या करो। समाज में भ्रान्तियों से भरी कलुषित भावना की अफवाह बहुत बुरी होती है। एक दिन यही अफवाह मानव का अहित कर बैठती है, जिस कारण कितनों को अपना भविष्य विनष्ट करना पड़ता है, कितनों को अपनी जिन्दगी गँवानी पड़ती है, पर प्रोपागण्डा के इस युग में अफवाह का ही प्राबल्य है इसे कौन हटाने में समर्थ हो सकता है। अमरावती और रमेश भी देखने लगे, निकट सम्पर्क का विद्यार्थी समाज खूब मतलब निकालने लगा। आनन्द और अशोक उसकी स्वच्छता को समझते या जानते अवश्य थे, किन्तु संसार या समाज का उन्हें बड़ा भय था, अतः रमेश से उन लोगों ने साफ कहा, तुम किसी भी नारी से सम्पर्क न रक्खो। बेचारे रमेश को विवश हो कहना पड़ा, यह मेरे साथ अन्याय क्यों किया जा रहा है। पुरुष और नारी एक

अभेद्य सृष्टि के दो अविश्लेष्य अङ्ग हैं, फिर इन्हें अन्योन्य पृथक क्यों समझा जा रहा है। पुनः एक बार रमेश के हृदय में समाज के प्रति विरोधी भावनाएँ घर करने लगीं। वह चाहने लगा, मैं समाज से इसके लिए लड़ूँ। किन्तु मित्रों की झुँझलाहट के भय से चुप हो स्थिर रहने लगा। वह सबके विरुद्ध सब कुछ कह रहा है, किन्तु आनन्द और अशोक के विरोध में कुछ नहीं कह सकता। चूँकि ये जीवन के अभिन्न अंग थे, जिनके रुष्ट या कुपित होने का उसे सदा से भय रहा है। पर हृदय में द्वन्द्व मचने लगा, आखिर ऐसा अनुचित व्यवहार क्यों! यद्यपि आज वह कितने दिवसों से चाह कर भी अमरावती से नहीं मिल सका है। इसे अपनी सबसे बड़ी कमजोरी समझता था, किन्तु आनन्द और अशोक को सर्वदा अपने सम्मुख खड़ा देख, दब-सा जाता। उधर विचार स्वतंत्रता में पलने वाली अमरावती के हृदय में रमेश के प्रति नाना प्रकार की भावनाएं उठने लगीं। वह सोचने लगी, तो क्या रमेश में केवल तर्क ही तर्क भरा है, वास्तविकता तनिक भी नहीं। क्या वह स्वतन्त्र होता हुआ भी महा परतन्त्र है। नहीं, ऐसा कभी भी सम्भव नहीं; फिर इसका कारण क्या है इसका पता लगाना चाहिए।

अमरावती एक निर्भीक नारी थी। अपने धनिक पिता की एक मात्र सन्तान होने के कारण परिवार उस पर कोई दबाव नहीं डालता। उसने भी अपने परिवार में अपने प्रति विश्वास की भावना भर दी है। इसीलिए परिवार को उसके विपरीत सोचने का कभी अवसर नहीं मिलता, अतः वाह्य किसी भी वातावरण या समाज का उसे तनिक भय न था। फिर वह समाज के फैले कुविचार को दूर करने की चेष्टा कैसे न करे, भले ही इसमें वह सफल न हो। तीव्र उत्तेजक विचारों के आक्रमण के कारण प्रतीक्षा के समय का अभाव देख कर उसने एक दिन एकान्त में इस पर बहुत सोचा-विचारा। अन्त में इस निस्कर्ष पर पहुँचने के बाद की उचित विरोधी भावना से लड़ने वाला ही मानव सच्चे अर्थ में मानव कहा जा सकता है। उसने विचार मग्न रमेश से कहा, व्यक्ति समाज का विधायक है, इस दृष्टि से एक दूसरे अस्तित्व-रहित स्थायी समाज से लड़कर, वस्तुवाद में विचर कर व्यक्ति को चाहिए कि वह

स्वयं अपने कल्याण-प्रद विचारानुसार समाज का निर्माण करे। पहले तो चेष्टा करने पर भी रमेश इस पर सोच न सका किन्तु बड़े ध्यान देने पर साङ्केतिक, इङ्गित शब्दों को समझते हुए उसने कहा, परन्तु इसके लिए व्यक्ति में पूर्ण बल अपेक्षित है।

"तो व्यक्ति में बल का अभाव क्यों होता है!" "इसलिए कि वह अपने को सब से बड़ा निर्बल समझे बैठा है।"

"फिर वह व्यक्ति काहे का जो अपने आप को इतना हीन समझता है।"

"परिस्थितियाँ उसके अनुकूल नहीं होतीं। अन्यथा वह व्यक्ति, से भी ऊपर उठा हुआ रहता; दूसरी बात यह कि सब कोई अपने आप को लख ही ले तो पारस्परिक सामाजिक विषय में परिवर्त्तन की अधिक गुंजाइश नहीं रहती।"

इस कथन के पश्चात् अमरावती के माथे में खट-खट की-सी आवाज होने लगी। और जाने क्यों इससे अधिक आगे की बातों को सुनकर, समझने की शक्ति का पहली बार उसने अभाव देखा। रमेश की उक्तियों में बड़ा बल रहता है जिसका विरोध करना आसान नहीं। चेतना-भावना में भी वह खोयी-सी रही। अन्त में रमेश के विचारों पर कौमा देते हुए उसने कहा, अच्छा आज हम चलें कहीं निर्जन प्रान्त। में सहज स्वाभाविक विचारों के प्रवाहित होने के कारण कोई भी बाधा उपस्थित न हो, वही अच्छा होता है। रमेश कुछ देर तक इस पर सोचता रहा, किन्तु पुनः अमरावती के यह कहने पर कि मेरे साथ चलने में कोई विशेष हानि है। वह नहीं-नहीं कहता हुआ उसके साथ जाने के लिए प्रस्तुत हो गया। सन्ध्या के मौन प्राङ्गण में अमरावती और रमेश एक ही साथ अनिश्चित निर्भीक प्रान्त की ओर चल पड़े। पर बड़ा आश्चर्य, दोनों गूँगे की भाँति चुप हो कोलाहलमय नगर के विद्युत आलोक में टहलते हुए पुनः दोनों जहाँ से चले थे, वहीं आ गये। जब सहसा उनके पैर रुक गये, तब एक दूसरे को देखकर बड़े जोर से हँस पड़े। अमरावती ने कहा, विचार-कल्पना में कुछ याद ही न रहा!

"और तुम।" इस तुम पर वह ठिठक गई। सोचने लगी, हाँ, तो मैं भी रमेश की तरह चुप ही रही न! उसके हृदय में यह बात उठी कि तनिक पूछूँ

तो रमेश सोच क्या रहा था !

"तुम आखिर सोच क्या रहे थे ?"

"मुझे याद ही नहीं क्या सोच रहा था; किन्तु मुझे उसमें सुख अवश्य मिल रहा था। परन्तु तुम भी कहो न क्या सोच रही थी !"

"सच, तुम्हारी ही तरह मैं भी............।"

मनुष्य की ऊपर सी अवस्था में जिन विचारों का चढ़ाव-उतराव होता है उसे मनोवैज्ञानिक चिन्तन कहते हैं। चिन्तन दर्शन का उद्रेक है। इस दृष्टि से अमरावती और रमेश दार्शनिक कहे जा सकते थे। किन्तु पुष्ट विचारों में वैसा प्रवाह न था जिसमें गति अधिक तीव्र होती है। चाहे जो भी हो रमेश अपने हृदय से कहने लगा, अमरावती से विलग रहना ही क्या हमारे लिए श्रेयस्कर होगा ! हृदय के हाँ कहने पर सोचता, तो क्या प्रयाग छोड़ मैं और कहीं दूर चला जाऊँ। पर यह मेरी सबसे बड़ी कमजोरी है। समाज को अपनी भूल बताने के बजाय हम व्यर्थ के झूठ भय से भीत हो अमरावती जैसी नारी की दृष्टि में अविश्वस्त बन अपने को सर्वथा असमर्थ, दोषी ठहरा कर चला जाऊँ ! यह उचित होगा ! अमरावती कहेगी, बड़ा खोखला ढोंगी था। समाज कहेगा, अपनी कमजोरी के प्रकट हो जाने के भय से रमेश भाग गया है। नहीं, नहीं, यहाँ से जाना सर्वथा अहितकर होगा साथ ही निन्दनीय भी। पीछे लाख प्रयत्न करने पर भी लोगों के हृदय में विश्वास न उत्पन्न कर सकूँगा; बाद में समाज का भला होना सम्भव नहीं होगा। इतने द्वन्द्व विचारों से लड़ने के पश्चात् उसने निश्चय किया, दोनों एक हो कर इसका विरोध करें। पर एक बड़ा हंगामा-सा मच जायगा; दूसरे शब्दों में एक कान्ड हो जायगा। पर कौन इसकी परवाह करे। उसके बाद हृदय में तूफान लिए कालेज जाने के पूर्व ही अमरावती के पास चल पड़ा परन्तु पहुँचने पर अमरावती के सामने कहते न बन पड़ा। उसने पूछा भी, ललाट पर घबड़ाहट के कई चिह्न क्यों ! किन्तु रमेश ने ऐसा कहा, मानो तुम असत्य कह रही हो। तुम्हारी धारणायें गलत हैं। तारीफ तो यह है, उसने ऐसे ढंग से कहा कि अमरावती ताड़े बिना न रही। वह समझ गई, छिपाना चाहने के कारण और भी घबड़ाहट बढ़ती जाती है। पर रमेश

दुर्बल होता हुआ भी सबल है। उसने साफ कहा, हमारे-तुम्हारे बीच चाहे जो भी भावना हो, किन्तु लोग, विशेषकर विद्यार्थी समाज, और ही मतलब निकाल रहा है। बोलो हमें इसका विरोध करना होगा। और नहीं तो क्या !" अमरावती के इस निश्चित उत्तर से रमेश को ऐसा लगा मानो वह उसके पहिले ही से लड़ने को प्रस्तुत है। हृदय की सारी कल्पना को यथार्थ के रूप में परिणत होते देख कर अमरावती की गम्भीरता पर सोचने लगा, पुरुष की अपेक्षा इस नारी में कितना बल है ! फिर उसने कहा, किन्तु परिणाम में हम लोगों का भविष्य अन्धकारमय होगा।

"होने दो समाज के भीतर पैठी हुई कलुषित भावना तो दूर होगी ! यही तो हमारी असफलता का कारण है कि हम पहिले ही भय की शङ्का से नाना प्रकार की बुरी कल्पनायें करने लगते हैं। सच्चे कर्त्तव्य पालन में हम लगें तो हमारा कदापि अहित न होगा। यह सर्वथा अन्याय है कि स्वच्छन्द हो विचारों के आदान-प्रदान का भी हमें अधिकार नहीं दिया जाय। कैसा भी स्नेहाङ्कुर बुरा है, अनर्थ है, इसलिए कि हम युवा पुरुष-स्त्री हैं। क्या हम अपने को अति कलुषित भावना की ओर से हटा कर एक निश्चित शुद्ध भावना की ओर नहीं ले जा सकते ! माना कि अधिकांश घटना इसी पर अवलम्बित है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि भेड़िया-धसान के जैसा सभी एक ही ओर जायँ। यदि कुछ भी ज्ञान का बीज जिनको होगा वे इस पर सोच और समझ सकते हैं। यह भी ठीक है कि युवावस्था में अनाचार का ही अधिवास है, किन्तु इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि समाज सब को एक ही श्रेणी में रख कर समान रूप से सबके साथ एक ही व्यवहार करे। प्रतिशत एक भी आदमी तो उनसे सर्वथा पृथक् विचार वाला होगा और यह सत्य है कि वही एक आदमी सबके सम्मुख एक कल्याणकर आदर्श उपस्थित कर सकता है।" अमरावती के इतना कहने पर रमेश उसके विषय में सोचने लगा, पुरुष का सारा पौरुष अमरावती में निहित है। प्रति-शोध की भावना इतनी जबर्दस्त है कि चारों ओर उत्तेजना आ सकती है। सौ के बीच वह लड़ सकती है और लड़कर जीत भी सकती है। मैं किसी भी आदर्श की मजबूत नींव डालने के लिए अपने को सर्वथा योग्य समझता

था, किन्तु विरोधमयी परिस्थितियों के आने पर देखता था, सारी दुर्बलता मुझ में ही समा गयी है। यही कारण है कि हृदय में सर्वथा उद्गमयी भावना ही दौड़ती फिरती है। विचारों में अस्थिरता ही रहती है, इसीलिए कोई भी विचार चिरस्थायी नहीं रहता। मित्रों की ओर से सबल उक्तियों की वजह सम्मान के पद पर अवश्य बैठा दिया जाता हूँ, पर कार्य रूप में परिणत उन विचारों-सिद्धान्तों के न करने के कारण तुरन्त उस पद से गिरा भी दिया जाता हूँ। इससे तो अधिक अमरावती के प्रति लोगों का अधिक सम्मान है। बहुत दूर तक नीची निगाह किये सोचता रहा, पीछे यह कह कर जाने लगा कि अच्छा, हम लड़ेंगे ही।

दूसरे दिन बहुत काल बाद एक ही साथ कालेज में आते देख सब विद्यार्थियों ने बनाना आरम्भ कर दिया। व्यंग्य के बौछार होने लगे। उधर आनन्द और अशोक भी जल मरे। आज प्रोफेसरों को भी उनका व्यवहार न रुचा। वे भी इसे बुरा समझने लगे। दोनों इसको लख कर भी पूर्ववत् हँसते-खेलते रहे। क्लास में जाने पर लड़कों ने रमेश को और चिढ़ाना आरम्भ किया। परन्तु वह इस प्रकार चुप रहा, मानो उसके कान कुछ सुनते ही नहीं। उधर अमरावती का लेजर-पीरियड था, लड़कियों ने आ घेरा। उसकी त्यौरियाँ चढ़ गईं। प्रभाव-शाली उक्तियों से उसने सबको चुप कर देना चाहा। किन्तु उन हठी लड़कियों पर उनका कोई भी प्रभाव न पड़ा। वे और चिढ़ाने लगीं। अमरावती व्यग्र-सी हो गई। उसने देखा, मैं इसे सह न सकूँगी। अब उसे मालूम हो रहा था, परिस्थिति विशेष में मनुष्य की कैसी अवस्था हो जाती है। किस प्रकार उसका सारा सञ्चित बल निर्बल प्रमाणित होता है और वह समाज की ओर से किस तरह गिरा दिया जाता है। तंग आकर सरोष आँखों को उन की ओर उसने दौड़ाया तो कुछ लड़कियाँ चुप हुईं पर रुकी नहीं। अवकाश होने के समय अब वह चाहने लगी हम साथ न जायँ। किन्तु सोचने लगी, रमेश क्या कहेगा, अमरावती कच्ची निकली। रमेश के साथ उसे जाना ही पड़ा। मार्ग में रमेश ने देखा अमरावती के चेहरे पर उदासी और व्यग्रता छायी हुई है। उसने कहा, कुछ हुआ है क्या?

"हाँ, बहुत कुछ।"

"लड़कियों ने छेड़ा होगा, है न ?"

"हाँ, मैं देखती हूँ उनके आगे हमारी एक न चलेगी। अच्छा, तुम्हारे साथ भी लड़कों का ऐसा ही व्यवहार हुआ ?"

"हुआ, पर पर्वत पर आँकड़ थोड़े ही असर करता है। मैंने चुप्पी साध ली, अन्त में उन्हें भी चुप होना पड़ा।"

"पर मुझ से यह न होगा। आज मैंने अनुभव किया मुझ में गम्भीरता नहीं है।"

"तो यह ठीक नहीं, तुम्हें उनका सामना करना पड़ेगा। और इसके लिए गम्भीरता का होना अनिवार्य है, अन्यथा सफलता पाना असम्भव है।" रमेश ने सोचा प्रथम बार ऐसी परिस्थिति आने से अमरावती घबड़ाने लगी है। होस्टल पहुँचने पर अशोक आनन्द उबल पड़े। अशोक ने कहा, रमेश यदि तुम अमरावती से पृथक् नहीं रहोगे तो याद रक्खो एक दिन गड्ढे में गिर कर ही रहोगे। इस पर उसने कहा, यह ज्यादती है, अत्याचार है। समाज यों ही हमें दोषी ठहराता है। कह नहीं सकता, हम में एक ऐसी भावना है, पर विश्वास रक्खो; गन्दगी नहीं है।

"अच्छा, जो मन में आये करो, जब तुम्हारे आगे समाज कोई चीज ही नहीं तो हमें कुछ नहीं कहना है। किन्तु हमसे तुम्हारा सम्बन्ध नहीं निबहेगा। अमरावती के आगे हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं रहा। तो हमसे अलग ही रहो, बाबा!" रमेश को जैसे काठ मार गया। सहसा उसकी जीभ रुक गई। उसे यह सुन बड़ा दुःख हुआ कि मैं मित्रों से अलग रहूँ। वह उन मित्रों को विश्व का सब से बड़ा सहायक समझता था। उसे कभी विश्वास भी न था कि मेरे मित्र मुझ से ऐसा भी कहेंगे। अब तक सभी भाई से रहते आये थे, आज फूट देख उसका चित्त विक्षुब्ध हो गया। करुणा के आँसू जब उसकी आँखों में उमड़ने को हुए तब वह एक ओर उठ कर यों ही चल पड़ा। उसके जाने के बाद आनन्द ने कहा, उसे शायद चोट लगी; तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए था।

"तो कैसा कहना चाहिए था। ऐसा ही नहीं कहने का यह परिणाम हुआ कि वह यहाँ तक पहुँच गया।"

अशोक एक साफ दिल का आदमी था, जो बात होती झट उगल देता। किन्तु रमेश के चले जाने पर वह भी रह-रह कर सोचने लगा, मैंने ठीक नहीं किया। आज तक हम में से किसी ने किसी को यह नहीं कहा कि वह अलग हो जाय। कभी रोने को भी हो आता। अन्त में अधिक व्यग्रता बढ़ जाने पर वह उसे खोजने निकल पड़ा। सिनेमा, अमरावती के यहाँ सब जगह उसने खोज की, कहीं पता न मिलने पर एक भार लिये होस्टल आया तो उसने देखा, आनन्द भी यों ही बैठा है। उसने कहा, तुमने सच कहा, आनन्द, उसे सख्त चोट लगी। मुझे कहीं नहीं मिला। आनन्द भी घबड़ाया। बड़ी रात होने को हुई पर रमेश नहीं आया। बत्ती यों ही जल रही थी। और वे चुप बैठे-बैठे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। थोड़ी भी आवाज होने पर एक साथ उठते। उधर रमेश दारागंज जाकर यमुना तट पर सोचने लगा, जब अपने भी अपने नहीं रहे, तब किसके लिए समाज और संसार! तीनों हमेशा से साथ रहे हैं। और आज आखिर मेरे ऊपर अविश्वास कर अशोक ने रुष्ट होकर कह ही दिया, हमसे सम्बन्ध तोड़ लो, अलग हो जाओ। मित्रता का धागा ढीला हो कर ही रहा। मेरे विचार स्वतन्त्र होते हैं, यह जानते हुए भी उसने दोषी ठहराते हुए मेरी उपेक्षा की। समाज का पक्ष लेकर अमरावती को व्यर्थ बदनाम करने की चेष्टा में है। अच्छा, मैं अलग ही होकर रहूँगा। मगर यह कैसे सम्भव होगा। हम तीन एक दुनिया के हैं, सब का हृदय एक है। किन्तु अब नहीं, अशोक ने आज अपनी बातों से सिद्ध कर दिया, परिवर्त्तन भी विश्व के लिए आवश्यक ही है। प्रयाग छोड़ दूँगा, जब मेरे मित्रों का विश्वास ही हट गया तब यहाँ रह कर ही क्या होगा। दूर तक यमुना की ओर दृष्टि दौड़ाता, पर घने अन्धकार के कारण कुछ नहीं देख पाता। शून्यता भरी प्रकृति धीमी-धीमी आवाज में उससे कुछ कहने लगी। वह उसके हृदय में यह भरने लगी कि प्रत्येक छोटी-सी घटना पर यदि इतना सोचोगे तो तुम कुछ नहीं कर पाओगे। परन्तु विपरीत कारुणिक भावना के समावेश से यह सब सोचने की उसे फ़ुर्सत ही न

थी। आशा और विश्वास के विरुद्ध अशोक ने बहुत कुछ कह दिया, जिसकी वजह वह क्लिष्ट हो, इधर-उधर भटकने लगा। विचारों से न लड़ना चाहते हुए भी लड़ता रहा। हृदय का उद्वेग घटने के बजाय बढ़ता गया। आत्मा, वैसी की वैसी ही रही। अशोक के व्यवहार पर कई घंटे तक वह रोता भी रहा और कोई उसका सगा भी इस तरह की बातें कहता, तो शायद सह सकता था; परन्तु सगे से भी बढ़ कर अशोक ने उससे कहा कि वह अलग हो जाय, दूर हो जाय। इस असह्य व्यवहार के परिणाम में वह रात भर घुलता रहा। उसके हृदय को तनिक सन्तोष न हुआ।

कालेज में भी अशोक ने उसे सर्वत्र ढूँढ़ा, पर रमेश का कोई पता न लगा, वह नहीं आया। सारा क्लास छोड़ कर वह रोता रहा। उदास आँखें ऊपर उठती ही न थीं। अमरावती को देखकर उतावले शब्दों में उसने पूछा, रमेश को कहीं देखा है ?

"क्यों ? क्या कालेज नहीं आया !"

"नहीं।"

"क्यों ?" इस क्यों के बाद उसकी पलकें भींगने लगीं। अमरावती की समझ में कुछ नहीं आया। वह सोचने लगी, इनकी मित्रता भी धन्य है। पीछे वह भी विवश हुई उसे खोजने के लिए। कई मासों साथ रहने के कारण आज उसका अभाव उसे भी खटका। अशोक कह रहा था, बड़ी चोट लगी होगी उसे। मैं जानता हूँ, इस चोट पर वह मर भी सकता है।

इस उक्ति पर, उसके हृदय में भी धक-धक होने लगा। अमरावती भी खिन्नमना हो चली गई। वह यह नहीं जानती थी कि रमेश के साथ उसका कैसा स्नेह है, पर आज बार-बार उसका हृदय कहने लगा, तुम्हें इससे क्या, वह कहीं भी जाय। मस्तिष्क में भी स्थिरता नहीं थी। वह अलग कह रहा था, रमेश अपना है; फिर दूसरा भी हो तो क्या, एक उच्च मानव तो है।

अमरावती के रोम-रोम से यह आवाज आने लगी, रमेश तुम कहीं भी हो, आ जाओ। व्यग्रता इस प्रकार बढ़ गई कि कुछ भी सोचना या करना उसके लिए कठिन था। रमेश में इतना बचपना भी हो सकता है, यह कभी

सोच ही नहीं सकी थी। जीवन में एक ऐसा समय आता है, जब मानव, व्यक्ति विशेष से यों ही सम्पर्क रखना चाहता है। वैसे व्यक्ति की कारुणिक अवस्था से उसे अनायास ही सहानुभूति हो जाती है। इसका कारण ढूँढ़ने पर विदित होगा, सहज, सरल भावना का उद्रेक होने पर ही ऐसा होता है। ऐसी भावना में स्नेह का स्थान ऊँचा रहता है। प्रेम जैसा भी हो, उसमें भावना और कर्त्तव्य में युद्ध अवश्य होता है। यहाँ स्वाभाविक स्नेह की जीत न होकर, परि-स्थितियों की जीत होती है। अमरावती देखने लगी, सच, अब मेरे हर एक कार्य में विवशता की विपरीत परिस्थित आकर खड़ी हो जाती है। रमेश उसका कोई भी न होकर अपना था, यह वह स्वीकार करने के लिए कभी भी प्रस्तुत नहीं थी। परन्तु आज उसे वाध्य होना पड़ा, यह समझने के लिए कि रमेश उसका एक अङ्ग है।

कालेज से लौटने पर अशोक, आनन्द ने देखा, चादर ओढ़े रमेश यों ही एक ओर पड़ा है। अशोक चेष्टा करने पर भी उसके पास न जा सका। उसे साहस ही न हो रहा था, उसके पास जाने के लिए। उसने आनन्द से कहा, अमरावती को जाकर बुलाओ।

अमरावती बुलाई गई। उसने उसे जगाया। जगने पर अमरावती को उसकी आकृति पर दुःख होने लगा। आँखें फूली थीं, ललाट पर वेदना की संकुठित रेखा खिंची थी। बाल बिखरे थे। उसने पूछा, अच्छी रही न अमरावती?

"हाँ, किन्तु तुम थे कहाँ? तुम्हारी आकृति करुणा-केन्द्र-सी प्रतीत होती है।"

"अब मैं यहाँ से कहीं चला जाऊँगा अमरावती!"

"क्यों?" अमरावती ने व्यग्र हो पूछा। सहसा इस परिवर्त्तन पर उसे बड़ा क्लेश होने लगा। रमेश के निश्चित शब्द से उसे विश्वास होने लगा सच, रमेश यहाँ से चला जायगा। रमेश ने ठहर कर उच्छ्वास भरे शब्दों में कहा, अपनों ने कहा है मैं उनसे दूर हो जाऊँ।

अमरावती कल की घटना से नितान्त अपरिचित, अतः बुद्धि दौड़ाने पर

भी उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था, उधर अशोक की आँखों से पानी बरसता ही जा रहा था। वह सोचने लगा, सच मेरा रमेश कहीं चला गया तो! मैं गूँगा क्यों न हुआ। बिना सोचे समझे उसे सदा कुछ कह ही देता हूँ। हम सभी सम-वयस्क हैं, किन्तु एक छोटा-सा ही बन कर हमारे बीच रहा है। खूब याद है, बचपन से ही, उसकी ऐसी आदत रही है कि हमारे विरोध करने के पक्ष में वह कदापि नहीं रहा है। मैंने एक दिन तिलंगी फाड़ देने के कारण उसका माथा फोड़ दिया। उस दिन आनन्द ने भी उसे मारा था, किन्तु बली होते हुए भी उसने हम दोनों को न मारा। हाँ, रोया अवश्य था; फिर दूसरे दिन जब हम मुँह फुलाये बैठे थे, तब उसी ने बुदबुदा कर हमारे झगड़े का निपटारा किया था।

एक-एक कर अशोक के आगे उसके बचपन की याद आने लगी। उसके हृदय में एक आँधी का झोंका आने लगा। और वह अपने को खड़ा होने में असमर्थ पा रहा था, फलतः चौकी पर सो रहा। बैठे हुए आनन्द ने कहा, दुःखी न हो अशोक! रमेश नहीं जायगा।

"वह जायगा आनन्द, बचपन में न वह रूठता था, न जाता था। अब वह हम सब से रूठ गया है।" अशोक की कातरता बढ़ती गई। अन्त में उससे नहीं रहा गया, जाकर उसने कहा, इतनी छोटी-सी बात को लेकर इतना रूष्ट हो गये! फिर किस बल पर कहते थे, अशोक को पहचान गया हूँ। मेरा ख्याल है उसे तुमने अभी नहीं पहचाना है।

रमेश आखिर आदमी था। उसका चित्त धीरे-धीरे शान्त होने लगा। हृदय कहने लगा, भला अशोक कभी ऐसा चाह सकता है कि रमेश उससे अलग हो जाय। नहीं, यह कभी भी सम्भव नहीं। संसार में अपनापन का दृढ़ सूत्र शायद ही कभी टूटता है। और अपने पर सब का एक विशेष अधिकार रहता है। उसने रोष में जो कुछ कहा, अपना ही समझ कर न, मेरे ही हित के लिए न! दूरत्व की भावना दूर हो गई। धीरे-धीरे वही पुराना व्यवहार आरम्भ होने लगा और कुछ देर में दोनों एक से हो गये! अमरावती, मित्रों के इस हर्ष-विवाद, संयोग-वियोग, रोष और स्नेह को देख कर प्रसन्न थी,

चकित थी। जब वह उठने लगी, तब अशोक ने कहा, मेरे रमेश का हृदय पवित्र है, कालुष्य का उसमें स्थान नहीं। आज पहली बार ऐसी घटना घटी जिस कारण इसे क्षोभ या क्लेश हुआ, जिसका दोषी मैं हूँ।

बेचारी अमरावती की समझ में कुछ नहीं आया, वह कुछ सोचती विचारती चली गई। कुछ देर तक अशोक, आनन्द, रमेश स्तब्ध रहे। पीछे मौन भङ्ग करते हुए आनन्द ने कहा, अच्छा, चलें, भोजन करने। अशोक की दृष्टि, रमेश की ओर गई। मानो कहने लगी, हाँ, रमेश! चलो, अब सब भूल जाओ। रमेश एक अँगीठी के साथ भोजन करने चल पड़ा। भोजन के पश्चात्, संसार के बीच मित्रों का स्थान कितना ऊँचा है, कभी-कभी एक दूसरे की सहायता के लिए किस प्रकार वे अपना प्राण तक दे देते हैं; सच्चे अर्थ में मित्र कहलाने का किसे अधिकार है, आदि-आदि बातों पर घंटों बातचीत करते हुए सभी सोने को हुए। किन्तु आश्चर्य! न रमेश ही को नींद आई, न अशोक को ही। हाँ, आनन्द अवश्य खर्राटे ले रहा था। अशोक सोच रहा था, जाने हममें कैसे स्नेह का आरोप है कि कभी एकदूसरे के रूठने या बिलग होने पर इस कदर हम व्यग्र हो जाते हैं कि दुनिया के तमाम सुख ऐश्वर्य तक को भूल जाते हैं। उस समय हमें किसी ओर रुचि नहीं रहती। रमेश मेरा कोई नहीं, फिर भी थोड़ी देर ही में हम उसके लिए इस तरह व्याकुल हो गये मानो अपना कोई सगा ही हो।

उधर रमेश के अन्त:करण में कई शब्द गूँजने लगे जो कहने लगे अशोक की भावना भ्रातृ-भावना से बढ़ कर है; जिसका महत्त्व बहुत अधिक है।

जाने कब उन्हें नींद आई। प्रातः हुआ। सभी उठे। रमेश के आगे कालेज का वातावरण घूमने लगा। विद्यार्थी पुनः नाना प्रकार की व्यंग भरी बातें कहेंगे। अमरावती को भी लड़कियाँ चिढ़ायेंगी। कालेज छोड़ देने में ही गुन्जाइश है। पुरुष और नारी की व्यापारिक भावना चाहे जैसी भी हो, किन्तु समाज की दृष्टि में उसमें गंदगी ज्यादा है। पवित्र प्रेम में सदैव उन भावनाओं का संचार रहता है, जो समाज के प्रत्येक अंग से बिलग रहता है। इतना तक

सोचने का शायद समाज को अवसर न मिले। किन्तु भीतरी भावनाओं का निरीक्षण करना भी तो समाज का ही काम है। अमरावती एक कर्त्तव्य-परायणा निर्भीक नारी है। रूढ़ि का शत्रु समाज के फैले हुए व्यर्थ के ढोंग के खिलाफ आवाज उठाने वाली अमरावती की आन्तरिक पवित्र भावनाओं को न लखकर, समाज उसे यों ही बदनाम किये जाता है। मैं राष्ट्रीय विचारों का समर्थक या पोषक के अतिरिक्त एक कर्त्तव्यशील युवक भी हूँ। अमरावती चाहती है, पुरुष, नारी के प्रति सभी की यह भावना न रहे कि वे सिर्फ प्रेम की गंदी डोरी में बँधे हैं। कैसा भी दोनों का स्नेह. वासनिक क्यों समझा जाने लगता है। उन्हें यह स्वतंत्रता क्यों नहीं प्राप्त है कि आपस में कुछ सोच-विचार कर राष्ट्र या समाज की सेवा में हाथ बटावें। युवक युवतियों का जहाँ सम्मेलन होता है, बस, लगती है, अफवाह उड़ने। माना कि अधिकांश का सम्पर्क इसी रूप में परिणत हो जाता है। किन्तु इसके अलावे भी तो वैसे कुछ लोग हैं, जिनका उद्देश्य या लक्ष्य इससे हट कर रहता है। सब ओर साम्य अनुचित है। अमरावती के ऐसे उठे हुए विचार के कारण मैं उसका साथ देना चाहता हूँ। जहाँ तक मेरा ख्याल है, मेरे प्रति भी उसकी वैसी ही कुछ भावना होगी। लोगों ने इसका यह अर्थ लगाया कि हम सस्ते रोमांस में विचरते हुए एक दूसरे की बाजारू मोहब्बत की दुनिया में बसने लगे। अमरावती में विचार, परिस्थिति, सँभालने की शक्ति; सच्ची लगन और साध है। अब जब वह एक बीच दरिया में है, उसे छोड़ दूँ! आखिर वह कहेगी क्या! कालेज में भी इसका विपरीत ही प्रभाव पड़ेगा।

रमेश इन्हीं विचारों में मग्न रहा। कई बार झकझोरने पर वह बोलता है। अशोक की समझ में शायद अब भी वह उससे रुष्ट है। कालेज तो तीनों साथ ही चले पर किसी के मुख से आवाज नहीं निकलती थी। आनन्द रह-रह कर कभी कुछ छेड़ता भी, परन्तु रमेश सुन कर भी अनसुना सा कर देता। उसे इस पर कभी झिझक भी होती, किन्तु हूँ, ना, कुछ तो करना ही पड़ता है। रमेश के मस्तिष्क में अमरावती, कालेज, अशोक, आनन्द सभी एक अजीब समस्या बनकर नाच रहे थे। वैसी स्थिति में किसी का वह कुछ सुनना

कैसे चाहे। इस समय वह सिर्फ यही सोचना चाहता, अमरावती या मैं, दोनों में से कोई शीघ्र ही पृथक् हो जाय तो एक दूसरे का कल्याण होगा। अन्यथा परिणाम में कुछ अनर्थ ही होगा। कर्मक्षेत्र में कूदने वाली अमरावती से इसके लिए कुछ कहना होगा। समझाना होगा, अपनी आज की अवस्था से उठने के पश्चात् हम ऐसे समाज से प्रतिशोध आसानी से ले सकते हैं। जीवन में पहले कुछ करने के योग्य हम बन लें, पीछे अपूर्व बल के आरोप एवं परिपक्व बुद्धि के सहारे उपर्युक्त समाज की जड़ उखाड़ फेंकना हमारे लिए कठिन या असम्भव नहीं होगा। धैर्यपूर्वक हम इन लोगों की उपेक्षाओं को सह लें, सहने में यदि असमर्थ हों तो यहाँ से हट कर कहीं और दूसरी अपरिचित जगह जाकर अपना कर्त्तव्य पालन करें। अधिक सम्भव है, वहाँ भी ऐसा ही परिस्थितियों का सामना करना पड़े, अतः दोनों दो जगह चले जायँ। ऐं! अमरावती और मैं दोनों मिलकर ही तो कुछ कर सकते थे। नहीं, अभी नहीं। अभी पृथक् ही रहना चाहिए।

पुनः द्वन्द्व विचारों में उलझने लगा। इस उलझने का कारण ढूँढ़ता, तो एक ही कारण मिलता, वह यह कि अन्योन्य खिँचाव-सा है। हृदय यह स्वीकार करते समय कह उठता है, विलग होने पर वेदना उभड़ेगी। शान्ति के बदले क्रान्ति उथल-पुथल मचायेगी। जीवन की गति एक ऐसी धारा की ओर प्रवाहित होगी, जिसमें बह कर तुम बरबाद हो जाओगे।

कुछ विरोधमय विचारों के समावेश से मनुष्य की स्थिति भयङ्करता को लेकर बदल जाती है। रमेश कहने लगा, यह कैसी कमजोरी है कि इच्छा के प्रतिकूल हम चल ही नहीं सकते। अमरावती क्या है कि वह मेरे बरबाद करने का कारण होगी। जहन्नुम और जिन्नत में जाने वाले मानव को ही बरबाद कर सकती है, मुझे नहीं। यौवन की उच्छृंखलता का यह अर्थ नहीं कि सभी अपने को खोकर समाज की नजरों से गिर जायँ। तब तो आज के विद्यार्थी-समाज का ऐसों के लिए वह समझ उचित प्रमाणित होगी। इसका यह मानी है कि मैं उन लोगों को बुरी धारणाओं का अवसर देता हूँ। इसे रोकने के लिए अपनी दुर्बलताओं को दूर कर कुछ साफ उत्तर देने के लिए

एक पार्टी कायम करनी होगी, जो उन लोगों को एक दिन मेरे विचारों के आगे सर झुकाने को बाध्य करेगी। पर यह तब सम्भव होगा जब मैं सबल हो कुछ कार्य करूँ। परन्तु पुनः इतना ही तक सीमित हो जाना पड़ेगा। भविष्य की आनेवाली महत्त्वपूर्ण समस्याओं को सुलझाने का प्रबल प्रयत्न करना ही श्रेयस्कर होगा। इस विद्यार्थी-समाज के आगे किसी भी आदर्श का स्थायी प्रभाव न होगा। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि इन्हें एक ऐसी शिक्षा मिल रही है, जो सिखाती है, आदर्शवादी होना एक ढोंग है। यथार्थवादी बनो। किन्तु मुश्किल तो यह है कि वस्तुतः समाज यथार्थवाद से कोसों दूर है। शायद उसने अभी तक आदर्शवाद, यथार्थवाद को नहीं समझा है। सच्चे आदर्श की भित्ति, सुदृढ़ होने पर ही विद्यार्थी यथार्थवादी बनेंगे। अन्यथा आगे चलकर वे किसी वाद में न जाकर विनाश की ओर अग्रसर होंगे। फिर शिक्षा को ग्रहण करने का यह मतलब नहीं कि हम अपनी बुद्धि से कोई सरोकार ही नहीं रक्खें। बौद्धिक क्रिया के आगे, कोई भी क्रिया निष्क्रिय प्रमाणित होगी। आधुनिक युग हमें जोर देकर यह बता रहा है कि किसी वाद में विचरने के पूर्व, तुम यह अवश्य विचार लो कि हो कहाँ, किस स्थिति में। तुम्हारे पीछे क्या छुटा जा रहा था, आगे क्या भागा जा रहा है, इस पर ध्यान दो। यह ध्यान देना सबके लिए आसान नहीं। जो अपनी बुद्धि के निष्कर्ष पर पहुँचेंगे, उनका ही ध्यान इस ओर जायगा। बहुत ऐसे हैं जो समझे बैठे हैं, हम जो कुछ करते हैं; वह सर्वथा उचित है, चूँकि उनका ध्यान सब ओर गया रहता है। पर यह उनका महा-भ्रम है। सांस्कृतिक ज्ञानार्जन के लिए वैसी शिक्षा या वैसे अध्ययन की सख्त जरूरत है, जो सबको बता दे; अपनी बुद्धि से जो चलेगा वह निस्सन्देह अपने क्षेत्र में सफलता पायेगा। नश्वर-विनश्वर की स्थिरता में न रह कर केवल वैसे मार्ग का अनुसरण करें जो स्वस्थ और प्रशस्त हो। यूरोपीय प्रान्तों में वैसी शिक्षा पर जोर दिया जाता है, जो किसी साँचे में ढालने के पूर्व प्रज्ञाचक्षु प्रदान कर दे। यह ठीक है कि इस पर रूढ़ि को एक बड़ी भारी ठेस लगेगा, किन्तु युग इतना न आगे बढ़ गया है कि हमारा उधर ध्यान जाना आवश्यक हो गया है। समस्या यह

है कि इसको कार्य रूप में परिणत करने के लिए अभी बिलम्ब होगा। इससे क्या, विलम्ब के भय से मैं अपने को इतनी दूर फेंक दूँ, जहाँ से यहाँ आना नितान्त कठिन ही नहीं, असम्भव है। कैसे भी झगड़े या कलह का निपटारा तब तक नहीं होने का, जब तक मैं, हम के रूप में परिणत न हो जाय। इसके लिए सर्वथा योग्य बनना होगा, और योग्य बनने के लिए उचित अध्ययन का 'होना अनिवार्य है। अपनी अनुभूति भी काम देगी, किन्तु इस समय उसको सञ्चित ही रखना होगा; तत्काल ज्ञानार्जन की ओर झुकना होगा। अशोक सर्वदा, सर्वथा उचित ही बात कहता है। बहुत पहले से उसके विचारों का निष्कर्ष रहा है, पहले अध्ययन पीछे और कुछ। इसी दृष्टि से उसने आवेश में यहाँ तक कह डाला कि मैं उससे पृथक हो जाऊँ। मैंने इसका अर्थ भ्रम में पड़कर ऐसा लगाया कि अनर्थ ही करने पर उतारू हो गया। यह कहो कि फिर उसी रास्ते पर आ गया जिस पर आना चाहिए था।

रमेश के विचारों में परिवर्त्तन की दौड़ होने लगी। अध्ययन, ज्ञान का सोपान है, यह उसकी समझ में आया। नवीन कर्मक्षेत्र में कूद पड़ने का वह आदी रहा है, परन्तु इस बार जाने कैसे उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा, जिसने एक ही आवश्यक दिशा में अग्रसर होने को वाध्य किया। झञ्झावात में बह कर उसका खो जाना कोई बड़ी बात न थी। किन्तु मनुष्य की कभी-कभी ऐसी अवस्था होती है कि वह बहुत उचित विचार को शीघ्र पकड़ लेता है। ऐसे वचार सहायक प्रमाणित होते हैं। यह और बात है कि इसको अपना लेने पर भी अनेकों के मस्तिष्क में बड़े-बड़े भीषण परिवर्त्तन होते रहते हैं। रमेश में भी परिवर्त्तन हो सकते हैं, चूँकि भविष्य की परिस्थितियों का ठीकेदार कम-से कम मनुष्य तो नहीं है, आस्तिकों की दृष्टि में भले ही देवता इसके ठीकेदार हों। कहने के लिए होनी होकर ही रहती है। इसे कोई टाल नहीं सकता। परन्तु कर्मवादी मानव इसको मानने के लिए कदापि प्रस्तुत नहीं। भाग्य पर उसे विश्वास नहीं, कर्म पर है। यदि वह किसी कार्य में, उद्योग में असफल होता है, तो कर्म के सर पर दोष मढ़ता है; भाग्य के सर पर नहीं। उसके जानते, अपनी गलती महसूस न करने वाले, कायर एवं आलसी ही भाग्य को सबसे बड़ा बल

मानते हैं। उनका कहना है, "लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः?" परन्तु इसके उत्तर में कर्म वादियों का कहना है, "मनुष्यः सर्वं कर्त्तुं शक्नोति।" लौजिकली देखा जाय तो यही साबित होगा, सफलता उन्हें ही माला पहिरायेगी जो कर्मवादी हैं। रमेश अपनी धुन का पक्का है या नहीं, यह कहना कठिन है; किन्तु यह सच है, वह जो कुछ सोचता है, उसमें तथ्य अवश्य रहता है। साथ ही यह भी कठोर सत्य है कि उसमें कमजोरियाँ भी अधिक हैं, जो उसकी असफलता का जबर्दस्त कारण कही जा सकती हैं। वही अपनी इन कमजोरियों को जानता है, पर जान कर भी भयंकर भूल कर बैठता है—विवश परिस्थिति की वजह। कालेज में अभी-अभी उसने अमरावती को देखा है, किन्तु आँखें बचा कर एक ओर, जिधर साथियों का झुंड था, बढ़ पड़ा। वह चाहता था, यहाँ से भी दूर चला जाऊँ। परन्तु उलटा-सीधा बकता हुआ उनमें सामिल हो गया। पुनः यह कह कर चल पड़ा कि एकान्त का आश्रय लेकर कुछ पढ़ना है। यूनिवर्सिटी की चहार दीवारी के एक कोने में जाकर वह पुस्तकों के पन्ने उलटने लगा। विद्यार्थियों की दृष्टि में वह पढ़ने में मग्न है, किन्तु अक्षरों में मानो उसके विचार दौड़ रहे हों। एक बार पुनः मस्तिष्क कहने लगा, अपने को ठगने की प्रवृत्ति बड़ी बुरी है। और तुम्हारी यह प्रवृत्ति, यदि तुम नहीं सँभाले, तो एक दिन तुमको ले मरेगी। अमरावती कोका नहीं है, जो तुम्हें पकड़ खायगी। उससे मिलना-जुलना छोड़ने का यह मतलब है, उसकी ओर से गिरना। अफवाहों से डरना सच्चे युवकों का कर्त्तव्य नहीं उनसे लड़ना ही तुम्हारा काम है। जिस जीवन में खुराफातों की ढेर नहीं, जिस जिन्दगी में तूफान नहीं, बवन्डर नहीं, वह भी क्या जीवन है! तुम्हारे जीवन में अमरावती आँधी है, विद्यार्थी-समाज, तूफान; और तुम्हारे विचार, क्रान्ति के बवन्डर हैं। सामने देखकर भी चलने में जिसे ठोकर लगती है, वह विवश है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि तुम विवश हो। कर्त्तव्य के आदेशानुसार चलने में ही तुम्हारा कल्याण है। परन्तु, तुम्हें देखना होगा, वस्तुः कर्त्तव्य कहता क्या है, परिस्थितियों की अवहेलना करने को सिखाता है या आत्मसात् करने को कहता है। यदि परिस्थिति तुम्हें आत्मसात् कर लेगी, तो इसका यह मानी है, तुम कमजोर

होते हुए भी झूठ गर्व में पड़कर अपने को सबसे बड़ा बली समझते हो। मनुष्य कभी अपने को सबसे ऊँचा समझने को बाध्य होता है; इस ऊँचे होने में बल है, जो व्यर्थ का है। शक्ति है, जो अनावश्यक है।

साँझ के आँगन में भी कई विद्यार्थियों ने देखा, अब भी रमेश किताबों में ही जूझा है। और वह इस समय सोच रहा था, अमरावती क्या सोचती हुई घर गई होगी। मेरे प्रति कई शङ्कायें उठती होंगी, जिनका वह अर्थ लगाती होगी, रमेश एक धोखेबाज युवक है; उसपर विश्वास करने वाले गड्ढे में गिर कर ही रहेंगे। वह मुझ ही पर नहीं, सारे पुरुष-समाज पर अविश्वास करने लग जायगी। मेरे ही जैसे व्यक्तियों के कारण समाज भी बदनाम हो जाता है। तो आखिर मैं करूँ क्या!

रमेश रोने-रोने-सा हो गया। वह सोचता, और खूब सोचता, किन्तु परिणाम में किसी निष्कर्ष पर न पहुँच पा सकने के कारण बच्चों की भाँति बिलखने लगता। कभी विवशता, आँसू बन कर टपक पड़ती। कभी भयङ्कर मेघ बन कर बरसने के बजाय, गरज कर, कड़क कर ही रह जाती।

बिजलियाँ जल गईं। चारो ओर अन्धकार-प्रकाश की आँख-मिचौनी हो रही थी। रमेश अन्धकार के कुछ हिस्से में ही अभी तक पड़ा था। आँखें किताब के पन्ने पर टिकी थीं। जब कुछ विचार उसे सजग करने लगे, तब उसने उँगलियों से टोकर देखा, पन्नों पर आँसू टपके हैं, जिनसे सारा पृष्ठ सिक्त है। रूमाल के एक छोर से वह पोंछने लगा। वह रोना नहीं चाहता, पर हमेशा रोता ही। कभी एकान्त में कह उठता, मैं ही रोता हूँ या और भी! और नहीं तो मैं ही क्यों! मेरे ही भाग्य में रोना क्यों बदा है! परिस्थितियाँ तो औरों के लिए भी हैं, पर देखता हूँ, ये विवश परिस्थितियाँ, जैसे मुझ में ही लिपट पड़ी हैं। विश्व की आरजू-मिन्नत वाली भावना का भिखारी रहता तो मैं भी औरों जैसा ही निर्द्वन्द्व विचरता रहता। क्या रक्खा है, इन विचारों में। विश्व का उत्थान, भारतीय विद्यार्थी-समाज का कल्याण, अमरावती, इन सबके पचड़ों से तो दूर रहता। पर ऐसी जिन्दगी से भी क्या, जिसमें सिवा शुष्कता, निरसता के और कुछ नहीं। आम्र वृक्षों के आगे, करील का क्या महत्त्व है। किन्तु देखने लगा हूँ, सभी अपने को आम्र वृक्ष ही समझे बैठे हैं।

५

द्वन्द्व विचारों में पलता हुआ रमेश डेरा आया। अशोक चाहता हुआ भी कुछ बोल न सका। आनन्द ने सिर्फ कहा, भोजन-ओजन कुछ करोगे या नहीं ?

"नहीं।"

"क्यों ?"

"इच्छा नहीं है।"

"ओह !" इस सीमित उत्तर से दोनों स्तब्ध हो गये। उनसे और कोई अन्य प्रश्न करते न बन पड़ा। रमेश उन दोनों के रोष को समझता अवश्य था, पर जैसे उसे इससे कोई प्रयोजन नहीं, न परवाह ही। एक विचित्र विडम्बना लेकर सभी संसार में आये हैं, अशोक, आनन्द भी उसी में हैं, ऐसी उसकी समझ थी किन्तु यहाँ पहुँचने पर हृदय कह उठता, इतना कृतघ्न न बनो रमेश, अशोक और आनन्द ऊँचे स्तर पर रहने वाले युवक हैं। उन लोगों ने तुम्हारा हमेशा साथ दिया है। प्रतिक्रिया की भावना उनमें कदापि नहीं। इस पर भी यदि तुम उनके विरोध में सोचते हो तो यह उनके प्रति अन्याय है।

रमेश सिमटता चला गया। उसकी भावना बदल गई। परन्तु रह-रह कर तीव्र परिवर्त्तनमय विचारों में उलझता तो उलझा ही रह जाता। पीछे करवटें बदलते-बदलते नींद आने लगी और वह सो गया। अपनी स्थिति के अनुकूल चलने वालों को कष्ट अवश्य हुआ है, किन्तु सुख का भी उन्हों ने स्वप्न देखा है। देखा ही नहीं, पाया भी है। रमेश भी वह सुख पा सकता था, किन्तु स्थिति के सदैव प्रतिकूल चलने के कारण आया हुआ सुख भी दुःख में मिल गया। शान्ति की उसाँसे भरना चाहता है, किन्तु क्रान्ति के बवन्डर में बह पड़ता है। अशोक, आनन्द ने कई बार समझाया है, सोचने से अधिक करो; इस करने में तुम्हें शान्ति मिलेगी। बहुत सम्भव है, क्रांति इसी शान्ति से भाग खड़ी हो। परन्तु कमजोर हृदय वाले रमेश पर इसका कोई खास प्रभाव

नहीं पड़ा। जिन्दगी में आराम का बीज़ प्रेम ही बो सकता है। और वह प्रेम से पृथक रहा है। प्रेम पर विश्वास अवश्य है, पर स्थायी नहीं। प्रतिक्षण परिवर्त्तन का प्रतीक बन बैठना, वह कदापि नहीं चाहता, पर वही होता ही है। अमरावती भी शायद समझने लगी है। रमेश में सदैव परिवर्त्तन होता रहता है। विचार-कल्पना पर विराम देना वह नहीं जानता, उसमें बहना जानता है, और बहता है। सम्भव है, आगे भी बहे, इसे रोकना कठिन है। दूसरे दिन कालेज जाने पर अमरावती मिली। उसने उसे देखते ही कहा न मिलने की कसम खा रक्खी है ?

"नहीं तो।"

"फिर ?"

"कुछ ऐसे ही कारण आ पड़े थे।"

"देखो रमेश, अपनी कमजोरी को प्रकट न करना अनुचित है और तुम विश्वास मानो, विशेष कर पुरुष में यह बहुत बुरी आदत पायी जाती है। बेचारी नारी की कमजोरी स्वतः प्रकट हो जाती है। विद्यार्थी-समाज के भय से ग्रस्त हो तुम मुझ से किनारे हो गये। मुझ से मिलते इसलिए न थे कि अमरावती मेरी कमजोरी लख लेगी।"

"नहीं, यह समझ तुम्हारी गलत है। कुछ ऐसी परिस्थितियाँ आ पड़ी थीं कि मिल न सका। तुम देखोगी, अब भी मैं तुम्हारा साथ देने के लिए किस तरह प्रस्तुत हूँ। जीवन का उपदेश, लक्ष्य मेरा यही रहा है, सिर्फ सेवा-कृति।"

अमरावती भूल गई कि क्लास भी है। जब सहसा विधा नाम की लड़की ने उसे छेड़ा, तब याद आया ओह ! क्लास भी है। किन्तु कोई बहाना कर रमेश की ओर देखते हुए उसने कहा, आज क्लास छोड़ दूँगी, चलो रमेश, कहीं चलें।

दूर प्रान्त में रमेश और अमरावती बैठ गये। मौन, गम्भीर आकृति देखकर पहले तो दोनों चुप रहे किन्तु कुछ क्षण पश्चात् अमरावती की आँखें रमेश में कुछ ढूँढ़ने लगीं, मानो उसकी आँखें कहने लगीं, समाज को सीख देने

मात्र के लिए ही तुमने मेरा साथ दिया ! रमेश की भी आँखें अमरावती की आखों में जा मिलीं। वे भी कहने लगीं, वही प्रश्न अपने आप से करो; देखूँ तुम्हारे पास उसका क्या उत्तर है। पुरुष और नारी में साफ भेद देखा जाय तो, कभी-कभी साफ विदित होगा, नारी पुरुष पर सारा दोष गढ़ कर आप निर्दोष होने के लिए क्या नहीं करती है। तुम भी उसी ओर जा रही हो, जिधर मैं जा रहा हूँ। स्त्री हृदय गम्भीर होता हुआ भी चञ्चल है, और पुरुष हृदय चञ्चल होता हुआ भी गम्भीर है। निश्चेष्ट हो मैं चाहता था तुम्हारी ओर से उपेक्षित होऊँ तो होऊँ पर प्रत्यक्ष कुछ न करूँ। किन्तु हृदय में उठे विचारों ने ऐसा नहीं होने दिया।

अमरावती कुछ घबरायी। उसकी भी आत्मा कहने लगी, वही नहीं, तुम भी। उपकार की भावना में सहज ,निकट-सम्पर्क के स्नेह ने और ही कुछ डाल दिया है। अन्यथा कहाँ की अमरावती और कहाँ का रमेश। अनजाने पथ में कालेज ने कारण बन, दोनों को मिला दिया। मिलने पर पनपते वृक्ष ने और ही कुछ रुख अख्तियार किया। अध्ययन ही एकमात्र, लक्ष्य में सीमित रहता तो शायद हम इधर-उधर की कुछ न सोचते। तो क्या मुझमें भी कमजोरी है। हाँ, अन्यथा रमेश की ही तरह मुझमें भी परिवर्त्तन थोड़े ही सम्भव था !

धूप खतम हो चली थी कि रमेश ने कहा, नारी प्रच्छन्नरूप से सब अनर्थ करने को तैयार रहती है। पुरुष उस अनर्थ को आँखें फाड़ कर देखता है और खूब देखता है।

"और पुरुष-समाज तो कोई अनर्थ ही नहीं करता !"

"यह कब मैंने कहा कि वह अनर्थ नहीं करता। करता है पर स्त्री के अनर्थ में भीषणता अधिक है जिससे विनाश की सम्भावना रहती है।"

"यह तुम्हारा पुरुषों के प्रति पक्षपात है, रमेश, पुरुष भी भयङ्कर अनर्थ करते आये हैं। नारी जब उनके अत्याचार या अनर्थ से पीड़ित हो उठती है, तभी कुछ करने को उतारू होती है ! खैर, छोड़ो इन बातों को, अब तो मिलेंगे !"

"हाँ, हाँ।" दोनों चलने को हुए। रमेश अमरावती के प्रति खिंचता-सा जा रहा है। अमरावती की भी वही दशा है। किन्तु जब कभी यह सोचकर रमेश उत्तेजित हो उठता है कि इस खिंचाव में प्रेम की आँच है, जो वासना को लिए हुए बहुत तीव्र है। मानी हुई बात है इस आँच में हम झुलस कर ही रहेंगे। अमरावती को पा लेना मेरे लिए कठिन नहीं। किन्तु एक दिन इस वासनिक प्रेम का परिणाम बुरा ही होगा। अमरावती भी मेरी उपेक्षा करने लग जायगी। माना कि पत्नी के रूप में होकर मेरा कुछ बिगाड़ेगी नहीं; किन्तु यह भी सच है, उसका मेरे ऊपर विश्वास कदापि टिक न सकेगा। फिर विश्वास टूटने पर मेरा प्रभाव भी उस पर नहीं पड़ेगा। शिक्षा भी उसने ऐसी ही पाई है कि मेरा खुल कर विरोध करने में अपनी कमर भी कस सकती है। आह! मैं यह क्या सोच रहा हूँ। वासनिक प्रेम में उलझना ही एकमात्र कार्य रह गया! राष्ट्र को उन्नतिशील बनानेवाले विचार, अमरावती के आकर्षण में मिल गये!! जातीय भेद-भाव दूर करने की प्रतिज्ञा मिट गई!!!

रमेश के हृदय में फिर एक बार विचार-ज्वार उमड़ आया। वह विपरीत नदी की आवेगमयी धारा में बहा जा रहा था कि सँभला। उसे चेतना हुई, हृदय अमरावती से विलग रहने के लिए बाध्य करने लगा। वह उधेड़-बुन में पड़ा हुआ, लड़ता हुआ, झुँझलाता हुआ डेरा आया और सो रहा।

अशोक और आनन्द रमेश के गहरे मित्र थे, इसलिए अन्य तथा कथित मित्रों ने उन्हें भी रमेश को लेकर छेड़ना आरम्भ कर दिया। उन लोगों के व्यवहार में कालुष्य की भावना राज्य कर रही है, यह पैठाने की फिकर में थे, वे। अशोक कदापि यह मानने को तैयार न था कि लोग उसके रमेश में गंदगी पावें। किन्तु मित्र जब रमेश के खिलाफ कान भरने लगे, तब उसे भी कुछ विश्वास हुआ। सोचने लगा, हाड़-मांस के रमेश में प्रेम का अंकुर उत्पन्न होना कोई बड़ी बात नहीं। किन्तु कालुष्य का अधिवास बहुत बुरा है। एक दिन समाज अमरावती के चलते उसका विनाश करके ही छोड़ेगा। अशोक फिर इसे सहेगा कैसे? सारी दुनिया उसे बदनाम कर दे पर उसके रमेश पर उँगली न उठाये। समाज उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखे, किन्तु रमेश

की उपेक्षा उसे बरदाश्त नहीं होगी। उसने सोचा, मैं उसे निकट से देखूँगा कि वह कहाँ तक सही-दुरुस्त रास्ते पर चल रहा है। यदि समाज का कहना सच होगा, तो पहले वह समझायेगा, न समझने पर, फिर गलत रास्ते को अख्तियार करने पर उसका गला भी दबोच सकेगा। रमेश का क्या अधिकार है कि वह बिना मित्रों से समझे-बूझे सब कुछ किये जाता है। आखिर मित्रों पर भी तो उसका उत्तरदायित्व है। समाज उसके बिगड़ने का दोष हम पर भी तो मढ़ सकता है। कितनी बार उसे समझा चुका हूँ, अभी तुम, सब को तज कर केवल अध्ययन में ही लगो, किन्तु जाने कैसी सनक सवार हो गई है कि बाबू साहब जैसे सुनते ही नहीं। अमरावती के यौवन एवं सौन्दर्य का नशा उन पर छा गया है, भला वे सुनें कैसे!

विरोध की भावना जाग्रत होती गई। अशोक अब उसका पिछलगुआ होगा। वह देखता चलेगा, रमेश कहाँ और क्या करता है। अमरावती से भी अधिक सम्पर्क नहीं रखने देगा। यदि उसका प्रेम पवित्र भी हुआ तो क्या! समाज भी तो कोई चीज है! उसके नियम, उसके बन्धन के भीतर ही रहना मनुष्य के लिए आवश्यक है।

जो सबल है वह अलबत्ता समाज का सामना कर सकता है। रमेश में बाह्य बल अवश्य है। किन्तु आन्तरिक बल का उसमें सर्वथा अभाव है। अमरावती उसका सदैव साथ देगी, इसमें सन्देह है। आखिर वह साथ ही क्या देगी। खाक, स्वयं तो वह अबला है। यह दूसरी बात है कि उसे अपने ऊपर झूठ बल का गर्व होगा। जहाँ तक मेरा ख्याल है, बीच गङ्गा की धारा में रमेश को छोड़ कर एक दिन भाग खड़ी होगी। उसके बाद मेरे रमेश का क्या होगा।

अशोक स्त्रियों के प्रति ऐसी-ऐसी भावनायें सोचने लगा कि उनसे घृणा-सी होने लगी, सारे फसाद की जड़ें यही हैं। यह वह भूल गया कि गिरे समाज को ऊपर उठाने का श्रेय स्त्रियों को भी है। उनके मनोभावों को समझना, पुरुष के लिए नितान्त कठिन है। अपनी-अपनी अवस्था के अनुसार विचार परिवर्त्तन का यह मतलब नहीं कि वे ओछी वृत्ति के हैं। रमेश उसका अपना

था, इसलिए हर एक प्रकार से खतरे से बचाना अपना सबसे बड़ा कर्त्तव्य समझता था। किन्तु अमरावती एक स्त्री है, जिसे पुरुष-समाज कभी भी दबोच सकता है। उसके विषय में सोचने की उसे फ़ुर्सत नहीं। रमेश और अमरावती दोनों एक दूसरे के प्रति स्नेह रखते हैं, गहरी सहानुभूति रखते हैं। समाज उनके इस स्नेह को स्वीकार नहीं करता तो इसमें उनका क्या दोष है! अशोक इस पर न सोचकर केवल यही सोचता है कि अमरावती नहीं रहती तो मेरे रमेश को कोई भी आँखें उठा कर नहीं देखता। यदि रमेश को आगे बढ़ने से नहीं रोकूँगा तो वह कहीं का नहीं रक्खेगी। संसार में अमरावती जैसी स्त्रियाँ, कितनों के घर को उजाड़ फेंकती हैं। सामाजिक-शृंखला को तोड़ने के लिए तो अपनी सहानुभूति दिखलाती हैं, किन्तु पीछे एक भयङ्कर भूल दिखला कर अपने साथ ही पुरुष समाज को ले घसीटती हैं। उनके हृदय में तूफ़ान उठता है, आँधी उठती है, तो चाहने लगती हैं, मेरे साथ ही सभी बह जायँ। आग की ज्वाला में जलने लगती हैं, तो पुरुष भी उसकी लपटों में आ जाय। इसके लिए वे सब कुछ करने को तैयार हो जाती हैं। उन्हें अपने आगे किसी की परवाह नहीं, चिन्ता नहीं। उनका जीवन पुरुष के जीवन से सर्वथा पृथक् है। उनकी दुनिया पुरुष की दुनिया से सर्वथा अपरिचित है। कर्त्तव्य की रूप-रेखा निश्चित करने में वे कभी सफल नहीं हुईं। उनका दायरा सीमित है, तो पुरुष का असीमित। उनके विचार उलझे हुए हैं, तो पुरुष के सुलझे हुए। उनकी दृष्टि संकुचित है, इनकी सुविस्तृत। वे चंचल हैं। ये गंभीर। वे खूब सोचती हैं, विचारती हैं, किन्तु किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व अपने आपको खो कर ही दम लेती हैं। रमेश उनके बीच जाकर उन्हीं-सा अपने को खो देगा, किन्तु मैं इसको सह न सकूँगा। जीवन की प्रवृत्ति अनेक प्रकार की होती है, फिर भी मैं हठपूर्वक अपनी प्रवृत्ति की ओर उसे झुका कर ही रहूँगा।

स्वार्थान्ध अशोक केवल रमेश के लिए स्त्री-समाज से घृणा करने लगा। स्त्री यदि बिगाड़ती है, तो पुरुष बनाता भी कहाँ है। जलाती है, तो कौन कहे कि आग बुझाने के लिए वह पानी देता है, खर ही डालता है। वह अपवित्र

है, तो यह कौन परम पवित्र है। एक धोखे की गठरी में बाँध लेने का प्रयास इनका कब से होता चला आ रहा है। समाज की ओर से निर्दोष होने पर भी वहिष्कृत कर देना, इनके बाँये हाथ का खेल है। प्रेम का नाटक खेलते हैं, ढोंग रचते हैं, और पीछे बदनाम करते हैं, स्त्रियों को। अपने जाल फैला कर व्याध की तरह दूर लुक-छुप कर रहते हैं, पीछे स्त्री मृगी को फाँस कर अट्टहास करते हुए निकलते हैं। सारी उत्तत आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए बड़ा से बड़ा काण्ड खड़ा कर देते हैं। फिर जब परिस्थितियाँ मजबूर कर देती हैं, अस्तित्व विहीन होने के लिए, तब उपेक्षित हो स्त्रियाँ वैसे वर्ग में फेंक दी जाती हैं, जहाँ से निकल भागना उनके लिए दूभर हो जाता है। नारी के सारे प्रबल प्रयत्नों का परिणाम सिर्फ यही है कि वे जहाँ की हैं पड़ी रहें। ऊपर उठाने का दुस्साहस करेंगी तो निश्चय ही घुल-घुल कर तिल-तिल जल-जल कर मरेंगी। उसका अपना कुछ नहीं; पुरुष-समाज का है। यदि भूल से कुछ रह गया तो विवश हो उसे देना ही पड़ेगा। आश्चर्य तो यह है कि जाने वह भी कैसी है कि देने के समय ननु-नच करना जानती ही नहीं और लेने के समय हाथ बढ़ा पाती ही नहीं।

अशोक कालेज आया तो उसने देखा, रमेश फिर अमरावती के साथ। सारी मित्र-मण्डली कहने लगी, तुम्हें रमेश पर बड़ा गर्व था अशोक! अपने हर एक कार्य में उसे भी समेटते थे। वह अब तुम्हारी कुछ क्यों नहीं सुनता! अमरावती में घुल कर ही रहा। कहाँ देश, राष्ट्र के उत्थान के लिए सतत प्रयत्नशील वह रमेश और कहाँ एक चञ्चल तितली अमरावती के भोले क्षणिक आकर्षण में मस्त यह रमेश। अब निश्चय जानो, तुम्हारे रमेश का विनाश निश्चित है। वह गिर रहा है, गिर कर ही रहेगा। उसे कोई रोक नहीं सकता। तुम्हें भी रोकने की सामर्थ्य नहीं। अध्ययन ही जिसकी एकमात्र सीमा थी, आज वह मामूली स्त्री का पिछलगुआ बना है; इस विषय में उसके विचार असीमित हैं। कहने के लिए कोई भी कह बैठेगा, नारी असीम है, पर ऐसा प्रेम के हाट में विचरने वाले ही कहा करते हैं।

तीव्र उत्तेजक विचार में बहे जाने के कारण अशोक अभी अस्थिर था।

वह सोचना नहीं चाहता, पर सोचता ही जा रहा था। कभी व्यग्र हो चिल्ला पड़ता, अरे ! मैं हूँ ही कौन उसका कि उसके विषय में इतना सोचूँ। यदि वह गिरता है, तो गिरे; मरता है, तो मरे; जलता है, तो जले; कराहता है, तो कराहे। अमरावती चाहे रमेश मुझे इससे क्या। जाकर तुम्हें जो कुछ करना है करो; मुझे क्या लेना-देना है। ऐं ! नहीं, मैं क्या बक गया ! उसका क्यों कोई बिगाड़ेगा। वह जो कुछ करता है, अपना करता है; इसमें किसी का क्या ! मेरे रहते वह गिरेगा कैसे, यह कैसे हो सकता है कि मेरा रमेश जलता रहे और मैं खड़ा-खड़ा देखता रहूँ, और देखता ही रह जाऊँ।

अशोक ऐसे विरोधमय विचारों के साथ जूझता रहा। कभी रमेश को योंही बाहर जाना स्वीकार करता, तो कभी कह उठता, नहीं, अशोक के रहते ऐसा कैसे होगा। भला एक भाई अपने दूसरे भाई को डूबते देख बचायेगा नहीं ! नहीं, तो वह भाई बनने का दम क्यों भरता है। उसका क्या अधिकार है, भाई कहलाने का। रमेश मेरा अपना है, सगा है, और मैं उसे यों फिसलता देखता रहूँ, चुपचाप ! यह असम्भव है, पर सब तो असम्भव ही होता चला जा रहा है। पैर बढ़ता ही जाता है, आगे की खाई की उसे परवाह नहीं, फिक्र ही नहीं। मैं उसे रोकूँगा, देखूँ, कैसे नहीं रुकता है। अशोक की एक न सुनेगा तो निश्चय ही वह उसका गला दबोच कर रहेगा। अशोक का वह है, और उसे होना ही पड़ेगा।

अशोक व्यग्र बौखलाया-सा उठा और आँखों को दूर तक फैलाता हुआ बड़ी तेजी से यूनिवर्सिटी कम्पाउण्ड में चक्कर मारने लगा। उसका सागर मथा जा रहा था फिर वह चुप कैसे रहे। शान्त रहना उसके लिए कभी भी सम्भव नहीं। आदर्श की सुदृढ़ भित्ति ढह गई तो इसका यह अर्थ नहीं कि रमेश जिधर चाहे मुड़ पड़े, बह पड़े, उस पर कोई अंकुश ही नहीं। ऐसा समझना, उसकी भूल है। अशोक, उसका अंकुश है। उसके अनुसार उसे चलना होगा, और चलना ही पड़ेगा। अशोक की दुनिया रमेश है, उसे बरबाद होते देख सकना, उसके लिए कठिन है !

वह सहसा बड़े उद्वेग के साथ कम्पाउन्ड से बाहर हो गया। होस्टल में जा

किताबें फेंक कर हाँफने लगा; मानो चलता-चलता थक गया हो। सच, वह रमेश को जी-जान से प्यार करता था, सबसे अधिक। उम्र में भी उससे कुछ बड़ा ही था। सन्ध्या समय जब आनन्द आया तो उसकी यह व्यग्रता देख घबराने को हुआ। उससे कुछ पूछने की हिम्मत ही नहीं हो रही थी। अन्त में बड़ी देर खड़ा रहने के बाद उसने धीमे स्वर में पूछा, बात क्या है अशोक? 'जैसे तुम जानते ही नहीं? रमेश जानकर गड्ढे में गिरता जा रहा है, और तुम्हें कुछ पता ही नहीं। सारा विद्यार्थी-समाज मुझे गालियाँ दे रहा है। तुम्हारे कान कुछ सुनते ही नहीं, मानो बहरे हैं। आज भी अभ्रःरती से घुल-घुल कर बातें करता हुआ कालेज में जा रहा था। जाने उसकी शर्म-हया कहाँ चली गई। प्रोफसर उसे नफरत की निगाह से देखते हैं। साथ ही जोरों से मेरी भी बदनामी हो रही है, अशोक का रमेश उसके रहते-रहते, आखिर फिसल कर ही रहा।' अशोक एक ही साँस में सब बक गया मानो आनन्द के आगे इसका कोई महत्त्व ही नहीं। उसने कहा, बस, इतनी-सी बात के लिए तुम्हारी यह दशा! 'तुम इतने बड़े काण्ड को इतनी-सी बात कहते हो!' और नहीं तो क्या, तुम नहीं जानते, यह कोई नयी बात थोड़े ही है, ऐसा तो सभी करते हैं। रमेश ने भी किया। फिर तुम उसके लिए मरते क्यों हो? वह जहन्नुम में जाय, तुम्हें क्या? कितनी बार मैंने कहा, उसके पीछे तुम पागल न बनो, मित्र थे, अपना कर्त्तव्य निभाया, कई बार अवहेलना करने पर भी उसे तुमने अधिकारपूर्वक समझाया बुझाया। कण्टका कीर्ण मार्ग से हटा कर एक निरापद स्वच्छ मार्ग पर चलने को आदेश दिया ही है। फिर भी जब उसने तुम्हारी एक न सुनी तो तुम व्यर्थ में क्यों अपना भी दिमाग खराब कर रहे हो? क्या मैंने उसे नहीं समझाया, गिरते से नहीं रोका? क्या विद्यार्थियों ने मेरे ऊपर कब्तियाँ नहीं कसीं? सब हुआ, पर देख लो, हार कर अब ज्यों का त्यों खड़ा हूँ। गिरेगा अपने जायगा। मेरा क्या, आदि का मित्र था, इस नाते उसका साथ दिया ही; अब क्या चाहते हो?'

अशोक आँखें लाल-पीली करने लगा। उसने कहा, खबरदार, जो आगे ऐसी बात कही। मैं कभी नहीं जानता था कि तुम्हारी इतनी ओछी प्रवृत्ति है।

रमेश जो कुछ है, मेरा है। अपनी जान देकर भी उसे गिरने से बचाना मेरा कर्त्तव्य है। तुम्हारी जीभ क्यों नहीं गिर गई, यह कहते समय कि वह मेरा होता ही कौन है। आगे से कहा तो.........।

'हाँ, कहूँगा, है तो नहीं कहूँ! दूसरा नहीं तो अपना कहाँ है, शत्रु नहीं तो वैसा मित्र भी नहीं है। मित्र रहता तो हमारी एक नहीं सुनता? तुम्हारी तरह मैं मूर्ख नहीं कि सत्य को असत्य ठहराता। एक बार नहीं हजार बार कहूँगा, वह अपना नहीं दूसरा है, आनन्द कुछ उचित से अधिक बक गया, जिसे अशोक सहने के लिए कदापि तैयार न था। उसने पास में रक्खे हुए रूल से दे मारा, जिससे आनन्द का माथा फूट गया। खून की धारा बह पड़ी। जब वह गिर पड़ा, तब एक बारगी अशोक रो पड़ा। उसका हृदय कहने लगा, आनन्द ने जो कुछ भी कहा, सत्य और उचित कहा। तुमने उसके प्रति बहुत बड़ी भूल की।

विचित्र अवस्था में उसने कहा, माफ करो आनन्द, मैं रमेश के खिलाफ एक शब्द भी सुनने के लिए कदापि तैयार न था, इसलिए अविचारे तुम्हारा माथा फोड़ दिया।

यह कह उसने अपनी रक्खी हुई धोती से उसकी पट्टी बाँधी, और स्वयं डाक्टर के यहाँ से दवा लाकर, चढ़ायी। आनन्द जानता था, हम तीनों में अशोक एक अलग ऊँचे स्तर पर रहनेवाला मानव है। वह क्रोध में आकर सब कुछ कर सकता है, पर हृदय से कभी किसी का बिगाड़ नहीं सकता। दया-ममता उसके प्रधान गुण हैं। आवेश में आकर वह अपनों के खिलाफ आवाज उठाने वाले का सब तरह से विनाश कर सकता है। खास कर रमेश के विरुद्ध एक शब्द भी सुनने के लिए वह प्रस्तुत नहीं रहता। उसने अशोक की भीगी पलकों को देखकर, करुण स्वर में कहा, अधिक न सोचो अशोक! मैं तुम्हारे रग-रग से परिचित हूँ। किन्तु कम से कम अपने को उसकी सहायता करने के योग्य तो रक्खो। अपने आप का जब स्वयं विनाश कर दोगे तब रमेश का विनाश निश्चित ही है। धैर्यपूर्वक सब सहते हुए धीरे-धीरे उसे अनुचित से उचित मार्ग पर लाने का प्रयत्न करो। सफलता-असफलता तुम्हारे हाथ तो है

ही नहीं। वातावरण ही ऐसा है कि रमेश को वैसा होना पड़ा, अन्यथा उसका भी दोष नहीं कहा जा सकता। यह उसे अवश्य चाहिए था कि वह अपने संयम से काम लेता। पर होनी होकर ही रही।

'क्या कहूँ आनन्द, हृदय ही ऐसा है कि उसे किसी गलत रास्ते पर जाते देखते रहने के लिए मैं तैयार नहीं रहता। खैर, अब तो किसी भी तरह उसे रोकना ही होगा।' यह कह वह चादर ओढ़ सोने को हुआ तो आनन्द ने कहा, पहले खा तो लो, मैंने कहा न, रमेश की सहायता के लिए कम से कम अपने आप की भी तो रक्षा करो। ना-ना करने पर भी आनन्द के हठ से उसे खाना ही पड़ा। खा कर आने के पश्चात् उसे नींद भी आई, यह तो वही जाने।

६

जीवन, वह भी युवकों का, एक विचित्र तमाशा है। न जाने कितने प्रकार के खेल होते रहते हैं। इस खेल को देखने वाले एक अजीब रंग में रंग जाते हैं। कोई ऐसा भी है जिसे यह खेल पसन्द नहीं। ऐसों में ही था, अशोक। पर यह उसकी भूल है। परिवर्त्तन खेल का दूसरा नाम है, और यह खेल होकर ही रहता है। चाहे अशोक जैसे कितने मानव नहीं पसन्द करें। रमेश का हृदय कई भावनाओं का केन्द्र है। जानें कितने परिवर्त्तन होंगे, उसमें। इसके लिए वह दोषी है भी. नहीं भी है; चूँकि वह उन मनस्वियों में नहीं जिन्होंने संयम और सदाचार का ठीका ले रक्खा है। किन्तु अशोक तो यही समझा बैठा है। उसका रमेश मनस्वी क्यों नहीं हो सकता। वह सब कुछ हो सकता है, नहीं होने का एक मात्र कारण केवल अमरावती है। यदि वह उससे हटा दिया जाय तो वह वह हो सकता है जिसकी लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। चाहे जो कुछ भी हो, अशोक उसे बदलने के लिए सब कुछ कर सकता है, करेगा।

प्रकृति अपने कपड़े बदल चुकी है, उसे नये प्रकाश के प्राङ्गण में आना है। और लाल किरणों के सङ्ग। खेलना होगा क्या, खेलने लगी। रमेश

कहीं से आया तो उसने देखा, आनन्द के माथे पर पट्टी बँधी है। किन्तु वह इसके विषय में पूछे कैसे! उसने तो इन सबसे नाता तोड़-सा लिया है; फिर भी लड़खड़ाती जीभ से उसने पूछा, यह क्या हुआ है आनन्द?

'कुछ नहीं, केवल पट्टी है।' रमेश को ठेस लगी। वह इतनी बड़ी पट्टी का कारण एक वाक्य में नहीं सुनना चाहता था। उसने पुनः पूछा, साफ कहो न; गिर गये थे या किसी ने......।

'कुछ नहीं।'

आनन्द की आँखें मुड़ीं; किन्तु बिना उत्तर दिये ही वह चल पड़ा। रमेश को इस पर झुँझलाहट हुई। वह मन ही मन कहने लगा, मैं गैर जो ठहरा। भला वह मुझसे कुछ कहे कैसे?

आज कालेज में किसी खास विषय पर बोलना था। चूँकि एक दूसरी यूनिवर्सिटी के वाइस्‌चान्सलर आये थे। प्रोफेसरों ने मिलकर कहा, रमेश निश्चित समय पर पहुँचना, क्योंकि अँगरेजी में तुम्हीं सबकी अपेक्षा अच्छी स्पीच दे सकते हो। किन्तु प्रातः ही आनन्द से मन-मुटाव होने के कारण उसका मस्तिष्क चञ्चल हो उठा। वह कई उलझनों में व्यस्त हो गया। उसे थोड़ी भी स्मृति नहीं रही कि आज मुझे स्पीच देनी है। वह एक विचार-नृत्य में इस प्रकार मग्न रहा कि कोई भी उसे सुध न रही। पीछे शून्यभाव हो, रूम से निकल कर चला जा रहा था कि उसे ख्याल आया, अमरावती के साथ पार्टी में जाना है। तुरंत तांगे से पार्टी में शामिल होने के लिए चल पड़ा। उधर देर होती देख प्रोफेसरों को बड़ा रोष आ रहा था। लड़के अशोक से कहने लगे कैसा बेहया है। अमरावती को छोड़कर आना उसे पसन्द न था। प्रोफेसरों की उपेक्षा करने से भी बाज नहीं आया। ऐसा व्यसनी लड़का तो इस कालेज में शायद ही आया हो। कम से कम प्रोफेसरों का तो उसे ख्याल करना चाहिए था। बड़ा चला था, देश-सेवक बनने। राष्ट्र के उत्थान में जीवन लगा देने का सङ्कल्प तो दूर रहा, अब वासनामय प्रेम में उलझ कर अपने आपको भी विनष्ट कर रहा है। दुनिया के आगे किस मुँह से अपनी बड़ाई हाँक रहा था। लोगों को धोखे में डालने के लिए कैसा जाल बिछा रहा था। अशोक भी

उसकी कैसी डींग हाँक रहा था। कहता था, मित्र रमेश यूनिवर्सिटी का रेकार्ड बीट करेगा। अब वह सब कर चुका। हाँ, यह अलबत्ता हो सकता है, कि प्रेम का रेकार्ड बीट कर सके। एक अँगरेज के सम्मुख उसकी इज्जत बढ़ती, किन्तु उसे इज्जत की थोड़े ही परवाह रही। अमरावती की परवाह के आगे, उसे किसी की परवाह न रही। उसका अध्ययन, उसकी उन्नति, उसका राष्ट्र और उसकी दुनिया सब कुछ अमरावती ही रह गई। अब न अशोक जरा उसकी प्रशंसा करे। अपने रमेश पर उसे बड़ा गर्व था, परन्तु उसने उसे लात मार दी। उसे कुचल कर, मसल कर, एंठ कर अमरावती के साथ सैर करने चल पड़ता। बेचारा अशोक देखता ही रह जाता। हाय रे अशोक का रमेश! तुमने अपने मित्र के साथ कैसी मित्रता निभायी। अशोक के शब्दों में तुम उसके सहोदर भाई थे न, अच्छा भ्रातृत्व निभाया! दो-चार ही ऐसे मिल जायँ तो सब के सम्मुख एक नया आदर्श उपस्थित हो जाय। जिसको सामने रख कर चलनेवालों का बड़ा कल्याण हो।

अशोक के आगे-पीछे ऐसी ही चर्चायें हो रही थीं। वह सुनते-सुनते ऊब गया। वहाँ उसके लिए रुकना असम्भव हो रहा था। वह रमेश की खोज में निकल पड़ा। हृदय में भयङ्कर बवंडर लिए वह उसके तमाम अड्डों पर घूम आया, पर वह कहीं न मिला। अन्त में अमरावती का पता पूछने पर उसे विदित हुआ, वह एक पार्टी में गई है। उसे समझते देर न लगी कि वह भी वहीं गया होगा। वह बदहवास वहीं दौड़ा चला जा रहा था। भयङ्कर अपमान सहने के कारण उसे अपनेपन का कुछ ख्याल न रहा। सीधे वह पार्टी में पहुँचा। उसने देखा, रमेश और अमरावती कैरम् बोर्ड खेलने में लीन हैं। कभी दोनों को आँखें मिलाते हुए भी उसने देखा। कुछ देर में खेल समाप्त कर, खेलते-कूदते दोनों एक सघन कुंज में पहुँचे। अशोक का हृदय सन्देह का घर बन गया। लड़कों का कथन सच देख, बौखला उठा। उनके पास पहुँचा। उसकी आँखें आग उगलने लगीं। इन्हें देखते ही अमरावती चीख पड़ी। रमेश भी भय से काँप उठा। वह जानता था, अशोक को किसी शक्ति की परवाह नहीं। वह मुझे जान से मारने में भी नहीं हिचक सकता।

'तुम्हें कितनी बार मना किया, अमरावती के साथ न रहा करो। समाज एक बहुत बड़ी भित्ति है, उसे तोड़ना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं। अध्ययन के सिवा संसार की किसी वस्तु से सम्पर्क न रक्खो। किन्तु अमरावती के यौवन, सौन्दर्य के आगे, तुम्हें मेरा सारा कथन फीका लगा। क्यों, बोलते क्यों नहीं? अशोक मर जायगा तभी वह तुम्हारी चिन्ता छोड़ सकता है, अन्यथा नहीं।'

रमेश काँप रहा था। उसके पास इन सब प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं था। उसने सहमते हुए कहा, प्रेम करना पाप है?

'ओ, अब तुम्हारी इतनी हिमाकत की अशोक को चिढ़ाने लगे।'

'नहीं, चिढ़ाता नहीं, सच..... स......च......।'

'सच! अशोक ने कई तमाचे जकड़ दिये, और ऐसा घूँसा भी मारा कि जोरों से रमेश वैसी जगह गिरा, जहाँ ईंटों का ढेर था। उसे सख्त चोट आई। किन्तु इसकी उसे परवाह ही न रही। वह उसी अवस्था में उसे छोड़ कर सीधे होस्टल पहुँचा। तमतमाये चेहरे को देखकर आनन्द समझ गया, अवश्य कोई बड़ा काण्ड करके आया है। उसने कहा, रमेश मिला था?

'हाँ, मिला था; आज बड़ी मार भी मारी है, शायद मर भी जाय।'

'एँ, ऐसा।'

'हाँ!' अशोक ने सर ऊपर किया। आँखें उठायीं। उनमें आँसुओं के भयङ्कर बादल उमड़ रहे थे। अब बरसे तब बरसे। आनन्द ने पूछा, कहाँ मारा है?

'अमरावती के साथ पार्टी में गया था, वहीं।' इतना कहते न कहते रो पड़ा।

'आनन्द, न चाहते हुए भी तुम्हारे अशोक ने वही किया, जो सर्वथा अनुचित ही कहा जा सकता है। हृदय कह रहा है, रमेश अब नहीं बचेगा। जाओ आनन्द, उसे देखो, सच कहीं वह मर न जाय। गलती उसने भी की, मैंने भी; किन्तु वह भोला-भाला है। संसार के कुचक्र से अपरिचित होने के कारण ही उसने गलतियाँ कीं। उसने अपराध अनेक किये हैं; किन्तु अभी छोटा ही तो ठहरा। छोटों से अपराध होते ही हैं। मैं उससे भी बढ़कर

अपराधी हूँ कि मुझमें क्षमाशीलता का सर्वथा अभाव है। जाओ आनन्द, शीघ्रता करो।'

आनन्द ने बीस-पचीस मील की स्पीड से साइकिल चलाई। पहुँचने पर देखा, अमरावती उसके उपचार में लगी है। किन्तु खून गिरना जारी है। उसकी आँखें बन्द हैं। ललाट के भीतर बड़ा गहरा छेद हो गया है। शायद काँटी हल गई हो। उसने शीघ्र प्रबन्ध कर उसे हौस्पिटल पहुँचाया। डाक्टर के पूछने पर बताया, ईंट के ढेर गिर जाने के कारण यह सब हुआ। बड़े प्रयत्न के बाद रमेश को चेतना हुई। सामने उसने आनन्द को पाया। करुण और संयत शब्दों में उसने पूछा, अशोक भैया अधिक नाराज थे, उनसे कहना; अब उनका रमेश वही करेगा, जो वे चाहेंगे। किन्तु अब वह दूर चला जायगा। उसकी ओर से अब शान्त रहें। परिवार ने भी उनसे कहा था, वे मेरी सदैव देख-भाल करते रहेंगे। उन्होंने उसीके अनुसार सारे कार्य किये। अपना अध्ययन छोड़, उन्होंने मेरे ही अध्ययन की परवाह की। यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। किन्तु.........किन्तु उनसे कहना, रमेश उनसे अलग रहेगा। उन्होंने एक दिन कहा ही था, रमेश, मुझसे अपना सम्पर्क न रक्खो, पृथक् ही रहो। अब वही होगा, मैं चला जाऊँगा।

रमेश की आँखें बरसने को हुईं, तो आनन्द ने उन्हें पोंछते हुए कहा, क्या बकते हो रमेश! अभी भी तुम्हारा बचपना नहीं गया। अशोक के हृदय को पहचानते हुए भी कह रहे हो कि उससे अलग चला जाऊँगा। बताओ तो यह सुन उसे कितना दुःख होगा कि उसी के कहने से रमेश चला जायगा। भला इसे सोचो तो तुम्हारा यों ही कहीं चला जाना, क्या वह बर्दाश्त कर सकेगा।

'हाँ, आनन्द, उनकी इच्छा ही थी कि मैं अवश्य उनसे नाता तोड़ लूँ।'

'ऐसा नहीं कहते रमेश।' रमेश का सर चकराने लगा, आँखें गजब की होने लगीं। डाक्टर ने विशेष बात करने के लिए मना किया है। आनन्द होस्टल की ओर यह कह कर चल पड़ा कि थोड़ी भी दशा बिगड़ने पर होस्टल् सुपरिन्टेण्डेन्ट् को फोन करेंगे।

अशोक क्रोधी अवश्य था, पर सब के लिए नहीं; केवल अपनों के लिए।

किन्तु उसे भी हृदय था, जिसमें करुणा, दया, ममता सब भरी थी। रमेश को मारने के पश्चात् उसके हृदय में क्रान्ति मच गई। उसकी दशा सुनने के लिए, आनन्द की बाट जोह रहा था। हौस्पिटल् इसलिए नहीं गया कि संभव है, और वह डर जाय। उसे भी क्रोध उमड़ सकता है। अभी नादान ही तो ठहरा। व्यग्र हो, इधर-उधर सर पटकने लगा तो?

ऐसे ही कई विचारों के आने से वह रुका रहा। कहीं भी कल नहीं पड़ती। रूम में बत्ती जल रही थी। और वह चहल-कदमी कर रहा था। कभी माथा ठोकता, कभी बाँह पर सर रख रोने लगता। मछली-सा छटपटाने लगा, रमेश को अपने आगे वह एकदम नादान बच्चा समझता। सोचने लगता, दुबली-पतली हड्डियों में इतना बल कहाँ कि वह इतनी बड़ी चोट को सह सके। यदि कहीं मर गया तो, मर गया तो...! अशोक भी मर जायगा, जहर खा कर, डूब कर। किन्तु अमरावती को भी मार कर ही रहेगा। उसके रमेश को उसी ने छीना, नष्ट किया। भला उसका रमेश कभी ऐसा हो सकता था कि उसकी एक न सुनता। राष्ट्र का रमेश था जिस पर अशोक का बड़ा गर्व था। उसके रमेश के चलते उसकी पूछ होती। लोग एक बारगी उसे देखकर कह उठते अशोक का अपना रमेश, अशोक की निधि रमेश। किन्तु उसने अशोक के घर को उजाड़ कर ही दम लिया। अच्छा, यदि अशोक का रमेश सचमुच छिन गया तो, निश्चय ही वह भी नहीं बचेगी; भले इसके लिए मुझे अपनी जान गँवानी पड़े।

इसी विचार में लीन था कि आनन्द आया। अशोक ने उससे लिपट कर पूछा, अधिक चोट तो नहीं लगी है, आनन्द?

"तुम्हें क्रोधमें किसी की चोट की थोड़े ही परवाह रहती है। बेचारे के ललाट में बड़ी काँटी हल गई थी। सर भी फूट गया था। बहुत देर बाद चेतना हुई। कह रहा था, अशोक भैया, मुझे माफ कर देंगे। वे अधिक नाराज हो गये हैं। परन्तु............।"

"परन्तु क्या? आनन्द, कहो रुको नहीं; मैं जानता हूँ, रमेश को बड़ा घाव लगा होगा। हृदय में भी चोट लगी होगी। कहो आनन्द, वह क्या कह

रहा था ?"

"यही कि अब मैं कहीं दूर चला जाऊँगा।"

'क्या वह चला जायगा ? न जाने दो आनन्द, वह मुझ से रूठ कर चला जायगा, फिर मैं मना भी न सकूँगा।"

अशोक, आनन्द का पाँव पड़ने पर उतारू हो गया, चूँकि वह स्वयं जानता है, रमेश के बिना जी सकना कठिन नहीं असम्भव होगा। और इस बार ऐसी भयङ्कर घटनायें घटीं कि उसे विश्वास हो आया, रमेश का हृदय मुझ से फट कर ही रहेगा। मैं भी ऐसा हत-भाग्य निकला कि उपकार के बदले मित्रों का अपकार ही करता रहा। और खासकर रमेश का अपकार करके ही रहा। सभी युवक प्रेम की दुनिया में विचरते हैं, क्या उनमें कालुष्य की भावना नही ? जरूर है, किन्तु जाल-फरेबी होने के कारण सभी, समाज की आँखों से बचकर सस्ते रोमांस वाले प्रेम को अपनाते हैं। रमेश सांसारिक भावना से अनभिज्ञ होने की वजह कुछ गुप्त रखना नहीं जानता था; फलतः सभी उसके प्रेम को जान गये, और लगे, उसकी खिल्लियाँ उड़ाने। वह आप ही एक दिन ठोकर खाकर सँभल जाता। व्यर्थ ही मैंने उसे मारा। वह भी वहाँ मारा, जहाँ मेरा कुछ बोलना भी अनुचित था, अन्याय था। अमरावती के आगे मैंने उसका घोर अपमान भी किया, सिर्फ इसलिए कि वह अमरावती से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर, मेरे कहे हुए मार्ग पर चले। यह मैं उसके होस्टल् पहुँचने पर भी कर सकता था। सम्भव था, समझाने पर ही इस बार वह रुक पड़ता। अस्तु जो कुछ भी हो; अपनी सारी शक्ति लगा कर, उसे जाने से रोक लो आनन्द ! उससे जाकर कहो,,उसका अशोक अब कभी कुछ नहीं कहेगा। तुम जहाँ भी जो भी मन में आये करो। अशोक की जीभ कभी न खुलेगी। आँखें खुली रहेंगी, पर तुम्हारी किसी भी घटना को नहीं देख पायेंगी। ओह ! यह तो मैं भूल ही गया, तुम उसे छोड़ कर क्यों आये ?

"डाक्टर ने उसकी सारी व्यवस्था करते हुए मुझे चले जाने को ही कहा।"

"खैर, कल प्रातः ही उठ कर जाना, और उसे समझाना, वह कहीं नहीं जाय।"

७

अमरावती, अशोक की भयङ्कर आकृति देख, चेतना विहीन अवश्य हो गई, किन्तु थोड़ी ही देर के लिए। कुछ देर बाद जब उसे चेतना हुई, तब उसने देखा, रमेश बेहोश पड़ा है। ललाट में, निकटस्थ बेञ्च की काँटी हल गई है। ईंटों से माथे का और भाग भी फूट गया है। बड़ी शीघ्रता से उसने काँटी निकाली, और साड़ी के एक छोरे को फाड़कर, पट्टी बाँध ही रही थी कि आनन्द पहुँचा। अशोक की उग्र भावनाओं का कारण उसकी समझ में नहीं आया। बड़ी चेष्टा करने पर भी यह नहीं समझ पाई कि आखिर रमेश पर अशोक का इतना भीषण प्रकोप क्यों? यदि इसका कारण मैं बनी तो उसका क्या अधिकार था, मुझ से बदला न लेकर, एक निर्दोष, नितान्त दुर्बल व्यक्ति से बदला लेने का। प्रतिशोध की भावना में यदि उत्तेजना अधिक थी, तो मेरा सहज ही में वह विनाश कर सकता था। क्रोध का यह अर्थ नहीं कि अनुचित काण्ड खड़ा करते फिरें। आश्चर्य तो यह है कि अपने को सबसे बड़ा धैर्यवान् और बुद्धिमान् समझने वाला अशोक स्वयं कितना अधैर्यशाली, मूर्ख मानव है। सारी बुद्धि कहाँ किस गड्ढे में उसने फेंक दी थी कि रमेश की इतनी दुर्दशा कर के ही दम लिया। मानवता भी तो कोई चीज है, इस नाते भी तो कमसे कम उसे रमेश की स्थिति का ख्याल करना चाहिए था। मनोरञ्जन यदि उसकी दृष्टि में बुरा था तो पहले ही से उसे पृथक् रखना चाहिए था। प्राचीनता का पृष्ठ-पोषक था, तो आधुनिकता का बाना क्यों पहन रक्खा था। रूढ़ि के विरुद्ध आवाज उठाने के सदैव पक्ष में रह कर, आधुनिक मनोरञ्जन के साधन, पार्टियों से उसे घृणा क्यों हुई?

अमरावती का नारी हृदय एक बार अशोक के पुरुष हृदय से बदला लेने पर तुल गया। प्रेम करने के कारण यदि अशोक ने रमेश को मारा, तो यह उसकी भूल है। उसे प्रेम करने नहीं आता, इसका यह अर्थ नहीं कि वह प्रेम को पाप एवं कलंक प्रमाणित करे। रमेश के स्नेहमय व्यवहार से सबको

प्रेम करने की इच्छा होगी। उसके उच्च विचार, सच्ची लगन, सच्ची साध के आगे सब का अनायास ही सर झुक सकता है। माना कि उसमें दुर्बलता भी है, परन्तु यह दुर्बलता सभी में है, केवल उसी में नहीं। व्यापारिक प्रेम, कृत्रिम स्नेह पर लुब्ध होकर यदि अशोक कुछ करता तो एक बात भी थी। सहज स्नेह, विशुद्ध प्रेम का महत्त्व वह नहीं जानता था। शायद इसी वजह इस प्रकार उसे भ्रान्तियाँ हुईं। यह भी सम्भव है कालेज के लड़कों के उकसाने पर उसने आवेश में आकर रमेश का सत्यानाश किया। दुनियावी भावना से यदि वह अपरिचित नहीं रहता तो सबकी आँखों में धूल झोंक कर अपना सब काम निकाल लेता।

रात भर बिजली के प्रकाश में आँखें फैलाये अमरावती छोटे से रूम के संकुचित वातावरण में चिन्तना करती हुई उठ-बैठ रही थी। कहीं भी उसका मन नहीं लग रहा था। हृदय के आवेग को रोकना उसके लिए कठिन था। रमेश की विवश परिस्थिति पर आँसुओं का स्रोत उमड़ पड़ना स्वाभाविक ही था। परन्तु आज पहली बार उसे अपने ऊपर भी ग्लानि हुई कि अमरावती एक स्वच्छन्द कल्याणप्रद विचार में पलने का संकल्प कर कालेज में आई। किन्तु उसे भी अपने पग से डिगना पड़ा। उसके माता-पिता को विश्वास था, उनकी लड़की अमरावती कालेज में जाकर बड़ा नाम करेगी। परन्तु यहाँ तो वह कुछ का कुछ हो गई। अतीत के विचार मानो एक स्वप्न थे या कल्पना मूर्त्तिमान् आधुनिक प्रौढ़ विचार तो प्रेम में मिल गये। कोरी भावुकता का उसमें सञ्चार हो गया। वास्तविकता से दूर वे विचार थे जो बिल्कुल अस्वाभाविक भी कहे जा सकते हैं। अनुभूति का थोड़ा भी उनमें स्थान न था। और बिना अनुभूति के विचारों में सुदृढ़ता एवं प्रौढ़ता आना कठिन ही है। बल्कि कालेज के नये रमेश वाले वातावरण ने अमरावती को सिखा दिया, कहाँ कब क्या होता है। विश्व में चलने के लिए, समाज में जीने के लिए, असत्य का आश्रय लेना, और अपनी आकांक्षाओं का दमन करना उतना ही आवश्यक है जितना ज्ञान के लिए अध्ययन, लिखने के लिए कागज। आन्तरिक मनोभावों को प्रकट करने की रीति, आज ही के वातावरण ने तो

सिखलाई !

हौस्पिटल में दूसरे दिन अमरावती रमेश से मिलने गई, किन्तु उसे इस पर आश्चर्य हो रहा था कि रमेश को मेरे आने से कोई विशेष प्रसन्नता नहीं है। उसने समझा, इतने बड़े काण्ड होने के कारण इतना चित्त दुःखित है। उसने पूछा, तबीयत कैसी है ?

'अच्छी है ।'

'मैं देख रही हूँ, तुम बहुत अधिक दुःखित हो ।'

'हाँ ।'

'इसका कारण कल वाली घटना या और कुछ ?'

'छोड़ो, इन प्रश्नों को अमरावती, अब मुझे अच्छा होने पर सबसे पहले घर जाना है, फिर कहीं और दूसरे कालेज में पढ़ना है। यहाँ के क्षुब्ध जीवन एवं पारस्परिक कलह से तंग आ गया हूँ। यदि आगे भी ऐसा ही रहा तो निश्चय ही पागल होकर ही रहूँगा ।'

अमरावती की आकृति में करुणा समा गई। परन्तु जाने क्यों, और कुछ पूछने की इच्छा ही नहीं जागरित हुई। उसने सोचा, जब रमेश भी उससे सम्पर्क रखना नहीं चाहता, तब और के प्रति प्रतिशोध की भावना कैसी ! वह जायगा तो जाय, मेरी कमजोरी होगी, यदि मैं यह समझूँ कि उसमें मैंने अपने को बाँध रक्खा है। परन्तु मेरा भी यहाँ रहना उचित नहीं, चूँकि उसके चले जाने पर अशोक दुःखित होगा। और इसका कारण उसकी दृष्टि में मैं बनूँगी; अतः चला जाना ही सब प्रकार से श्रेयस्कर होगा। जीवन में रमेश के आने से एक अजीब परिवर्त्तन हो गया था, विचारों में एक उमंग की लहर आई थी। सुख-संसार का निर्माण हो रहा था। मेरे हृद्-रूम में उसने दीया की जगह बिजली की रोशनी बारी। काले मेघ को उड़ा देने के लिए प्रचण्ड वायु का काम किया; अँधेरी रात में चन्द्रमा का स्थान लिया। दूर एकान्त जंगल से ही बाँसुरी की एक तान छेड़ी। यह सब उसी की वजह हुआ। उसके चले जाने से बहती धारा रुक जायगी। खिले फूल मुरझा जायँगे; लगा पौधा आँधी के एक झोंके में उड़ जायगा। जलती रोशनी सहसा बुझ जायगी।

चलती ट्रेन उलट जायगी। परन्तु आखिर इसके लिए किया क्या जाय! यदि रुकने के लिए कहूँ तो उसकी नजरों में मेरा कोई स्थान न रह जायगा। मेरी हीनता प्रकट होगी। नारी यह हीनता पुरुष के सम्मुख न प्रकट करे, वही अच्छा है। अन्यथा उन्हें गिराने का मुझे अधिक अवसर मिलेगा। मेरे जीवन में रमेश जैसे कई पुरुष क्रान्ति के बीज बोयेंगे, चूँकि उनकी यह क्रान्ति का बीज बोना एक पेशा है; उनकी यह एक आदत है।

अमरावती रमेश के पास से चली आई। कुछ ही देर जाने के पश्चात् आनन्द आया। उसने रमेश से अशोक की सारी अभ्यर्थनायें कही, किन्तु सब व्यर्थ। उसने जाने का हठ किया, उसकी समझ में यहाँ उसका विनाश निश्चित है। आन्तरिक स्वरूप में परिवर्त्तन होना आवश्यक है। मानी हुई बात है चलती हुई घड़ी यहाँ बन्द होकर रहेगी; उसका एक-एक पुरजा टूट-टूट कर ही रहेगा। बजता हुआ सितार का तार टूट ही जायगा। रह गई अमरावती, उसका यदि मेरे प्रति सच्चा स्नेह होगा, पवित्र प्रेम होगा तो दिन बदिन वह दृढ़ होता जायगा। और कहीं अन्य चञ्चल लहर-सी लड़ी लड़कियों के सदृश ही खोटी निकली तो निस्सन्देह मेरा भविष्य अन्धकारमय होगा।

मानव का बीच वाला जीवन, एक बहुत बड़ा सागर है, जिसका पार होना असम्भव तो नहीं, किन्तु कठिन अवश्य है। पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध की लड़ाई देखते ही बनती है। जूझता-लड़ता, हँसता-रोता, हारता-जीतता मानव यदि उक्त विस्तृत अथाह सागर को पार कर गया, तो एक दिन कई समाजों का विधायक होगा। जनता सदैव उसको माथे चढ़ाने के लिए प्रस्तुत रहेगी। विश्व की रूपरेखा स्थिर करने में उसे अपूर्व सफलता मिलेगी। आदर्श का वह माप दण्ड होगा। अपने आपको जीत कर, औरों को भी जीत सकेगा, इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं। रमेश का यह जीवन वही सागर है, जिसका पार होना कठिन है। वह यदि निश्चय कर ले, मैं इसे पार करके ही छोड़ूँगा, तो वह पार कर सकता है; किन्तु हृदय की दुर्बलता, बहुत बड़ी दुर्बलता है, इसे वह समझे तब। अन्यथा बार-बार धोखे के जाल में उलझता चला

जायगा। यह ठीक है कि परिस्थितियाँ सब कुछ उसके खिलाफ करने में रहेंगी। परन्तु इसकी परवाह छोड़कर उसे अपने कर्त्तव्य में लगना होगा। अतीत की नव निर्मित सृष्टि का और ही रूप देना होगा। अन्यथा उसके लिए सच्चे अर्थ में आदमी बनना भी अब कठिन होगा। दार्शनिक भावना को कुछ समय के लिए बन्द कर देना अच्छा था, मगर इसका यह अर्थ होगा कि असलियत से दूर कहीं निर्जन प्रान्तमें वह फेंक दिया जायगा; अतः इस ओर भी ध्यान देना होगा, किन्तु कम।

रमेश घर चला गया। माता-पिता अपने पुत्र के शारीरिक परिवर्त्तन को देख कर क्लिष्ट थे। ललाट के घाव को देखकर उन्होंने सआश्चर्य, व्यग्र हो पूछा, यह घाव कैसा ? इस पर रमेश के रोम-रोम खड़े हो गये, और अशोक की वह भयङ्कर आकृति आँखों के आगे नाचने लगी, जो पार्टी वाले कुञ्ज में थी। परन्तु रुककर उसने घाव का कारण, एक कोठे से गिरना बताया। सबने मिल-कर एक स्वर से इस पर कहा, ऐसा ही तुम्हारे स्वास्थ्य में आगे भी परिवर्त्तन होता रहा, तो तुम कालेज में पढ़ना-लिखना छोड़ कर घर पर बैठे रहो। ईश्वर की कृपा से रोटी-दाल की अभी कमी नहीं है। आगे का भगवान जानें। उसमें भी यदि तुम्हारा स्वास्थ्य बना रहा तो कहीं भी भर पेट अन्न प्राप्त कर लोगे, यह हमारा विश्वास है। पढ़ने-लिखने का यह अर्थ नहीं कि अपने आपको किसी काम के योग्य न रक्खो। पास करने की फिकर में, अपनी जिन्दगी गँवानी, कहीं की बुद्धिमानी नहीं है।

पता नहीं यह सब वह सुन रहा था या नहीं, किन्तु सुनने के ही पोज में खड़ा रहा। हृदय के कोलाहल को दूर करने के प्रयत्न में वह लगा। किन्तु शान्त न होकर कोलाहल नित्य बढ़ता ही गया। रह-रह कर कभी यह सोचने को बाध्य होता कि दूसरी जगह अशोक, आनन्द कहाँ मिलेंगे। उसने मुझे मारा तो मेरे ही लिए न ? क्या मेरे प्रति उसकी ममता, करुणा, दया न थी ! यह कैसे हो सकता है ! क्रोध के वशीभूत हो मेरे लिए वह बड़ा से बड़ा काण्ड खड़ा कर सकता है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वह क्रोध में मेरा गला ही दबा डाले। पहले उसे मेरे प्राणों

की परवाह होनी चाहिए, तब और कुछ। जब मेरे जीवन ही का स्वाहा हो जायगा, तब वह भला किसका चाहेगा। अमरावती से पृथक होने पर भी मुझे डाँट या मार सकता था, किन्तु उसके सम्मुख भी मेरा अपमान करने से वह बाज नहीं आया। मैं पुरुष ठहरा, और अमरावती नारी। दोनों को अपने-अपने ऊपर गर्व था। पर अब तो उसके सम्मुख मैं हारा-सा रहूँगा। वह अब अपने समाज से कहेगी, पुरुष की मक्कारी में अब कोई सन्देह नहीं। साथ ही अपने आपके चलते वह किसी भी नारी का भविष्य बिगाड़ सकता है। उसके प्रेम में कोई बल नहीं, उसके आगे इसका कोई महत्त्व नहीं। अपने आगे नारी का वह कोई मूल्य नहीं समझता! उसकी समझ में नारी, वही पुष्प है जो कभी भी पैरों तले कुचल दिया जा सकता है। उसकी दृष्टि में नारी, पुरुष की प्रगति में रोड़ा का काम करती है, चन्द्रमा को छुपाने में बादल का काम करती है। उससे दूर ही रहना अच्छा है।

घर पर रहने पर भी रमेश के विचार को अवकाश नहीं। जब देखो, तभी ललाट पर गहरी वेदना की छाप। अपने आप की चिन्ता में वह इतना व्यस्त रहता है कि आसपास की आवश्यक वस्तुओं पर भी उसका ध्यान नहीं जाता। प्रकृति के सौन्दर्य पर रीझना चाहने पर भी हठात् अपनी मनोवृत्तियों पर एक खास परिवर्त्तन देखता। मनोरञ्जन जीवन की आवश्यक वस्तु है, किन्तु इस मनोरञ्जन से भी वह दूर रहना चाहता है। वह चाहता है, मैं सिर्फ सोचता रहूँ, और खूब सोचता रहूँ, उसमें कोई बाधा न पहुँचाये। बैठे-बैठे सुबह से शाम कर देता। कहीं जाने-आने का नाम नहीं लेता। माता-पिता यह सब देखकर बड़े हैरान थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था इस बार रमेश में हो क्या गया है। हिलमिल कर प्रसन्न रहने वाले रमेश में इतना बड़ा परिवर्त्तन आखिर क्योंकर हुआ? जिस रमेश के आने से द्वार पर कोलाहल की दुनिया-सी बस जाती, उसी रमेश के आने पर सब वीरान-सा क्यों लगने लगा। इस प्रकार यदि रमेश रहा, तो उसका जीवन, जीवन रह जायगा! शायद नहीं, तो फिर इसका कारण पूछना होगा, हाँ पूछना ही होगा। रहा सहा दीया बुझना, कितना दुखद है, यह सभी थोड़े ही जान सकते हैं। सोया-खोया रमेश इतना

व्यग्र होता हुआ भी अपने को कितना गम्भीर रखता है। आई हुई विपत्ति का कहना सब के लिए आवश्यक है; फिर वह तो अभी कच्चा दिमाग वाला ही ठहरा। कहीं यह विपत्ति उसे खा कर न छोड़े। नहीं, ऐसा नहीं होगा। कोई क्या जाने, बूढ़े-बूढ़ी की एक मात्र लाठी का टूट जाना, कितना कष्टकर, कितना दुःखद, कितना मार्मिक होता है। हम अपनी लाठी नहीं टूटने देंगे। इसके टूट जाने पर, हमारी क्या गति होगी, यह तो हम ही जानते हैं।

पास के गङ्गा तट पर एक दिन रमेश यों ही जा पड़ा। गङ्गा का जल थिरक रहा था। वृक्ष की ओट से छिपते सूर्य की लाल, उदास, खिन्न किरणें उसमें पड़कर रमेश को कुछ याद दिला रही थीं; क्या, यह कह सकना कठिन है। थोड़ी देर में वे किरणें भी उसके आगे कुछ बिखेर कर चली गईं। अँधेरा हो जाने पर, उसकी थोड़ी भी इच्छा न हुई कहीं वहाँ से दूर, प्रकाश में जाने की। उस अन्धकार में जाने कैसा प्रकाश था कि उसे अशोक, आनन्द और अमरावती की प्रत्येक्ष आकृतिं दीख रही थी। आदि से अन्त तक के कालेज की घटना, उसकी आँखों के आगे नाच रही थी। घटना, भावना का बहा जाना, उसे अच्छा लग रहा था। बहुत दिनों बाद उसे आज शान्ति के संसार का एक भाग दीख रहा था। इसमें वह चाहता था, खो जाऊँ, विलीन हो जाऊँ।

प्रकृति के मनोहर दृश्यों को देख कर भी वह ऐसा रहता, मानो इनसे उसे कोई मतलब नहीं। धीरे-धीरे अशोक की स्मृति का रूप बड़ा होता जाना, उसकी दृष्टि में अच्छा न था, पर इसे वह रोक थोड़े ही सकता है। सब कुछ उसकी आँखों से ओझल हो सकता है, किन्तु अशोक की स्मृति का ओझल होना महा मुश्किल। उसकी स्मृति में कभी सुख होता, कभी दुःख। कभी उसमें अमृत दीखता, तो कभी गरल। वह चाहता भी तो नहीं था कि अशोक की स्मृति ओझल हो जाय। अमरावती की स्मृति में प्रेम का प्याला था, जो अब उसकी समझ में एक शराब का घर था, जिसमें वह बेहोश होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता था। औरों को इस बेहोशी में आनन्द भले मिलता हो, पर रमेश को यह आनन्द नहीं मिलने का, सत्य है, यह। आनन्द की स्मृति, मित्रता का एक खण्ड थी, जिसमें न सुख था, न दुःख, न विषाद था, न हर्ष।

नीरसता थी तो सरसता भी। किन्तु अशोक की स्मृति में सब कुछ था। विश्वास-अविश्वास, संयम-सदाचार, विचार-विमर्श, चढ़ाव-उतराव, उत्थान-पतन, दुःख-सुख। सारांश यह कि सब कुछ। किन्तु सबसे अधिक उसमें विह्वलता थी, जिस वजह रमेश को पल भर भी कल नहीं पड़ रही थी। वह चाहता था, अशोक के निकट नहीं तो मैं दूर भी न रहूँ।

कई पहर रात बीत जाने पर, वह घर आया। आज माता-पिता इतने व्याकुल थे कि उनके आगे यों ही लालटेन जल रही थी, और वे एक दूसरे को देखते हुए, चुप बैठ उसके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। आने पर उसे आश्चर्य हुआ, उन्हें अब तक जगते देख कर। उसने कहा, आप अभी तक सो न सके थे।

"तुम सोने दो, तब न ?"

"मेरे कारण आप जगे थे, हाँ, माँ ! तुम्हारे जगने का कारण मैं बना ?"

'हाँ बेटा, जाने अब तुम कैसे रहने लगे हो कि तुम्हारे चेहरे पर कभी हँसी की रेखा नहीं दौड़ती। इस कदर बेचैन दीखते हो कि कुछ पूछने की हमारी हिम्मत तक नहीं होती। सच मानो, तुम्हारी यह दशा देख, हम घुलते जा रहे हैं। तुम्हारी प्रवृत्ति ही बदल गई। न खाने की सुध, न सोने की; न कुछ करने की। क्या हम इसका कारण जान सकते हैं बेटा ?"

रमेश को अपने ऊपर बड़ा रोष आ रहा था कि उन्हें अपनी स्थिति जानने का मैं अवसर ही क्यों दे रहा हूँ। सारी घटनाओं, सारी करुण भावनाओं का प्रकट हो जाना बड़ा बुरा होगा। इन्हें कितना क्षोभ होगा, यह जान कर कि अशोक, आनन्द से पृथक् होने को मैं सोच रहा हूँ। अमरावती से सम्बन्ध स्थापित होने के परिणाम में, मुझे अशोक से सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ा। कालेज के नये, अशिक्षित, कृत्रिम वातावरण का मुझ पर भी इतना प्रभाव पड़ा कि उचित से दूर, अनुचित और भयङ्कर गड्ढे में फेंक दिया गया। सारे सत्य सपनों का इस प्रकार बिखर कर नष्ट हो जाना, इनके लिए कष्टकर होगा। इनको कुछ भी बताना अहितकर होगा। इनके हृदय में मुझसे भी अधिक हलचल मच जायगी, महासंग्राम छिड़ने लगेगा। ये समझने लगेंगे,

इनका रमेश कीचड़ में फँसकर ही रहा, इसका निकलना कठिन है। इससे हमारी आशा का घर ढह जायगा। नहीं, इन्हें मैं कुछ भी नहीं जानने दूँगा। इस प्रकार इनके आगे अपने को रक्खूँगा कि मेरे विषय में ये कुछ सोचेंगे ही नहीं।

कुछ देर तक वह चुप हो यही सब सोचता रहा। अन्त में फिर पिता ने पूछा, चुप ही रहोगे या बोलोगे भी।

"सामाजिक कुरीतियों एवं कालेज की कुव्यवस्था पर सोचने के कारण इधर दुःखित था। और कोई कारण नहीं।"

"तुम क्यों इन विषयों पर अधिक सोचते हो, तुम्हें इस समय अपनी पढ़ाई के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोचना चाहिए। चिन्ता और दुःख, ये दोनों मनुष्य को खा डालते हैं।"

"अब इन पचड़ों में नहीं पड़ूँगा।" रमेश ने तो यह कह दिया, परन्तु पुनः चिन्ता के अवगुण्ठन में इस प्रकार छुपने लगा, मानो इसी में रहना उसके लिए आवश्यक है। चिन्ता, हृदय का मौन निश्वास है। इसके बिना किसी का भी जीवन वास्तविक अर्थ में जीवन नहीं। चिन्ता का, जीवन में बहुत बड़ा मूल्य है, इसके बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं।

माता-पिता ने देखा, कह कर भी रमेश बदल नहीं रहा। रमेश इसको तार भी गया है, अत: वह चाह रहा है, मैं यहाँ से भी कहीं और दूर चला जाऊँ; यह कह कर कि वायु-परिवर्त्तन के निमित्त जा रहा हूँ। किन्तु प्रश्न है, जाऊँ कहाँ! खैर कहीं भी चल देना अनिवार्य है। अन्यथा इनके सम्मुख खुलना पड़ जायगा, खुल जाने पर महा अनर्थ भी हो सकता है। दूसरे दिन प्रातः घर से दूर, एक गाँव की ओर, करीब छः-सात कोस की दूरी पर रमेश चला गया। मस्तिष्क में मची क्रान्ति को दूर करने के प्रयास में निष्फल रमेश, एक स्वाभाविक विचार-नृत्य में अपने आप को खो देना चाहता था। किन्तु उस नृत्य में भी अशोक इस तरह व्याप रहा था कि चारो ओर से दृष्टि समेट कर एक ही ओर दौड़ाना कठिन था। गाँव के मनुष्यों से हिलमिल कर अपने आप को शान्त करना चाहता था। सान्ध्य-प्रकृति के खिन्न सौंदर्य के अलोक में विचरण चाह

रहा था। उषः काल की रक्त और उज्जवल बिन्दी को प्रकृति के ललाट पर अङ्कित देखना चाहने के कारण व्याकुल हो उठता था। प्रातः-कालीन पङ्कज पर पड़ी किरनें भँवरों पर पड़ कर कैसी लगती हैं! इन्हीं सबमें अतीत की घटना को भुला देना चाहता था। अशोक की वही एक भयङ्कर आकृति सिद्ध करती कि मूर्ख, कहीं भी मुझे भूलने का व्यर्थ का प्रयास न कर। तुम्हारे जीवन के साथ अब मैं बँधी ही रह गई। यौवन की प्रारम्भिक अवस्था में मैंने एक क्रान्ति उपस्थित कर दी है, इसलिए कि जीवन के उत्तरार्द्ध में भी इस क्रान्ति को कभी भी न भूलोगे।

दोपहर में आज रमेश गाँव के एक छोर में गया। वहाँ एक बहुत बड़ी पकड़ी का पेड़ है। इसकी कई विस्तृत शाखाएँ हैं। यहाँ थोड़ी देर बैठने के पश्चात् उसने अनुभव किया, यहाँ मुझे कुछ विश्राम मिल जाने की संभावना है। बाँह पर सर रख वह सोया-सोया कुछ सोच रहा था कि उसे नींद आ गई। बाद सूर्य की किरणें उस वृक्ष की अंतिम शाखा में लिपटने लगीं; तब उसकी नींद टूटी। उसने अनुमान किया, बहुत तेज चलने पर भी शायद मैं चार-पाँच घंटों में अपनी जगह पर न पहुँच सकूँ। अतः कहीं ठहरने की जगह ढूँढ़नी चाहिए। मार्ग बीहड़ नहीं रहता तो बड़ी रात बीत जाने पर भी नियत जगह पर पहुँच जाने में कोई विशेष कष्ट नहीं होता। पर प्रश्न है आखिर ठहरा कहाँ जाय। दूर दीप जल रहा है, जाने पर किसी को मेरे ठहरने पर आपत्ति न हो तो शायद रात कट जायगी।

वहाँ पहुँचने पर उसने देखा, एक सुन्दर वेश-भूषा से विभूषित नागरिक को देख कर किस प्रकार अपनी खाट छोड़ कर कुछ लोग सहसा उठ पड़े। उनकी समझ में रमेश कोई बड़ा सरकारी अफसर था। उनसे नम्र स्वर में मैंने कहा, उस घने सुविशाल वृक्ष के पास मुझे नींद आ गई; और मैं शाम तक वहीं सोया रहा। जहाँ मैं ठहरा हूँ, वहाँ पहुँचने में विशेष देर होगी, अतः रात भर ठहरने देने की कृपा करते तो अच्छा होता। आप सभी निश्चिन्त हो, अपनी-अपनी जगह पर सोये रहें, मैं एक ओर लोट पड़ूँगा चूँकि अपनी वजह यह मैं कभी भी न चाहूँगा कि थोड़ा भी आप को कष्ट हो। जाने कैसे बेमौके नींद

ने घर दबाया कि यों आप को कष्ट देना पड़ रहा है।

बेचारे ग्रामीण कहने लगे, यह आप क्या कहते हैं। एक दिन के लिए क्या, आप बराबर हमारे यहाँ ठहरें तो भी हमें कोई कष्ट नहीं। घर में अतिथियों का आना, हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात समझी जाती है। किन्तु हम जानते हैं, आप यहाँ ठहर थोड़े ही सकते हैं ! हम गँवारूओं की वजह आप को इतनी तकलीफें कभी भी बर्दाश्त न होंगी। खासकर बड़े बाबुओं को तो, हमारी वजह ऐसा होता है कि यहाँ एक क्षण भी टिकना उनके लिए मुश्किल हो जाता है। कभी गाय, कभी भैंस तो कभी बकरी, इन सबों के चिल्लाने से उनके कान फटने लगते हैं।

रमेश के जीवन में गाँव आने का कम ही अवसर आया है। ग्रामीणों के मधुर व्यवहार की चर्चा उसने सुन रक्खी थी, किन्तु अभी तक उनके व्यवहार से परिचय पाने का उसे अवसर न मिला था। निष्कपट हृदय वाले उन ग्रामीणों के प्रति उसके मस्तिष्क में कई प्रकार की सुन्दर भावनाओं का कारण उत्पन्न होने लगा। परिचित नहीं रहने वाले व्यक्ति के प्रति उनका इतना बड़ा सम्मान देखकर हृदय में कृतज्ञता के भाव आ गये। उसने हँसते हुए कहा, मुझे आपसे कोई तकलीफ न होगी, आप निश्चिन्त रहें। पर हाँ, अभी मेरी नींद पूरी न हो सकी है, चूँकि कई दिनों की उचटी नींद आज ही लगी थी। इस समय भी मैं सोना ही चाहता हूँ। आप मेरे उपयुक्त कोई स्थान बतायें, मैं सो रहूँ।

"और भोजन नहीं होगा क्या ?"

"नहीं, मुझे भूख नहीं है। आप इसकी चिन्ता छोड़ दें।"

"भला यह कैसे होगा, हमारे द्वार पर यों ही आप सो रहेंगे !"

बहुत मना करने पर भी उन लोगों ने लिपी-पुती जगह पर आसन लगा रमेश को खिलाने का प्रबन्ध किया ही। मोटी रोटी के रूप में पूड़ी, तरकारी एवं एक कटोरे में दूध। यही उनके भोजन की व्यवस्था थी। सुस्वादु भोजन करने वाले रमेश को ये सभी वस्तुएँ प्रिय लग रहीं थीं। बड़ी रुचि के साथ वह इन सबों को यह कहते हुए खा रहा था कि आप के प्रेम-पूर्ण व्यवहार ने

मुझे भूख दे दी। और इस स्वादयुक्त भोजन को छोड़ने का जी नहीं चाह रहा। ये सब बातें सुन कर उसके हृदय में बड़ी प्रसन्नता हो रही थी। उनकी समझ में इस भोजन का रमेश के आगे कोई मूल्य नहीं होना चाहिए था। खास तैयारी से तो भोजन प्रस्तुत हुआ था नहीं कि वह प्रशंसनीय होता। बेचारों के इस भोजन को नागरिक सभ्य थोड़े ही अच्छा कह सकते हैं। उनके जानते, इनका भोजन, राक्षसों का भोजन है। पशुओं से भी बदतर ये ग्रामीण भोजन बनाना क्या जानते, इन्हें इतना ज्ञान कहाँ कि भोजन कहाँ कैसे बनाना चाहिए। स्वास्थ्य पुस्तक थोड़े ही इन लोगों ने पढ़ी है। पवित्रता से दूर रहने वाले इन मानवों के भोजन में स्वच्छता थोड़े ही होगी। माइक्रोसकोप से देखा जाय तो कई कीटाणु दीख पड़ेंगे।

भोजन करने के पश्चात् एक दरी बिछी चौकी पर रमेश सोने लगा। किन्तु अब उसे नींद नहीं आ रही थी। उसके मस्तिष्क में कई बातें नाच रही थीं। उपेक्षित मानवों की भी प्रकृति हम नागरिकों की अपेक्षा कितनी अच्छी होती है। हमारी प्रकृति में कालुष्य अधिक है; मनुष्यता के नाते हमें सच्चा कर्त्तव्य पालन करना चाहिए था। किन्तु हमारी शिक्षा इस ढंग की होती है कि उसमें वास्तविक कर्त्तव्य की रूप-रेखा स्थिर नहीं रहती। उस शिक्षा से अनभिज्ञ ये लोग अपना कर्त्तव्य किस ढंग से पालन करते हैं। प्रवञ्चना शक्ति का इनमें इतना अभाव है कि हम इन्हें कभी भी धोखे में डाल सकते हैं। इनकी भोली-भाली प्रकृति से सारे नागरिक लाभ उठाते हैं, किन्तु बेचारों के साथ थोड़ी भी सहानुभूति रखना नहीं जानते हैं।

रात के पिछले भाग में शायद रमेश की आँखें झपने लगीं। वह अनेक तर्कनाएँ करता हुआ सोने लगा। नागरिक जीवन पशुता के लिए प्रसिद्ध है, यह उसकी समझ में आता हुआ भी नहीं आ रहा था। पटुता में पशुता अधिक सन्निहित है, तो क्या समस्त नागरिकों में पशुता ही पशुता भरी है! हाँ, तो क्यों? मानव, मानव ही हैं, इसके बीच एक भेद की भित्ति क्यों खड़ी की गई। यह दूसरी बात है कि यहाँ मानव के रूप में दानव भी हैं। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि गाँव में ही दानवों का जमाव हो। इसके लिए यह

निश्चित नहीं कि वहाँ मानव हैं ही नहीं। सब जगह सभी जानते हैं, जहाँ मानव हैं वहाँ दानव भी, जहाँ दानव हैं वहाँ मानव भी। यह जानते हुए भी तथा कथित सभ्य शिष्ट जनों का वर्ग कहता है, ग्रामीणों में मानवता का संचार कम है। विश्व के इस छोर से उस छोर तक देखा जाय तो साफ विदित होगा कि दोजख पेट की आग बुझाने वाली समस्या का निदान- इन्हीं दानवों द्वारा होता है।

रात भर इन्हीं विचार-स्वप्नों में वह विचरता रहा।

८

रमेश के चले जाने पर अशोक के मुख पर सदैव विषाद छाया रहता। कालेज के चञ्चल वातावरण से उसका मन उचटने लगा। जीवन सूना-सा लग रहा था। अमरावती को देखता हुआ भी जैसे देखता ही नहीं। लेक्चर सुनने का काम कुछ दिन तक जारी रहा। किन्तु उसने देखा बैठे रहने के अतिरिक्त और तो कुछ करता ही नहीं, फिर वहाँ जाने से क्या लाभ। होस्टल में पड़ा रहना ही अच्छा है। इस विस्तृत उदास प्राङ्गण में रहना होगा। अशोक ने किसी के प्रति वैसा व्यवहार थोड़े ही रक्खा है, जिससे वह सुख-संसार में विचरने का अधिकार रख सके। कई दिनों तक अन्न से उसे कोई प्रयोजन नहीं रहा। आनन्द ने यह सब देख कर एक दिन समझाया, यों तुम्हारा प्राण गँवाना मुझे अच्छा नहीं लगता। रमेश के लिए तुमने जो कुछ किया, अच्छा ही किया, फिर भी वह तुमसे अलग ही रहा, इसमें तुम्हारा क्या दोष ?

"नहीं आनन्द, मैंने उसके लिए कुछ किया होता तो निस्सन्देह वह मुझसे दूर नहीं होता। मान लो, उस दिन उसकी जान चली जाती तो ? कहो कि मुझे कालिख नहीं लगनी थी, अन्यथा उसके मरने में क्या शेष था। सारे उपकारों का निष्कर्ष यही है कि किसी भी प्रकार से मनुष्य किसी की प्राण रक्षा कर सके। और एक मैं था कि उसका प्राण लेना ही सबसे बड़ा उपकार समझ रहा था। पैर फिसलता है तो फिसलता ही चला जाता है। जोर का आघात

या भयानक ठेस लगने पर स्वयं मनुष्य सँभल जाता है। रमेश आगे चल कर स्वतः सुधर सकता था। परन्तु मुझ अभागे के सर पर तो कोई क्रूरग्रह नाच रहा था। उस स्थिति में कुछ सूझ जाना असम्भव ही था। औरों की अपेक्षा रमेश अधिक तीव्र बुद्धि रखता था। जो कोई भी सुनता है, यही कहता है; रमेश जैसे लड़के से यही आशा की जा सकती है कि वह कभी भी अपना कर्त्तव्य याद कर सकता है। उसकी बुद्धि सब ओर अनायास ही दौड़ सकती है। उसकी आँखें तथ्य को देखती हैं। उसमें सहृदयता भरी रहती है। मनुष्यता में सहृदयता एक सबसे बड़ा गुण समझा जाता है, यह गुण भी तो उसमें वर्त्तमान था!"

आनन्द के बहुत अनुनय-विनय का अशोक पर कोई प्रभाव न पड़ा। उसके हृदय में चिन्ता अपना अधिपत्य जमा चुकी थी। आश्चर्य तो यह है कि इस चिन्ता से वह ऊब नहीं रहा था; एक प्रकार से उसे इसमें आनन्द मिल रहा था। जाने, उसकी प्रवृति भी कैसी थी कि सब कुछ चाहने पर भी कुछ प्रकट नहीं करता। साधन रहने पर भी उसने रमेश से कुछ नहीं कहा। सम्भव था, उसके समझाने-बुझाने का प्रभाव रमेश पर पड़ता। उसके विचार-परिवर्त्तन में उसके सुझाव सहायक सिद्ध होते। हृदय की आँधी भी शान्त हो सकती थी किन्तु अशोक अपने पश्चात्ताप की आग में झुलसता रहा। एक दिन सान्ध्य किरणें उसके रूम में पड़ रही थीं। वह टेबुल पर सर झुका कर कुछ सोचने में लीन था कि उसे नींद आ गई। उस नींद में रमेश इधर-उधर दौड़ रहा था। उससे वह अनेक प्रश्न कर रहा था किन्तु जब पार्टी की घटना याद आई तो सहसा जग पड़ा, यह चिल्लाते हुए कि आनन्द, शीघ्र रमेश की रक्षा करो। तुरन्त ही उसमें-क्षुब्धता भर गई, और माथा पीटता हुआ बड़ी तेजी से घूमने लगा। आनन्द ने यह सब देख कर सोचा, अब अशोक या तो उन्मत्त हो कर रहेगा या मृत्यु की शरण लेकर रहेगा। अन्तिम क्रिया का नृत्य उसकी आँखों के आगे सदैव होता रहता। उसका एक क्षण भी रुकना बन्द नहीं होता। इसका बन्द होना तभी सम्भव था, जब रमेश यह कहता हुआ उसके सम्मुख आ पड़ता कि अशोक भैया, अब हम एक होकर पुनः केवल अध्ययन में ही

संलग्न होंगे। प्राचीन घटना को वह इस प्रकार मानस-पटल से हटा देता मानो कुछ हुआ ही न हो। परन्तु यह सब केवल कल्पना थी। आशा के विपरीत कार्य होना एक स्वाभाविक सत्य समझा जाने लगा है। इसलिए यह सत्य होकर ही रहेगा। इस पर कभी अशोक को अविश्वास हो आता, परन्तु उसी क्षण जब बहुत बड़ा बल लिए हुए घटना उपस्थित हो आती, तब कह उठता, सब सत्य है।

घर से पत्र आया था कि कई छुट्टियाँ बीत जाती हैं, पर तुम यहाँ आते ही नहीं; इस बार अवश्य आओ। अशोक सोच रहा था, मन की शान्ति के लिए चला जाऊँ तो ठीक रहेगा, किन्तु वहाँ भी तो रमेश के अधिक परिचित हैं। सब पूछ बैठेंगे, रमेश कहाँ कैसा है? आया क्यों नहीं? फिर मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा। पर्वत-श्रेणियों के सौन्दर्य में शायद मेरा मन रम जाय, अतः उधर ही कहीं जाना चाहिए। रमेश की अतीत स्मृति विलीन होकर भी उस सौन्दर्य में मूर्त्तिमान बन नाच उठेगी, इसमें सन्देह है। आँखें सब की एक-सी हैं, मेरी आँखें एक दम ऐसी नहीं कि प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर मुड़े ही नहीं।

और एक दिन इसी विचार से अशोक मुंबई चल पड़ा। रास्ते में उसके विचार बड़ी तीव्रता से दौड़ रहे थे। इगितपुर से जब एलेक्ट्रिक इञ्जिन लगी, तब वह अनुभव करने लगा, गाड़ी से भी अधिक मैं और मेरे विचार दौड़ रहे हैं। किन्तु मेरे दौड़ने में कौन इञ्जिन लगी कि उसमें तीव्रता आ गई। शायद पुनः रमेश की घटना-इञ्जिन अपना काम करने लगी। पर्वतों को भेद कर बढ़ी चली जाती हुई गाड़ी नये मुसाफिरों को पुराने आविष्कारों की याद दिला रही थी। कितने विस्फोटक पदार्थों के द्वारा यह पर्वत फोड़ा गया होगा। कितनों ने अपनी जानें गँवाई होंगी। किस प्रकार उनकी सूक्ष्म आँखों और मस्तिष्क ने नयी-नयी सूझ देकर अपनी आश्चर्य-वृत्ति का परिचय दिये होंगे। उपरि भाग की ओर आँखें दौड़ाने पर गर्दन दुखने लगती, आँखें अंधी-सी होने लगतीं। अशोक को अभी तक उधर दृष्टि दौड़ाने की फुर्सत न थी, किन्तु अनायास ही जब उसकी आँखें बड़ी तेज और कभी धीरे-धीरे जाती हुई

मोटर की ओर गईं, तब वह कुछ देर के लिए सब भूलने-सा लगा। ऊँची उस मोटर की सड़क पर कई मोटरें आ-जा रही थी। वे इतनी ऊँची सतह पर रहतीं कि उचित से भी अधिक छोटे आकार की प्रतीत होती थीं। ध्यान से देखने पर रमेश को विदित हो गया; साम्राज्यवाद युद्ध का स्वार्थ ढोनेवाली ये मोटरें हैं। इनके चालक सारी माया-ममता को दूर फेंक कर अपनी जानों का मोह छोड़ कर सिर्फ रोटी के दो टुकड़े पाने के लिए, पचास या सौ की कीमत पर अपने को बेंच कर अपनी ड्यूटी पूरी किये जाते हैं। आउट्-औफ्-कण्ट्रोल् होने पर या जरा भी पैनी निगाह होने पर वे मोटर को लिए-दिए ऐसा गिरेंगे कि उनको कौन कहे, उनकी मोटर के एक पुर्जे का भी पता लगाना कठिन होगा। टेढ़ी-मेढ़ी गई सड़क के इधर-उधर वृक्षों की कतार भी नहीं हैं, सड़कें इतनी ऊँची हैं कि सुविशाल वृक्ष भी देखने पर एक छोटे उगाये पौधे के समान प्रतीत होते हैं। बिचारा चालक जब एक दिन बड़ी मिहनत के बाद छुट्टी पाकर घर आता है, तब सभी जानते, सुनते हैं, बड़ी रकम कमा कर आता है। सौ-सौ, दो-दो सौ सभी थोड़े ही कमाते हैं! किन्तु वे क्या जानते हैं, यह रकम इनकी जान की महज थोड़ी-सी कीमत है। सभी समझ सकते हैं, जान की कीमत इन्हें कितनी मिलती है। यह कह सकना बहुत अंशों में ठीक है कि ये रोटी के कुछ टुकड़ों पर अपनी जान बेचते हैं, इसलिए कि इन्हें बेचना ही पड़ता है। भूखों मरना तो किसी से होता नहीं, लगी आग की ज्वाला का शान्त होना तभी सम्भव है, जब हम रोटी की चिन्ता से प्रथक् रहें; जो सर्वथा असम्भव है। विश्व की सब ओर रोटी की गहरी समस्या नाचती है, किन्तु इस समस्या का हल होना, सीमित वर्ग के लिए विशेष कठिन है। स्वार्थ, अहङ्कार में भूला मानव आज के युग में अपनी सत्ता कायम करने में लगा है। आप की सीमा में अपने को ही मापना चाहता है। ऐसे मापने वाले पीछे चल कर अपने को बड़ा दयालु, धर्मात्मा समझते हैं। धर्मशालाएँ खोल रक्खी हैं, अपनी एड़ी से चोटी तक के पसीने की कमाई से। इसलिए कि कोई भी गरीब या अजनबी उसमें टिक सकता है। यह उन्हें थोड़े ही याद रह जाता है, इस कमाई का कारण कौन है? किसके द्वारा हमने इतने अरजे हैं।

किसके खून को पानी साबित कर या उसे गला कर चाँदी के सिक्के बनाये हैं। ये सब विस्मृत के सागर में विलीन हो जाते हैं।

कुछ देर के लिए अशोक विचारों में अपने को भूल गया, परन्तु इसी समय दूर से आता हुआ उसे कुछ दीख पड़ा। रमेश के प्रौढ़ विचार ऊपरी समस्या को सुलझाने के लिए कितने मार्ग तय कर रहे थे। यदि वह तुल जाय तो अपने विचारों द्वारा सिद्ध कर सकता है कि यही मार्ग है, जो सबके लिए प्रशस्त कहा जा सकता है। दो भित्तियाँ हैं, एक सबल, दूसरी निर्बल रमेश का प्रशस्त मार्ग निर्बल को सबल में, सबल को निर्बल में मिला देने के लिए सर्वथा सफल हो सकता है। किन्तु रमेश अब वैसा रहा ही कहाँ कि उससे कुछ आशा भी की जा सकती है। उसमें भी अशोक को उससे कुछ आशा रखने का अब अधिकार ही कहाँ रहा। व्यर्थ के भुलावे में पड़ा-पड़ा भटक रहा है। जीवन के आडम्बर से दूर नहीं रहता तो शायद वह अपने आप को वैसा बनाये रखने में अवश्य समर्थ होता जिसमें आज का समाज घुला-मिला है। चूँकि वह समाज चलते-फिरते ढोंगी विचारों का ठीकेदार है, दूसरे शब्दों में अड्डा-सा कहा जा सकता है। इसकी शरण में जाने वाले या पलने वाले अपने को एक अधिकारी समझते हैं। रमेश जैसे कई दुर्बल व्यक्तियों को चुटकियों से मसल सकते हैं। किन्तु उनसे प्रतिशोध थोड़े ही लेना चाहता है वह। प्रतिशोध की भावना यदि जागरित हुई होती तो कब का उसका गला दबोच चुका होता। संसार से बिल्कुल भिन्न उसकी प्रकृति थी, और वह ऐसी प्रकृति थी जिसकी सभी अवहेलना करने का अधिकार रखते हैं। उनके जानते ऐसी प्रकृतिवालों का संसार में आने का कोई अधिकार नहीं है। उनकी इस अनधिकार चेष्टा का परिणाम बुरा होता है। उपेक्षा के पात्र हो जाना तो कोई बड़ी बात ही नहीं; प्राण भी गँवाने होते हैं। घोषित कर दिया जाता है, निरर्थक, निष्प्राण जीव हैं ये। महत्त्वरहित इन जीवों का विश्व में कोई भी मूल्य समझना, अपनी कुबुद्धि का परिचय देना है। अपने आप को भी किसी के योग्य नहीं रहने देना है।

बोरी-बन्दर उतार कर वह कालपा देवी रोड, बम्बा खाना के पास रहने

वाले किसी परिचित के यहाँ गया। एक यन्त्र की भाँति स्नानादि कर वह एक सजे-सजाये रूम में बैठ गया, बैठा रहा; पीछे सो रहा। परिचितों ने समझा, शायद रास्ते की थकान की वजह अशोक सो रहा है। किन्तु बत्तियाँ जल जाने पर लक्ष्मी की आरती उतार चुकने के पश्चात् जब वे उसे जगाने गये, तो उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वह जगा, सोता हुआ ऊपर कुछ देख रहा है। और ऐसा देख रहा है, मानो उनके प्रवेश की आहट तक उसे न मिली हो। मित्रों ने स्वीच दबायी, बत्ती जली; फिर भी वह देखता ही रहा। तब मित्र शैलेन्द्र ने उससे पूछा, तुम सो नहीं रहे थे अशोक ?

वह उसी अवस्था में लीन रहा।

'तबीयत खराब तो नहीं है ? बोलते क्यों नहीं अशोक ?'

अशोक का ध्यान टूटा। आँखें शैलेन्द्र की ओर गईं। उसने कहा, क्या तुम देर से खड़े थे ?

'हाँ भाई, तुम कुछ सोच रहे थे ? पहले ही से, या सोकर उठने के बाद ?'

'कह नहीं सकता, कब से; किन्तु यह जानो, मैं सो न सका हूँ।'

'ओ, तो कौन-सी समस्या सुलझा रहे थे ?'

'कुछ नहीं. यों ही।'

'अच्छा, कहीं चलोगे भी या ऐसे ही कुछ सोचने में लीन रहोगे !'

'कहाँ चलूँ ?'

'कहीं भी, जहाँ इच्छा हो। मुम्बई में यह भी पूछना ही है।'

जलपान कर दोनों ट्राम से चौपाटी की ओर चले। बड़ी कतार में मोटरें,-गाड़ियाँ आ-जा रही थीं। अशोक, शैलेन्द्र के इशारे पर घबड़ाया-सा चञ्चल नेत्र हो इधर-उधर देखता हुआ सागर-तट पर पहुँचा। इस रम्य जगह पर विमुग्ध अशोक कभी दूर तक फैले सागर को देखता और कभी पाउडर और स्क्रीम में लिपटी कृत्रिम सुन्दरता की रानी नारी को। ये तथा कथित शिष्ट पुरुष की दोनों बाँहों में अपने को डाले हुए घूम रही थीं। सागर-निःसृत वायु के झोंके से उनकी हवा से भी अधिक हलकी साड़ियाँ एवं बड़े-बड़े बाल उड़ रहे थे। ललाट पर आये बाल, कभी उनके मुँह को भी ढक लेते या उनसे क्रीड़ा

करने लग जाते। मालिश, बाबू, खोपड़ावाला, आदि-आदि शब्दों से उनके कान हमेशा खड़े रहते। आँखें स्थिर रह पातीं ही नहीं। वह इनमें उलझा ही था कि शैलेन्द्र ने कहा, चलो अशोक, पाञ्चोली का 'खान्दान' देखने।

'आज नहीं, कभी दूसरे दिन।'

'अरे चलो भी, यहाँ क्या रक्खा है।'

'और वहाँ?'

'बहुत कुछ।'

'तो यहाँ भी।' अशोक मुसकुराया था कि शैलेन्द्र ने कहा, यहाँ तो रोज आयेंगे; और यदि वह पिक्चर नहीं देख पाया तो समझ लो, कभी नहीं देख सकेंगे, चूँकि कल वह यहाँ से चला जायगा।

'ओह!'

यह कहता हुआ अशोक उठ पड़ा।

मुम्बई में सिनेमा का टिकट कटाना, वीरों में गिना जाना है। खास कर नये चित्र के प्रथम दिन. प्रथम शो का जो टिकट कटा ले वह सबसे बड़ा वीर समझा जाता है। सुना है, कई पुलिसों को कौन कहे, उनके अफसरों तक को भी छुरे का शिकार बनना पड़ा है। 'खान्दान' हफ्तों से चल रहा था, फिर भी 'हाउस् फुल्' का बोर्ड लगा ही रहता। अभी-अभी शैलेन्द्र नहीं पहुँचा होता, तो उसके लिए भी फर्स्ट क्लास का टिकट पाना कठिन ही था। अशोक को फर्स्ट क्लास का टिकट कटाना इष्ट न था, किन्तु शैलेन्द्र जैसे फुटकर खर्च करनेवाले व्यक्तियों के लिए कागज के टुकड़ों का थोड़े ही मूल्य था। उसके मना करने पर भी उसने वही किया, जो उसे इष्ट था। एक तो मुम्बई में रहनेवालों को खर्चीला बनना पड़ जाता है। एक कृपण की भी प्रकृति में आप महान् परिवर्त्तन पाइयेगा, फिर लखपती के लड़के शैलेन्द्र का अधिक खर्चीला होना, स्वाभाविक ही था। अशोक का मन चित्र देखने में रम गया। माली का पार्ट उसे बहुत अच्छा लग रहा था। नूरजहाँ के गाने उसे रोमांस की ओर घसीटे लिए जा रहे थे। फिल्म समाप्त होने के पश्चात् हौल से बाहर आने पर उसने पूछा, क्यों शैलेन्द्र, बत्तियाँ रो क्यों रही हैं? सुनता था, मुम्बई में हर रोज

दिवाली होती है। क्या यहाँ भी ब्लैक्-आउट् है?

'हाँ भाई, अन्यथा लाइट् की चकाचौंध में तो तुम्हारी आँखें भी नही ठहर सकती थीं, मगर युद्ध की भयंकर परिस्थितियाँ मजबूर करती हैं, लाइट् को एक दायरे में रखने के लिए।'

अशोक यद्यपि बड़ी रात म डेरा पहुँचा, किन्तु उसे लग रहा था, कोई अधिक देर नहीं हुई है। खा-पीकर जलते लाइट् वाले रूम में सोने का उपक्रम करने लगा। शैलेन्द्र ने लाइट् बुझा देने के लिए कहा, किन्तु जाने क्यों उसकी इच्छा हुई, लाइट् जलता ही रहे। कई दिनों से न सो सकने पर भी उसे जल्दी नींद नहीं आ रही थी। 'खान्दान' का प्लौट उसकी आँखों के आगे नाच रहा था। और वह उसमें इतना लीन रहा कि पता नहीं कब उसे नींद आ गई। लाइट् बुझाना भी वह भूल गया।

शैलेन्द्र ने प्रातः उठते ही देखा, अशोक खर्राटे ले रहा है। और सूर्य की किरणें फैल चुकने पर भी बत्ती जल रही है। चाहते हुए भी उसने न जगाना ही अच्छा समझा। बाद बहुत दिन उठने पर अशोक आँखें मलता हुआ उठा तो उसकी दृष्टि सामने की घड़ी की ओर गई जिसमें ग्यारह के करीब बज रहे थे। उसे आश्चर्य हो रहा था, इतने समय तक मैं सोता रहा। उसने पुकारा, शैलेन्द्र।

वह अपनी गद्दी का काम देख रहा था। कई क्लौथ-मर्चेन्ट् उसके यहाँ रुपये-पैसे का ब्यौरा समझा रहे थे। पोदीने का अर्क सूँघता हुआ वह सबसे बातें करने में लगा था। फोन से भी उसे फुरसत नहीं मिल रही थी कि उसके कानों ने सुना, अशोक पुकार रहा है शैलेन्द्र!

अधिक व्यस्त रहने पर भी उसने सबसे क्षमा माँगते हुए कहा, इस समय आप मुझे अवकाश दें, फिर किसी समय पधारें। मेरे एक मित्र आये हैं। बहुत नहीं; कुछ ही दिन पूर्व जब मैंने कोलेज छोड़ा, अचानक उनसे परिचय हुआ। और वह परिचय घनिष्ठ होता गया। इसलिए कि हम एक ही रूम में रहने लगे थे।

शैलेन्द्र के आने पर अशोक ने कहा, अरे भाई, व्यापार से थोड़ी फुरसत

पा कर मेरी भी खोज खबर लो। कालेज के मित्र, जीवन में सदा के लिए एक मधुर-स्मृति छोड़ जाते हैं; एकान्त में इस स्मृति से परम सुख मिलता है।

'हाँ, हाँ, क्यों नहीं। परन्तु मैंने कब नहीं इसका महत्त्व दिया। प्रातः उठने पर जब मैंने देखा, रूम की बत्ती जल रही है, सूर्य की किरणें फैल चुकी हैं; फिर भी तुम सो रहे हो, तब मुझे समझते देर न लगी कि अशोक पिछली रात की भी नींद पूरी करने में लगा है। अन्यथा मेरे रहते, तुम इतनी बेला तक सो सकते इसमें सन्देह था। सच मानो अशोक, मुझे आश्चर्य भी हो रहा था, तुम्हें इतनी देर तक सोते देख कर। चूँकि कालेज के जीवन में कभी मैंने तुम्हें इतनी देर तक सोते नहीं देखा।

'अब सब बदल गया शैलेन्द्र! कभी सोता ही नहीं, या कभी दिन भर सोता ही रह जाता हूँ।'

'आखिर यह सब क्यों अशोक! तुममें कभी-कभी बड़ा परिवर्त्तन देखता हूँ। तुम्हारे चेहरे पर अजीब बेबसी या उदासी देखता हूँ। जैसे तुम पहले के हँसी-खुशी के अशोक नहीं रहे।'

'हाँ शैलेन्द्र, अब अशोक पहले का अशोक नहीं रहा। उसकी हँसी-खुशी, उसके मित्रों ने छीन ली। उसके लिए हँसना, रोना है। अशोक को लुटते देखने में लोगों को मज़ा आता है। खैर, छोड़ो इन बातों को, चलो, नहाया-ओहाया जाय।'

'ओह, हाँ, हाँ मैं भी भूल ही गया; चलो, पहले दैनिक प्रातः-क्रिया समाप्त करो। नल से जल आना भी बन्द होने वाला है, चूँकि बारह से अधिक हो रहा है; बातें फिर होती रहेंगी।'

अन्यमनस्क-सा अशोक सूट केश से तौलिया और साबुन निकालता हुआ, बाथ-रूम की ओर चला। रमेश वाली उत्तेजित घटना को वह एकदम भुला देना चाहता था। किन्तु जब कभी उसका प्रत्यागमन होकर ही रहता। मुम्बई की चहल-पहल की दुनिया में उस घटना का भूल जाना, एक प्रकार से स्वाभाविक था। परन्तु आज उभड़ने पर उसे लग रहा था, यहाँ भी रमेश की घटना स्मृति के रूप में विराजती ही रहेगी; तो क्यों, यहाँ से भी कहीं और

दूसरी दुनिया में जाऊँ। किन्तु वहाँ भी यदि उसकी स्मृति बनी रही तो, बनी रही तो......! उसकी स्मृति से शून्य, शायद यह संसार ही नहीं और उसकी स्मृति भी तो एक अलग संसार ही है। केवल अन्तर यही है कि उसके संसार में अपेक्षाकृत कारुणिक किन्तु तीव्र भावना सदैव सर्वत्र एक प्रवाह में प्रवाहित होती रहती है।

भोजन करने के पश्चात् अशोक ने शैलेन्द्र से कहा, नगर से दूर एकान्त पार्वतीय प्रदेशों की ओर ले चलो, शैलेन्द्र ! सुना है, उधर का प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त मनोमोहक होता है। कुछ काल के लिए नवागत मानव अपने आपको बिल्कुल खो देता है।

'है तो सच बात, परन्तु, आज उधर जाने पर हम कुछ देख न सकेंगे, चूँकि तीन बज चुके हैं। अच्छा होता, कल प्रातः ही हम उधर चलते। आज और कहीं चलें। सन्ध्या समय फिर हमें एक अच्छी फिल्म देखनी होगी।'

'अरे, रोज-रोज !'

'और नहीं तो क्या।'

'तो क्या प्रतिदिन नया ही खेल यहाँ लगता है?'

हाँ, एक टॉकी हो तब तो; यहाँ तो असंख्य टाँकियाँ हैं, जिनमें एक ही खेल वर्षों तक चलते रहते हैं; फिर भी कहीं न कहीं किसी टाँकी में नया खेल लगा ही होगा।'

'ऐसा?'

'हाँ, जी।'

'तो आज हम कौन-सी फिल्म देखेंगे?'

'टिकट मिल जाने पर न्यू-थियेटर्स की सौगन्ध।'

'यह शायद बँगला 'प्रतिश्रुति' का अनुवाद है।'

"कह नहीं सकता, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि फिल्म अच्छी है।"

"और इस समय कहाँ चलें?"

"चलो, 'दादर' घुमा लायें; वहाँ फिल्म कम्पनियाँ हैं।"

'दादर' का चक्कर लगाता हुआ, उससे भी अधिक आगे 'अरोरा' टौकीज

वगैरह देखता हुआ, सन्ध्या समय 'सौगन्ध' देखने के लिए हौल में दोनों ने प्रवेश किया। खेल के आरम्भ होने पर, जब बीच में अशोक पहुँचा, तब उसे लगा, 'खान्दान' इसके आगे फीका है। अन्त में आँसुओं का स्रोत उमड़ने लगा तो पास में बैठे हुए शैलेन्द्र से उसने कहा, बड़ा कारुणिक है। छोटे का बड़ा भाई किस प्रकार अपना सब कुछ त्याग रहा है। केवल इसलिए कि छोटे को सब प्रकार से सुख और शान्ति मिले। उसकी जिन्दगी अमन-चैन से बीते। और एक मैं.........।

'सौगन्ध' से अशोक विक्षुब्ध हो उठा। वह कहने लगा, अपने छोटे रमेश के लिए मैंने कौन-सा त्याग किया। इसने तो अपने प्राण तक त्याग दिये। मैंने तो इसे सिर्फ मारने का ही प्रबल प्रयत्न किया है। रमेश भला कैसे नहीं रूठता। मैं उस पर इतना अत्याचार करता रहूँ, और वह सहता ही रहे। क्या वह आदमी नहीं, मेरे अत्याचार की भी हद होनी चाहिए थी। भरसक वह सब सहने का ही प्रयत्न करता रहा। अन्त में असह्य अत्याचार से क्षुब्ध या पीड़ित होकर चला गया। इसमें उसका क्या दोष, सब मेरा ही है; मुझे इसका प्रायश्चित्त तक करना चाहिए। अन्याय का फल बुरा होता है, यह जानते हुए भी मैंने उसके साथ अन्याय किया है। वह भी ऐसा जिसकी तुलना में भयङ्कर से भयङ्कर कठोर दण्ड। काले पानी, फाँसी की सजा भी कुछ नहीं। विश्वासघात एक महापाप है, जिसका दण्ड शायद कुमारिल भट्ट की भूसी में जल-जल कर मरने से भी अधिक दुःखदायी होना चाहिए। मैंने बेचारे की उन्नति, बेचारे की सब साध, सारी आकांक्षाओं का दमन किया है। उसकी सारी निधियाँ छीन ली है। उसके जीवन को नष्ट कर देने का फल मुझे मिलना ही चाहिए।

दूसरे दिन प्रातः ही शैलेन्द्र, अशोक को लेकर अँधेरी, मलाड् दिखाता हुआ बरार लाया। बरार के बाह्य, एकान्त सौन्दर्य को देख कर उसे प्रसन्नता अवश्य हो रही थी, किन्तु धुँधली स्मृति उस प्रसन्नता पर एक क्षण में ही कहीं दूर भगा देती। पीछे शैलेन्द्र उसे वहाँ ले गया, जहाँ कतार की कतार नारियल के घने वृक्ष थे। आसपास पर्वत सुदूर प्रान्त तक फैले थे। धूप रहने पर भी हवा

का झोंका, उसे शीतलता प्रदान कर रहा था। उसने हास्य मिश्रित शब्दों में कहा, ऐसा कोई प्रयत्न नहीं हो सकता शैलेन्द्र ! जिससे मैं यहीं कहीं निकट में रह पाता।

"हाँ, क्यों नहीं। क्या यह जगह तुम्हें पसन्द है ?"

"हाँ, खूब !"

शैलेन्द्र ने ऐसा ही किया। यहीं पास के एक बड़े भवन में उसके रहने का उसने प्रबन्ध कर दिया, चूँकि उस भवन में उसका कोई परिचित परिवार रहता था, अतः अशोक को प्रबन्ध करने में कोई दिक्कत नहीं उठानी पड़ी। उसने सोचा, अशोक का यहाँ कुछ दिन तो मन बहलाव होगा। बेचारे की आकृति से करुणा टपकती रहती है। जाने, किस शत्रु ने उसकी ऐसी दशा की। किसी का भी मन से भला सोचने वाले अशोक की जिसने ऐसी दशा बनाई, उसका शायद ही भगवान् भला सोचें। कालेज के लड़के बहसी और झगड़ालू प्रकृति के होते हैं। इसके लिए मैं भी बदनाम था, किन्तु हमीं सबों में घुला हुआ अशोक, शायद ही कभी किसी से झगड़ता हो। सिवा आनन्द और उससे अधिक रमेश से बातचीत करने के अतिरिक्त और से कम ही सम्पर्क रखता। जहाँ तक मुझे याद है, एक ही दिन मेरे कानों ने उसके जोर के शब्द को सुना होगा। रमेश केवल विचारों की दुनिया में विचरता रहता, और परीक्षा निकट थी, अतः वह अधिकारपूर्वक डाँट रहा था। यह भी इसलिए कि रमेश पर अपनापन के नाते एक खास अधिकार रखता था। मैं जानता हूँ, जिस पर उसका विशेष अधिकार रहता है, उसे ही कुछ कहने का साहस करता है। सीमित लड़कों से भी कम ही बोलता। जाने कैसे याद कर मेरे ही यहाँ ठहरने की उसने कृपा की।

६

आत्म विस्तृत-सा प्राकृतिक सौन्दर्य के आवरण में अशोक रहने लगा। शैलेन्द्र के परिचित परिवार के लोग यह देख बड़े आश्चर्यित होते कि अशोक यहाँ ऐसी जगह में भी कैसे चुप, के संसार में विचर रहा है। अर्द्ध-चेतन अवस्था में रहनेवाले अशोक के प्रति उनकी अजीब-अजीब भावना हो रही थी। खास कर परिवार की लाड़िली लीला हमेशा सोचा करती, यह विचित्र मानव है। कभी खाना-पीना छोड़ नारियल वृक्ष के नीचे बैठा रह जाता। रात भी आई, इसका उसे ख्याल ही नहीं रहता। कभी पर्वत के कुछ ऊँचे भाग पर दोनों टेहुनों के बीच सर रख जाने क्या-क्या सोचा करता। दोपहर का समय बीता जा रहा है, पर अभी उसका पता नहीं। उसने अपने नौकर हीरा से कहा, देख तो बाबू कहाँ हैं। एक छोटे पर्वत के नीचे से कोई प्रिन्स रोड गया है। उससे कुछ दूर हट कर चँवर-सी कुछ जगह है। अशोक यहाँ ही एक करवट हो सोया था, किन्तु आँखें खुली थीं। देखने से विदित होगा, आँसुओं के चिह्न कपोल पर उग आये हैं। पृथ्वी के दायरे का कुछ भाग भी सिक्त था। दाँतों से घास कुरेदता हुआ, वह कुछ बुदबुदा रहा था। हीरा ने कई बार देखा है, एकान्त रम्य प्रान्त में ही अशोक रहता है। किन्तु आज निश्चित से भी अन्य सुदूर स्थल पर भी उसने ढूँढ़ा, पर अशोक का पता न पा सका। भूलता-भटकता, चक्कर लगाता अशोक ऐसी जगह पहुँचा था, जहाँ मोटर से भी जाने में कुछ देर लगेगी। सन्ध्या होने के कुछ पूर्व जब हीरा वापस आया, तब लीला ने व्यग्र हो पूछा, सब जगह तुमने उनकी खोज की ?

"हाँ।"

"आज जलपान भी तो उन्होंने नहीं किया ?"

"नहीं, सोकर उठते ही मैंने देखा उनका बिस्तरा सूना है।"

"बड़े विचित्र हैं, कहीं शहर तो नहीं गये हैं, फोन से पूछती हूँ।"

लीला ने शैलेन्द्र से पूछा, अशोक बाबू वहाँ गये हैं ?

"नहीं, क्या वहाँ नहीं हैं ?"

"नहीं, सुबह ही से लापता हैं।" वह व्यग्र-सी इधर-उधर ढूँढ़ने लगी।

फिर एक बार हीरा को भेजा, किन्तु जब पुनः उसने वापस आ कर 'नहीं' कहा, तब स्वयं कहीं खोज में जाना चाहती थी। उसकी समझ में अशोक को अवश्य कोई गहरी व्यथा है, अन्यथा वह खोया-खोया कभी नहीं रहता। आँखें गजब भरोई हुई, ललाट अजब सिकुड़ा हुआ; पपनियाँ हमेशा भींगी हुई। आकृति की ओर देखने पर आँखें कह उठतीं, उसकी ओर हम नहीं टिक सकतीं। भोजन करने के पश्चात् भी थाली चाटता हुआ बेसुध-सा सोचता रहता, सोचता ही रह जाता।

रात भर लीला को नींद नहीं आई। बाहर आकर कितनी बार उसने देखा है, अशोक आया कि नहीं। उसके रूम में जाने पर एक हैरानी अनुभव करती। उसके जीवन में अभी तक ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं मिला है, जो इतना भूला-सा रहता हो। अन्त में स्वयं कार निकाल कर हीरा के साथ उसे खोजने निकल पड़ी।

जहाँ-जहाँ हीरा ने बताया, वहाँ-वहाँ उसने खोज की। एक ऐसी जगह भी गई जहाँ उसने एक रुमाल पाया। हीरा ने बताया, परसों बाबू यहीं इसी नारियल के पास मिले थे। वह समझ गई, इसे उठाने तक कि उन्हें स्मृति न होगी।

लीला अधिक देर तक यहाँ बैठी रही। पुनः बड़ी तेजी से कार हाँकती हुई बढ़ी जा रही थी कि अचानक उसकी दृष्टि एक गुटिआये शरीर की ओर गई। सूर्य ऊपर उठ चुका था, उसकी किरणें उस पर पड़ रही थीं। लीला ने समझा, कोई निर्जीव पदार्थ पड़ा है; फिर ध्यान देने पर किसी के शरीर-सा लगा। उसने मोटर बैक कर देखा, अशोक, हाँ, शायद वही हैं। हीरा को उसने निकट भेजा। उसने देखा, अशोक गहरी नींद में है; बाँह पर सर रक्खे हुए। बाल ललाट पर आकर उड़ रहे थे। उसकी इच्छा हो रही थी, बराबर मैं ऐसी ही अवस्था में देखता रहूँ। और सच, वह बैठ कर देखने लगा कि लीला ने हौर्न बजाया। उसे जगाते न बन पड़ा। आकर उसने कहा, बाबू सो रहे हैं।

"तुमने उन्हें जगाया नहीं ?"

"बड़े मजे की नींद में हैं। मालूम होता है, रात भर न सो सके हैं।"

"तो इसका क्या मानी, अभी तक हम उन्हें सोने ही दें। तू यहाँ रह, मैं ही जगाने जाती हूँ।" वह निकट गई। किन्तु उसे लगा, अन्याय होगा; यदि थके-सोते को जगा दूँ। मूर्ख हीरा के जैसा ही वह भी उसे बैठ कर देखना ही चाहती थी। मुँह पर आये उड़ते हुए बाल, उसे भले लग रहे थे। कुछ काल यों ही जब उसके बीत गये, तब सहसा उसे ख्याल आया, कल से अभी तक उपवास ही होंगे। उसने धीमे स्वर में कहा, अशोक बाबू ! अशोक बाबू !!

आँखें खुलते ही उसे आश्चर्य हो रहा था, यहाँ लीला कैसे आ गई। उसने कहा, आप.........।

'हाँ, कल से ही खोज कर रही हूँ। भला ऐसा भी कहीं होता है, बिना खाये-पिये इस निर्जन प्रान्त में यों ही कोई पड़ा रहता है !''

'खाने का ख्याल ही नहीं रहा। आप लोगों को मेरे चलते बड़ी तकलीफें उठानी पड़ रही हैं; अब मैं कहीं और चला जाऊँगा।'

'नहीं, नहीं, कोई तकलीफ नहीं; मोटर अपनी थी, खोजने निकल पड़ी, इसमें तकलीफ काहे की।'

मोटर के निकट आने पर उसने देखा, उसका प्रिय नौकर हीरा भी खड़ा है। हँसते हुए उसने कहा, तू भी आया है !

'हाँ बाबू, खाने-पीने की भी तो चिन्ता करनी चाहिए।'

'अशोक व्यस्त-सा मोटर में बैठ गया। लीला कार हाँक रही थी, बड़ी तेज। चलते हुए या भागते हुए पार्वतीय प्रान्त उसे अच्छे लग रहे थे। कार बड़ी तेजी से भाग रही थी कि सहसा अशोक ने कहा, रोकें।

'क्यों ?'

'कष्ट न हो तो, जरा वहीं चलें जहाँ मैं पड़ा रह गया था। वहाँ मेरी अमूल्य निधि छूटी जा रही है।'

'लीला कार घुमा कर फिर तेजी से हाँकने लगी। कार खड़ी होते न होते वह कूद पड़ा। ऊबड़-खाबड़ जमीन लाँघता हुआ, अपनी जगह पर पहुँचा। उसे प्रसन्नता हुई, अपनी चीज ज्यों की त्यों पड़ी देख कर। बड़े करुण स्वर में उसने कहा, सच, खो जाना चाहते हो रमेश !

उसकी आँखों में जल उमड़ आया। कुछ देर तक जब वह पूर्ववत् ही पड़ा रहा, तब लीला ने सहमते हुए कहा, चलें; देर हो रही है।

वह स्वप्न से जगता-सा कह पड़ा, हाँ, हाँ, चल ही रहा हूँ। रमेश का चित्र पैकेट में रखता हुआ, कार में आ बैठा। बड़े-बड़े व्यस्त विचारों से जूझती हुई लीला, फिर कार हाँकने लगी। अशोक का यह सब दृश्य देख कर उससे वह बहुत कुछ पूछना चाह रही थी। किन्तु उसकी करुणाजनक विवश आकृति देख कर कुछ भी पूछने का साहस नहीं करती। निजके अधिक कार्य में व्यस्त रहने पर भी अशोक उसकी आँखों के आगे झूम जाता ही। देर तक भीतर रहने पर सहसा दौड़ कर उसके रूम की ओर देखती, अशोक है या नहीं; नहीं, तो हीरा को बुला कर पूछती, बाबू, कब, किधर, कैसा मुँह बना कर गये हैं। देर हुई, तो शीघ्र देखो, खोजो। आज की घटना पर तो उसके हृदय में न होने वाले विचार भी उत्पन्न होने लगे। कभी उसे आश्चर्य भी होता कि नितान्त अपरिचित व्यक्ति के प्रति जाने क्यों मेरे हृदय में इतनी भावनाएँ उठा करती हैं। कभी यह सोच कर क्षुब्ध भी होती कि एक दिन इस प्रकृति के कारण निश्चय ही अशोक, अपनी जान से हाथ धो बैठेगा। ऐसा लगता है, मरने पर शायद ही इसका संस्कार हो, चूँकि बहुत सम्भव है, ऐसे ही चँवर में कहीं मर जाय। उस समय दुनियावालों को क्या पड़ी है कि वे निकट जा कर यह देखने की तकलीफ उठायेंगे कि कौन आफत का मारा राहगीर यों पड़ा है। वैसी दशा में गिद्ध-कौवे ही तो उसकी अन्तिम क्रिया करेंगे।

यहाँ पहुँचते ही काँपने-सी लगी। कार हाँकने में कमजोरी भी अनुभव करने लगी। उसे ऐसा लग रहा था, मानो कार की हैण्डिल् अब छूटी तब छूटी। अस्तु, बड़ा प्रयास करने पर अपनी जगह पर पहुँची। कार खड़ी हो जाने पर भी अशोक कुछ देखता हुआ बैठा ही रहा, कि हीरा ने कहा, घर आ गया बाबू!

'ओह!' यह कहता हुआ पौकेट् से पैसा निकालने लगा कि ये रहे भाड़े, कितने तुम्हें देने हैं?

इस पर लीला को हँसी आये बिना न रही। उसने हाथ पसार दिये।

अशोक को बड़ी शर्म आई। उसने कहा, जाने क्या हो गया है कि मामूली-सी भी बात याद नहीं रहती। सच, आप विश्वास मानें, अशोक की कभी पहले ऐसी स्थिति न थी।

लीला का हँसना रुक गया। उसके मुँह पर मानो करुणा की छींटे आ पड़ी हों। चाहने लगी, अशोक इसी समय अपनी सारी कहानी कह दे। परन्तु तुरन्त ही चुप हो अशोक अपने कमरे में चला गया। बहुत देर तक उसमें पड़ा रहा, पीछे हीरा के यह कहने पर कि स्नान करें, भोजन तैयार है, उठा और हीरा के पीछे-पीछे चल पड़ा।

खाने के बाद लीला बहुत कुछ कहना चाहती थी कि अशोक अपने रूम में जा कर सोने का उपक्रम करने लगा। लीला आज चाह रही थी, चाहे जैसे भी हो, आज किसी प्रकार अशोक से सारी बातें पूछ कर ही रहूँगी। इसी आशय से उसने उसके रूम में प्रवेश किया तो देखा, उसकी उनींदी आँखें अधिक शान्त हैं। वापस आ किसी कार्य में अपने आप को भुला देना चाहती थी। पर कहीं भी उसका मन न लगा। अन्त में हीरा से उसने कुछ पूछना चाहा। हीरा अपने संसार का अकेला व्यक्ति था। जमाना हुआ, उसकी स्त्री हैजे से मर गई। जवान बेटा टाटा मिल् की इञ्जिन् में झुलस गया। वह आदि से ही लीला के यहाँ नौकरी करता है। पहले वेतन भी पाता था, किन्तु जब से उसका संसार लुट गया, तब से उसने वेतन लेना भी छोड़ दिया है। कितनी बार लीला की माँ ने कहा, हीरा अपना वेतन लेता जा, कहीं पुण्य कार्य या तीर्थाटन में खर्च करना। किन्तु यह कह कर उसने टाल दिया कि सरकार का घर ही अब मेरे लिए तीर्थ है। लीला को पहले वह स्कूल में हाथ पकड़ कर पहुँचाया करता था। सयानी होने पर भी बराबर उसकी देख-भाल करता रहा। उसके लिए लीला स्वर्ग रही है। माता-पिता जैसे लीला की ओर से निश्चिन्त रहते हैं। हीरा अपनी लीला का मुरझाया मुखड़ा देखने के लिए कभी प्रस्तुत नहीं रहता। उसने भी देखा, लीला अशोक की स्थिति देख, इधर चिन्तित रहने लगी है। मगर वह करे क्या, स्वयं भी तो वह अशोक के लिए चिन्तित है। रह-रह कर वह भी तो लगता है, उसी के विषय में सोचने।

शान्त जीवन भी जाने क्यों, हवा के झोंके में डोलने लगा है।

रात होने पर भी अशोक सोता ही रहा। लीला को लगा, फिर वह प्रातः तक सोता ही न रह जाय। इस दृष्टि से उसने हीरा के निकट जा कर कहा, बाबू, शायद आज उठेंगे ही नहीं। जगाओ न उन्हें, हीरा!

'क्या कहूँ बिटिया, उनका चेहरा ही ऐसा है कि विरोध में कुछ कहने की हिम्मत ही नहीं होती। सोते हैं, तो इच्छा होती है, सोते ही रहने दूँ। चलते हैं तो चलते ही रहने देने की इच्छा होती है।

'तो उन्हें सोने ही दिया जाय?'

'नहीं तो, भोजन के लिए जगाना ही होगा।'

'नौ बज रहे हैं, भोजन में देर हो रही है; जाकर जगाओ न?'

'हीरा ने जगाया। जगने पर अशोक ने कहा, भूख तो मालूम ही नहीं होती, यदि कोई हलकी चीज हो तो खिलाओ।

हीरा ने वैसा ही किया। खा लेने पर हीरा से उसने कहा, चाँदनी रात है। वह जो दूर जगह दीख रही है, वहाँ जाऊँ तो कैसा रहे?

'बहुत बुरा, रात को वहाँ लोग नहीं जाते।'

'क्यों?'

'यों ही, वहाँ नहीं जाते।'

'किन्तु मैं तो जाऊँगा।'

'नहीं मानेंगे तो जायँ, मगर मैं भी चलूँगा।'

'हीरा की दृष्टि निकट पार्श्व में खड़ी लीला की ओर गई। उसने सङ्केत से जाने की स्वीकृति दे दी। यद्यपि उसके हृदय को यह स्वीकार न था, किन्तु करती क्या; उसका अधिकार थोड़े ही है, अशोक से कुछ कहने का। और हीरा भी तो साथ जाता ही है। उसे बुला कर कहा, उनकी उदासी का कारण पूछना, किन्तु इच्छा नहीं रहने पर अधिक जोर न देना। कौन जाने, छेड़ने पर उनका दुःख कहीं और उमड़ पड़े। भूली हुई स्मृति, फिर जग पड़े। ऐसा होने पर सम्भव है, वे यहाँ नहीं रहना चाहें। तुम इसे समझ ही सकते हो कि और जगह इन्हें कितनी तकलीफें सहनी पड़ेंगी। सर्वत्र इन्हें हम तो

मिलेंगे नहीं।

चन्द्रमा के फैले सुनहले राज्य में अशोक पहुँचा। छोटे से पर्वत के कुछ ऊँचे भाग पर चढ़ा जा रहा था कि हीरा ने कहा, आगे न बढ़ें; पैर फिसल जाने का भय है।

फिसलने से क्या होगा हीरा, यही न कि मैं मर जाऊँगा, मरने दो।'

"ऐसा क्यों कहते हैं बाबू! आप की सारी बातें विचित्र होती हैं। ऐसा लगता है, मानो आप के हृदय में कोई सिगरेट की याद धीरे-धीरे सुलग रही हो। शायद उससे अब जल कर ही रहेंगे आप के जैसे बाबू को सदा हँसते-खेलते जीवन बिताना चाहिये। परन्तु आप के लिए हँसना तो महापाप-सा लगता है। आखिर आप इतने उदास क्यों रहते हैं?"

"क्या करोगे जान कर हीरा! यह एक लम्बी-चौड़ी कहानी है, जिसे सुन कर आँखों से आँसू गिरेंगे। मैं जानता हूँ, इस कहानी का अन्त बड़ा दुखदायी होगा। सच जानो हीरा, मुझे लगता है, अब शीघ्र ही मेरा प्राणान्त होगा।"

"ऐसा न कहें बाबू! भगवान आप को अधिक दिन तक जिलायेंगे।" हीरा की आँखों में आँसू उमड़ने लगे, उन्हें वह पोंछने लगा। उसे पुरानी स्मृति सताने लगी। छुट्टी पूरी होने पर उसका बेटा टाटा जाने को था कि उसने बात के सिलसिले में एक दिन कहा, क्या कहूँ बाबू, वहाँ की इञ्जिन् को देख कर कभी-कभी बड़ा डर लगता है। सोचने लगता हूँ, इसमें पड़ कर मरूँगा, तो कितनी पीड़ा होगी मुझे!

इस पर हीरा ने उसका मुँह बन्द कर दिया था, और चाहने लगा था, मेरा बेटा टाटा जाये ही नहीं। मगर उसे जाना ही पड़ा। और एक दिन जबकि उसका हृदय उन वाक्यों को याद कर धक-धक कर रहा था कि तार से उसे मालूम हुआ, उसका बेटा, सच, इञ्जिन् में ही मर गया।

बूढ़े की आँखों से अब भी आँसू बहे जा रहे थे। अशोक का अनायास ही जब उधर ध्यान गया, तब उसने देखा, हीरा सुध-बुध खो कर, केवल रोने में ही लगा है। उसका हृदय कहने लगा, इसे भी कोई गहरा घाव है, जो उभड़ने पर बड़ा उपद्रव मचाता है। जब आँसुओं का स्रोत न रुका, तब

उसने कहा, क्यों हीरा, तुम भी मेरे ही सदृश रोया करते हो ?

"नहीं बाबू !" यह कह कर लगा वह धोती के छोर से आँसू पोंछने। अशोक समझ गया, हीरा छुपना चाहता है। फिर उसने कहा, यदि छिपाओगे तो याद रक्खो मैं कल ही चल दूँगा।

वह गिड़गिड़ाने लगा, मैं कह दूँगा, पर आप न जायँ। बहुत पहले, एक दिन मेरे बेटे ने आप ही के जैसा कहा था, मुझे लगता है बापू ! मिल की इञ्जिन् में मैं मर जाऊँगा। और सच, वह एक दिन इञ्जन में जल मरा।

हीरा हिचकियाँ लेने लगा। अशोक को उसके प्रति बड़ी दया हो आई। यद्यपि वह एक पितृ-हृदय से अपरिचित था, परन्तु दुःखद पीड़ा का परिचय उसे मिल गया था, अतः हीरा की पीड़ा को समझता था। सोचने लगा, जाने कब तक बेचारा बूढ़ा हीरा उसके लिए आँसू बहाता रहेगा। करें क्या, आँसू ही तो अब उसका एक मात्र सहारा होगा। आँसू में वह अपने बेटे की आकृति देखता होगा, आँसू में उसे एक नैसर्गिक आनन्द मिलता होगा, परम शान्ति मिलती होगी। उसने कह ही तो दिया, क्यों हीरा, तुम्हें रोने में शान्ति मिलती है ?

"हाँ।"

"तो हमेशा रोते होगे ?"

"नहीं, लीला, कुमुद बाबू, इन सब को देख कर अपने बेटे को भूल जाता हूँ। उनकी थोड़ी भी पीड़ा मुझे बर्दाश्त नहीं होती। बीमार पड़ने पर घण्टों सर दाबा करता हूँ। लीला कहीं जाने पर, मुझे ही खोजती है। मैं यहाँ अच्छे बाप के पद पर हूँ। मुझे कोई तकलीफ नहीं होती। मगर जब कभी उसकी भी याद बेचैन कर देती है उस समय तो निगोड़े आँसू बह कर ही दम लेते हैं। ठीक उसी समय लीला आकर कहती, क्यों हीरा, मैं मर गई न; जो तू आज ही लगा रोने। फिर बाबू चुप ही रहना पड़ता है। मेरे ही क्यों, लीला को किसी के आँसू बर्दाश्त नहीं होते।"

"ऐसा ?"

हाँ, आप की आकृति देख कर हमेशा पूछा करती है, हीरा, जाने क्यों,

बाबू सदा उदास रहते हैं ।"

अशोक फिर गम्भीर बन गया । हीरा की कही हुई बातें भूलने लगा, और उसे वही पुरानी स्मृति सोचने को विवश करने लगी । सोचने लगा, रमेश की घटना मुझे कहीं भी चैन नहीं लेने देगी। आखिर यहाँ भी तो लीला ताड़ कर ही रही, मैं व्याकुल और चिन्तित रहता हूँ । चाहता हूँ संसार मेरी एक बात को भी न जानें; वह मेरी फिकर ही नहीं करे कि कब मैं क्या सोचता-विचारता हूँ । पर चिन्ता से परिपूर्ण मेरी आकृति देखकर सब के मन में यह बात उठ कर ही रहती मैं दुखित क्यों रहता हूँ । हँसना मेरे लिए अभिशाप क्यों है । यह उसकी स्मृति की वजह होता है । लाख बार हृदय को समझाया, कभी भी उसकी बातों को सोचा ही न कर, याद ही न कर। पर पक्षपाती हृदय को यह बात स्वीकार थोड़े ही है । उसे मेरा घुलते रहना, अच्छा जो लगता है ! मरने पर ही उसे भी शान्ति मिलेगी ।

बहुत देर तक यों ही वह अनाप-सनाप सोचता रहा । अन्त में हीरा ने कहा, बड़ी रात उठी । लीला बाट जोहती होगी । अब हम लोग चलें । अन्यथा वह भी शायद ही सोये । दया की साक्षात् देवी ही उसे समझें । एक साहब के बन्दूक से पंछी मारने पर उसने मुझसे कहने को कहा कि ये बाग मेरे हैं; आइन्दे से वे इसके पंछियों को न मारेंगे ।

घर आने पर अशोक ने देखा, सच, बाहर ही हाथ पर पुस्तक लिए लीला कोच पर ऊँघ रही है । उसे समझते देर न लगी कि प्रतीक्षा में ही यह ऊँघना हो रहा है । हीरा और अशोक के आने पर, उसका ऊँघना बन्द हो गया । हीरा की ओर देखते हुए उसने कहा, तुम भी बाबू के साथ ही अपने-आप को भुला देना चाहते हो ?

उत्तर में अशोक ने कहा, आप हम लोगों के लिए अभी तक जगी रहीं । हम तो कभी न कभी किसी समय आ ही जाते । अच्छा, अब आप जा कर सो रहें ।

लीला सोने जाने लगी तो भाँति-भाँति के विचार उसे झकझोड़ने लगे । सब एक साथ मिल कर कहने लगे कितने भले हैं बाबू ! फिर भी संसार इन्हें

असह्य कष्ट से व्याकुल करता ही है। उनके प्रति थोड़ी भी सहानुभूति रखना, तुम्हारा कर्त्तव्य होना चाहिये था। पर वह अशोक बाबू जैसे व्यक्तियों पर सहानुभूति रक्खा करे तो औरों का कैसे काम चले।

रात को सोते समय अशोक भी सोचने लगा, लीला भी एक अजीब ही लड़की निकली। कहाँ का मैं एक नितान्त अपरिचित व्यक्ति, और कहाँ की इस लीला की इतनी बड़ी गहरी सहानुभूति! करुणा का केन्द्र उसका हृदय, मेरे प्रति जाने क्या-क्या सोचा करता होगा! भावना की प्रतिद्वन्द्विता में शायद उसका हृदय जीत जाय। चूँकि करुणा की भावना में बड़ा बल रहता है, यह अब मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ। इसका यह अर्थ नहीं कि अशोक ऐसों के प्रति भी रमेश ही जैसा सोचा करे, यह तो नहीं होने का।

प्रातः लीला ने उठने पर, हीरा और अशोक, दोनों को सोते हुए पाया। किन्तु अधिकारपूर्वक वह हीरा को ही उठा सकती थी, अतः वही उठाया गया। हीरा ने आँखें मलते हुए कहा, बड़ी देर तक सोता रहा, तुमने जगाया क्यों नहीं! बाबू भी सोते ही होंगे!

'हाँ. अब उन्हें भी उठा दो; अन्यथा उठें भी नहीं।'

'नहीं, सोने ही दो; रात में अधिक देर तक जगे भी तो थे। अच्छा हीरा, उन्होंने तुमसे कुछ कहा भी?'

'विशेष कुछ तो नहीं, मगर.........।'

'कहो न, मगर......।'

'कहते थे, मैं शीघ्र ही मरनेवाला हूँ।'

'ऐसा क्यों हीरा, तुमने यह पूछा नहीं?'

'पूछा, किन्तु इससे अधिक कुछ कहने के लिए वे तैयार न थे।'

लीला सोचने लगी, अशोक बाबू यों क्यों कहा करते हैं, कौन-सी उन्हें वेदना है, जिससे वे कुछ कह नहीं पाते।

घर-बाहर करती हुई लीला दूर तक दृष्टि दौड़ा कर, अशोक की आन्तरिक स्थिति में प्रवेश पाना चाहती थी। और उसमें प्रविष्ट हो कर, अशोक की दर्द भरी कहानी का भी अन्त करना चाहती। किन्तु वह इस प्रकार न गम्भीर

बना रहता कि लीला साहस कर भी कुछ पूछ नहीं पाती। जीवन की मन्दगति तीक्ष्णता को लिए हुए विपरीत दिशा की ओर बही जा रही थी। इस पर सोचने की उसे फुर्सत हो या न हो, पर यह सच है कि अब जब कभी सोचने-विचारने की-सी अवस्था में ही रहती। सांसारिक प्रवृत्ति की मूल भित्ति वेदना या करुणा पर स्थित है तो उसकी करुणा में इतनी विक्षिप्तता क्यों है? उसकी यह विक्षिप्तता एक दिन उसका अन्त ही कर डालेगी। उस समय संसार का कोई भी व्यक्ति उसकी ओर आँख उठा कर देखने तक कष्ट नहीं करेगा।

हीरा के उठाने पर अशोक भी उठा, अँगड़ाइयाँ लेने के पश्चात् उसने हीरा को बुला कर कहा, जा कर जरा लीला को भेजना। मुझे उनसे बहुत कुछ बातें करनी है। तुमने उनकी इतनी प्रशंसा कर दी है कि हृदय कुछ पूछने को वाध्य कर रहा है। उन्होंने अपने जीवन में कौन से खेल खेले हैं कि इस प्रकार की करुणा की अनुभूति, जो मेरी दृष्टि में एक बड़ी विभूति है, पा ली है। मानवता का मूल्य आँकने में वही सफल होगा, जो वस्तुतः अपने हृदय को करुणा का हृदय समझता होगा। तुम्हारी लीला देवी में, शायद इसी कारण मनुष्यता की मात्रा अधिक है। जीवन की भयङ्कर आँधी को मिटा देने की शक्ति इसी करुणायुक्त मनुष्यता में है। भावना के प्रवाह में, काल्पनिक विचार-भवन खड़ा करने वाला मानव, एक झोंका आने पर दानवता के रूप में भी परिणत हो सकता है। उस समय कैसे भी समाज की व्यवस्था को बदल देने की वह शक्ति रक्खेगा। और स्वयं एक ऐसे समाज का निर्माण करेगा, जो साबित करेगा, जमाने के अनुसार चलनेवाले ही संसार में जीने का अधिकार रखते हैं। मानी हुई बात है, मक्कार जमाना सब को सिखलायेगा, धोखे की प्रवृत्ति बुरी नहीं। विश्वास-घात पाप नहीं, मक्कारी जीविका है, जाल-फरेबी, सफलता का सब से बड़ा चिह्न है। तुम इसको कभी सोचोगे हीरा, ऐसे समाज में बड़ा बल निहित रहता है, जिसके आगे हम जैसे कितने सर झुका कर अपना विनाश कर सकते हैं। खैर, छोड़ो इन बातों को अपनी लीला देवी को बुलाओ।

अशोक के लिए जलपान प्रस्तुत कराती हुई लीला ने जब यह सुना कि उसे बाबू बुला रहे हैं, तब आश्चर्य की परिधि में घूमने लगी। हीरा आया तो बार-बार कारण पूछने पर भी कुछ नहीं बता पाया, बाबू किस लिए बुला रहे हैं। केवल उसने यही कहा कि सो कर उठते ही उन्होंने आप को बुलाने के लिए कहा।

सहमती हुई लीला अशोक के पास आई, और उसके पार्श्व में रक्खे हुए कोच पर बैठ गई। अब अशोक सोचने लगा, आखिर पूछूँ क्या! आँखें ऊपर-नीचे करते हुए उसने कहा, आप में करुणा किस प्रकार समा गई। आप उपेक्षित मानव के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करना कैसे जान गईं।

'आप का कहना, मेरी समझ में कुछ नहीं आया। मुझ में करुणा भी है, यह मैं नहीं जानती; उपेक्षित मानव मुझे मिला ही कहाँ कि मैं अपनी सहानुभूति भी प्रदर्शित करती।'

'मैं तो एक उपेक्षित ही मानव हूँ।'

'आप की किसने उपेक्षा की ? परिवार ने...या...?'

'नहीं, नहीं, आपने समझा ही नहीं; संसार ने, रमेश ने मेरी उपेक्षा की, जबकि मेरा कोई दोष न था। दूसरे के उपकार की भावना से प्रेरित मानव की जब उपेक्षा होती है तब वह व्याकुल हो सब से प्रतिशोध लेना चाहता है। किन्तु विश्वास मानें, मेरे हृदय में प्रतिशोध की भावना कभी नहीं उठी, चूँकि मेरे लिए सभी अपने हैं; खास कर मेरा र...मे...श...। नहीं, कुछ नहीं।' अशोक का माथा चकराने लगा। न चाहते हुए भी उसने बहुत कुछ कह डाला। लीला ने यद्यपि प्रयास करने पर भी कुछ समझा नहीं; फिर जब उसने देखा, बाबू पागल से हो उठे हैं, तब परिस्थिति बदलने की दृष्टि से उसने कहा, अशोक बाबू, कलवाली जगह आप को कैसी लगी ?

'अच्छी ही लगी,' अशोक ने धीमे किन्तु गम्भीर शब्दों में कहा। उसे क्षोभ हो रहा था कि मैंने अपने को लीला सम्मुख खोला क्यों ? रमेश के विषय में उसने यदि आगे प्रश्न किया तो...। उधर लीला ने देखा, बाबू कुछ विचार में उलझ पड़े हैं तो इन्हें उलझने नहीं देना चाहिए। कहीं उलझे ही रह गये

तो खाना भी भूल जायँगे। उसने यही सोच कर, हीरा की ओर संकेत कर कहा, बाबू को शीघ्र खिलाओ।

एकान्त दोपहर में कोच पर बैठे अशोक ने जाती हुई लीला को बुला कर कहा, आप की कृत्ति, सब की अपेक्षा कुछ भिन्न है, साधारण स्थिति की आप रक्षिका हैं; जीवन-जगत् पर आप का अपना विचार होगा। फैशन में रँगे वातावरण में पलती हुई भी आप अमरावती से सर्वथा पृथक् हैं। वह वातावरण में घुल-मिल जाना जानती थी, यद्यपि उसकी दृष्टि सुदूर, सुविस्तृत संसार की ओर जाती; पर देखती, एक संकुचित वस्तु को ही। ठीक इसके विपरीत आप की दृष्टि, किसी दायरे में ही रहती; मगर पाती, कोई ठोस, विस्तृत वस्तु ही। नागरिकता, आप में कूट-कूट कर भरी है, किन्तु ग्रामीणता से आप दूर भी नहीं भगी हैं। संसार के कठोर असत्य पर आप का विश्वास शीघ्र नहीं होगा, चूँकि वाह्य असत्य-सत्य का शायद आप को ज्ञान नहीं। किन्तु अमरावती का इस विषय में पूर्ण ज्ञान है। वह कठोर असत्य के विरुद्ध आवाज उठा सकती है, उसमें शक्ति भी थी; किन्तु अब शायद उसका ह्रास हो गया है। जीवन से लड़ना नहीं जान सकने के कारण असफलता पा सकती है। परन्तु रमेशरूपी शक्ति को पाकर वह पूर्ण सफलता भी प्राप्त कर सकती है। कहने के लिए परिस्थितियों का सामना करना कठिन है, परन्तु उसके प्रति मेरा दृढ़ विश्वास है, कठिन से कठिन कार्य भी उसके लिए दुष्कर नहीं है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आप में, उसकी तुलना में कमजोरी अधिक है।

लीला कुछ समझती तो उत्तर भी देती, वह न रमेश को जानती, न अमरावती को। उसके लिए दोनों नितान्त अपरिचित। वह कितनी बार चाहती थी, टोकूँ, अमरावती, रमेश, आखिर हैं कौन ? किन्तु इस भय से कि बाबू का कहीं ताँता न टूट जाय, चुप सुनती ही रही। पर इतना अब वह समझने लगी है कि कारुणिक, विवश कहानी के गम्भीर पात्रों में से अशोक बाबू भी एक प्रधान पात्र हैं या कारण-पात्र हैं। जिस कहानी की हर एक पंक्ति या पारा के आरम्भ में तो आवश्यकता पड़ती है। अशोक बाबू की विकलता दूर करने के विचार से बहुत कुछ कहने का प्रयत्न करती, किन्तु

हृदय के झूठ की कमजोरी व्यक्त हो जाने के भय से चुप्पी ही साध लेती। परन्तु भीता-सी उसने पूछ ही डाला, अशोक बाबू, ये रमेश और अमरावती कौन हैं ?

अशोक की नींद टूटी। उसे ख्याल आया, मैंने लीला से सारी कहानी तो नहीं कह दी ! हाँ, तो बुरा हुआ। बुझा हुआ कोयला और ही रूप धारण कर लेगा। शान्त सागर में लहरें हिलोरें मारने लगेंगी। उसकी सारी निस्तब्धता भङ्ग हो जायगी; फिर ज्वार उठने की सम्भावना होगी। जानें, कैसे मेरा मानस मथा जाने लगा है। मस्तिष्क शायद शून्य होने लगा। अन्यथा दूसरा कोई भी कारण नहीं था कि क्षण पूर्व स्मृति भी आँखों के आगे नहीं झूम जाती। लीला भी क्या कहती होगी, कैसा मूर्ख है कि हमेशा ऊट-पटांग बोला करता है। तो क्या मैं उससे सारी कहानी कह दूँ ? पर लाभ ! हाँ, लाभ ! ! कुछ नहीं, फिर कहूँ भी क्यों। पर मेरे प्रति उसके मन में कैसी कुभावनाएँ उठेंगी। कैसी घृणा का अंकुर उत्पन्न होगा। चाहे जो भी हो, मैं कुछ नहीं कहूँगा। दबी भावना ऊपर उठ भी सकती है, किन्तु यथा साध्य मैं उसे दबाने का ही प्रयत्न करूँगा। अमरावती और रमेश का परस्पर जैसा भी भाव हो, परन्तु लीला तो उसका दूसरा ही अर्थ लगायेगी। कहीं यह न समझ बैठे कि रमेश एक घृण्य व्यक्ति है। पर प्रश्न है, इन्हें उत्तर क्या दूँ, कुछ तो कहना ही होगा।

'रमेश और अमरावती, एक दूसरे से सहानुभूति रखनेवाले व्यक्ति हैं। कुछ दिनों तक मैं भी इनके साथ था, अतः जब कभी इनका स्मरण हो आता है, विशेष कर रमेश की स्मृति, बराबर सताया करती है।'

बहुत देर तक चुप रहने एवं अस्पष्ट उत्तर पाने पर लीला ने समझा, अशोक बाबू प्रकट नहीं करना चाहते है, अतः इस पर विवश करना अच्छा नहीं; चूँकि ये उनमें नहीं जिन्हें प्रकट करने में आनन्द या सन्तोष मिलता है। इसके लिए अच्छा है, मैं इन्हें दूसरे विचारों की ओर ले जाऊँ।

'अच्छा अशोक बाबू, मुम्बई आप को कैसी लगी ?'

'अच्छी ही।'

इस सीमित उत्तर से उसे सन्तोष न हुआ, किन्तु आगे के प्रश्न से उसने मुँह मोड़ लिया। समझ गई आन्तरिक मनोवेदना के नहीं प्रकट होने से अशोक बाबू अधिक विक्षुब्ध हैं।

अशोक की क्षुब्धता पर वह सोच ही रही थी कि उसने कहा, जरा कहीं निकलूँगा दूर तक न जाकर, इधर ही कहीं घूमूँगा। आवश्यकता पड़ने पर सहज ही में आस-पास कहीं खोज लेंगी।

लीला एक मूर्त्ति की भाँति देख ही रही थी कि वह कहीं निकल पड़ा। जीवन के इस कष्टकर उद्वेग का परिणाम क्या होगा, इस पर लीला सोचने लगी। वह जानती है, अशोक को बड़ी-बड़ी बातें सोचनी पड़ती हैं जिस कारण हृदय में चञ्चल तरङ्गें उठा करती हैं। उन तरङ्गों के आघात से अधिक सम्भव है, अशोक अविलम्ब ही अपना शरीर त्याग दे। भगवान् जाने, उस समय उन पर कोई आँसू भी बहानेवाला मिलेगा या नहीं। कितनी मर्मान्तिक पीड़ा से पीड़ित होकर वह मरेंगे। न जाने कितनी आकांक्षाओं, कितनी आशाओं को लेकर यह लीला समाप्त करेंगे। क्या ही अच्छा होता हमेशा मैं उनके साथ ही रहती। पर असंबद्ध बातें ठीक थोड़े ही होती हैं। मेरा सारा सोचना व्यर्थ का है। परिवार की दृष्टि में वह कौन है कि साथ रहने का लीला को अधिकार हो। उसके विषय में सोचना ही, लीला के लिए एक अपराध है। किन्तु अजीब परिस्थिति, बेसुध, निस्पृह रहनेवाले व्यक्ति के प्रति सोचना या सहानुभूति प्रदर्शित करना, एक गुनाह है, अपराध है। दुनिया का न्याय, जाने किस आधार पर टिका हुआ है।

लीला अशोक पर न सोचना ही अच्छा समझने लगी, मगर उसे सोचना ही पड़ता है। सागर का ज्वार उमड़ना उसे इष्ट नहीं, किन्तु हृदय के एकत्रित कूड़े-करकट को बहा ले जाने के लिये उसकी आवश्यकता समझनी ही है। सामने दर्पण रख कर भी अपना मुँह नहीं देखना चाहती, मगर देखती ही; उसे देखना ही पड़ता है। गोलाप-पुष्प खिलता है, मुरझाता भी है, उसे मुरझाना ही पड़ता है; इसे कोई रोक नहीं सकता। तेल नहीं रहने पर बत्ती बुझती है, उसका बुझ जाना स्वभाविक ही है। लीला अशोक की विवश अप्रकट

भावना में लिपटती है, किन्तु उसे दूर रहने का विफल प्रयास भी करती है। यह अच्छा है कि अशोक इसे जान नहीं गया है, अन्यथा अब तक वह कब का नहीं सब छोड़-छाड़ कर चला गया होता। रमेश से उसे फुर्सत ही कहाँ कि वह और के विषय में अपना मस्तिष्क खर्च करे; वह उससे फुर्सत चाहता भी नहीं। तंग आ कर कभी-कभी उससे अलग रहने के लिये अवश्य सोचता है, किन्तु बिना प्रयत्न ही उसके निकट चला जाता है। इस समय भी पुरानी स्मृति सजग होने की वजह न चाहने पर भी उसके नितान्त निकट चला गया और अब चाहता है, एकान्त पाकर, रो-गा कर उसे भूल जाऊँ। आँसू गिरने के भय से ही वह लीला के पास से उठ खड़ा हुआ है। दूर नहीं तो निकट भी नहीं, वह कुछ वृक्षों के बीच बैठ गया। आँसुओं का गिरना जारी हो गया, उन्हें पोछने का भी वह प्रयास नहीं करता। आँखें खोलने पर भी जब उसे नहीं दीखने लगा, तब रूमाल निकाल, पोछने लगा। फिर भी लगातार आँसू गिरते ही रहे। उसकी आँखें लाल हो गयीं। उनमें, वह आग की तप्तता अनुभव करने लगा। बहुत देर बाद अचानक जब उसके मन में यह बात उठी कि शायद लीला यहाँ उपस्थित न हो जाय, कहीं मेरे आँसुओं को लख न ले तब वहाँ से उठ कर थोड़ी और दूर चला गया, जहाँ एक रम्य भवन था। वहाँ पहुँचने पर उसने फुदकते दो मोरों को देखा। कुछ देर के लिये उसकी दृष्टि टिक गयी। पूर्व बहे आँसुओं के स्पष्ट चिन्ह कपोल पर उगे ही थे, किन्तु मोरों को देख शायद वह इन्हें भूलने लगा। पंख फैला कर जब वे उड़ने का प्रयास करते, तब वह चाहता सदैव ये उड़ते ही रहें। मेघ के गरजने पर उसका नृत्य कितना लुभावना होता होगा! इसी नृत्य को देखने के लिये मैं मोर खरीदूँगा।

मोर अशोक के हृदय में दूसरी भावना का संचार करने लगे। रमेश के विचारों से विश्राम मिलने पर यह प्रसन्न रह सकता था किन्तु प्रसन्नता की सामग्री मिलनी भी तो एक प्रकार से मुश्किल थी। जीवन की प्रसन्नता, मनुष्य की परिस्थिति की बाट थोड़े ही जोहती है। कार्य-कारण का आरोप हृदय में हुआ कि प्रसन्नता की रेखा खिंचने लगी। उसका स्वरूप भी जानें हृदय में

कैसे स्थिर हो आता। अशोक कुछ वाह्य सुख को सोचने लगा, जिसका फल यह हुआ कि और दिन की तरह ही सन्ध्या बीत जाने पर भी रात का उसे तनिक ख्याल न हुआ। सजग होने पर उसने मोर की ओर दृष्टि दौड़ायी तो देखा, वे विलीन थे। डेरा लौटने के लिये मुड़ा तो बहुत ध्यान देने पर उसने देखा, पास ही कोई खड़ा है। कुछ अन्धकार के कारण दूर से न पहचान सका, किन्तु निकट आने पर उसे आश्चर्य हुआ, लीला ही उसकी ओर देखती हुई खड़ी है। उसे देख कर कुछ सहम तो अवश्य गया, इसलिये कि पूर्व स्थिति से भी कहीं भिन्न हो गयी, फिर भी बड़ी निर्भीकता से उसने कहा—कब से खड़ी हैं आप!

वह चुप थी। अशोक की तरह ही आज वह भी विचार मग्न-सी थी। उस के चुप रहने की वजह अशोक के हृदय में और कई भावनाये दौड़ने लगीं। उसने फिर कहा, आप कब से खड़ी हैं?

फिर चुप। इस बार उसने झकझोर कर कहा, आप बोलती क्यों नहीं? कब से.........!

इस पर सहसा लीला ने कहा, अशोक बाबू, कभी-कभी आप के चुप रहने पर मुझे भी इसी प्रकार झकझोरने की इच्छा होती है। किन्तु सीमित दायरे में या अपनी स्थिति में रहने के कारण चुप ही रहती हूँ।

अशोक जैसे धम्-से गिर गया। लीला के इस प्रत्यक्ष उत्तर पर उसे लगा, मैं प्रकट होकर ही रहा। शायद लीला समझ गयी कि अशोक को रमेश ने बड़ा कमजोर बना दिया है। अन्यथा एक अपरिचित नारी से वह भय क्यों खाता? इस विषय में लीला ने बाजी मार ली। अपने आप की भावना को मेरे सामने खोलने से उसे तनिक भय न हुआ। खैर, कमजोरी ही सही पर किसी भी अवस्था में घटना का इतिहास न कहूँगा।

फिर चुप रहने पर लीला ने उदास हो कहा; अच्छा, अब देर हो चुकी, चलें; और भी प्रतीक्षा करते होंगे। परन्तु आप इस सत्य को कदापि न भूलेंगे कि कुछ प्रकट कर देने से हृदय-भार हल्का अवश्य हो जाता है।

इस पर भी सोचता हुआ अशोक पग आगे बढ़ाने लगा। लीला के स्वाभा-

विक सत्य का हृदय से वह विरोध करना नहीं चाहता था। बाहर से विरोध करने की प्रवृत्ति जगने पर, यों ही, उसके आगे लीला की साँझ, उदास आकृति नाचने लगी। सर्वदा असफल लीला को कितना क्लेश होता होगा। नितान्त अपरिचित होने पर भी उसने मुझे अपना समझा। परिणाम में, मैं जैसे उसके अपनापन से खिंचा रहा। उससे दूर भागने में व्यर्थ का सन्तोष पाता। बेचारी एक प्रकार से मेरी ओर से उपेक्षित होने पर भी निकट से मेरी ही चिन्ता करने लगी है! कितनी उसे ठेस लगती होगी, जब मैं उसके प्रश्नों का समुचित उत्तर न देता हूँगा। एक अव्यक्त कष्ट से मसोस कर भीतर ही भीतर रह जाती होगी।

वेदना जब मनुष्य के हृदय में घर कर लेती है, तब एक साथ ही मनुष्य कई झोकों का अनुभव करता है। जीवन के कठोर, दुर्गम मार्ग को पार करना, उसके लिये कठिन नहीं, असम्भव प्रतीत होने लगता है। संसार में फैली हुई कुप्रवृत्तियाँ, सबों पर एक गहरा, किन्तु अनुचित प्रभाव डालती हैं, जिससे उन्नत समाज को बड़ा धक्का पहुँचता है। संस्कृति सभ्यता का उस समय तो तनिक प्रश्न ही नहीं उठता। कुछ के लिये तो वह वेदना जीवन है, संसार है। और कुछ के लिये मरन है विष का घड़ा है। अशोक की चाहे जैसी वेदना हो, किन्तु सच है कि उससे वह तंग आ गया है। अशान्ति की आँधी नित्य उठती रहती है। चारों ओर की प्रबल शक्तियों का सञ्चय कर वह चाहता है, मैं उस आँधी का सामना करूँ, और डट कर करूँ। पर अफसोस कि सर्वदा वह एक दुर्बल ही करार दिया जाता है। उसके हृदय में ऐसी कई भावनायें नाचती रहती हैं; जिनसे वह सदैव बेकल रहता है, विक्षुब्ध रहता है। उसकी इस विकलता को दूर करने का प्रबल प्रयत्न लीला करना चाहती है। किन्तु अनेक आकांक्षाओं का दमन कर अशोक उसके सारे प्रयत्नों को विफल कर देता है। रमेश की जीवन कहानी वर्णन करने का वह यह अर्थ समझता है कि मेरी सारी दुर्बलता प्रकट हो जायेगी, फिर इसके प्रकट हो जाने से मेरा कोई अस्तित्व उसके आगे नहीं रह जायेगा, किन्तु यह भी कोई आवश्यक नहीं कि उसके आगे मेरा अस्तित्व कायम ही रहे। वह होती ही कौन है, मेरे

अस्तित्व-अनस्तित्व से उसे क्या प्रयोजन है। मेरे दुःख, मेरी वेदना के व्यापक रूप पर वह क्यों सोचती, विचारती। मेरे साथ सहानुभूति रखने के बजाय, औरों के साथ सहानुभूति क्यों नहीं रखती। मैं आन्तरिक पीड़ाओं से व्याकुल रहता हूँ तो, यह निश्चय है कि सदैव बेसुध-सा रहूँगा, किन्तु उसे इससे क्या, मैं जहाँ कहीं एकान्त की शरण लेना चाहता हूँ तो इस पर उसे एतराज क्यों है। अतिथि हूँ तो सत्कार करे मगर देख-भाल क्यों करेगी! जीवन की हरेक ऊँची सीढ़ियों पर चढ़ने वालों को अनेक तकलीफें सहनी पड़ती हैं, यह वह क्यों नहीं समझती। यदि समझने का प्रयास करे तो मेरा ख्याल है, मनुष्य की प्रत्येक अवस्था का उसे सहज ही में ज्ञान हो जायेगा। तब मुझ जैसों को उसे तनिक चिन्ता न रह जायेगी। मनुष्यता के नाते यदि वह मेरे साथ सहानुभूति रखती है तो सब के साथ रखे। मेरे ही साथ सहानुभूति रखने का यह अभिप्राय है कि इसमें उसका कोई स्वार्थ है। पर कौन स्वार्थ, कैसा स्वार्थ!

यहाँ पर आकर वह सहसा रुक पड़ता। लीला का अशोक में आखिर कैसा स्वार्थ हो सकता है, व्यक्ति विशेष के प्रति कभी-कभी उसकी दयनीय अवस्था की वजह यों ही सहानुभूति उमड़ पड़ती है। प्रति दिन, प्रति क्षण तो वह देखती है, मैं अजब हैरान-सा रहता हूँ। खाने-पीने की सुध छोड़ कर चिन्ता प्राङ्गण में विचरता रहता हूँ। लीला उस प्राङ्गण में झाँकती भर है कि देखती है, मैं अपने आप पर झुँझला रहा हूँ, खीझ रहा हूँ। वैसी दशा में क्या वह मुझ से सहानुभूति नहीं रखे! यदि नहीं इस अवस्था में हो तो क्या मैं मौन ही रहता। नहीं, तो उसका इसमें कौन दोष, कौन स्वार्थ!

रात भर एक विचित्र स्वप्न में विचरने के बाद प्रातः अशोक की आँखें खुलीं तो उसने हीरा को आँसू पोछते हुए देखा। वह आँखें मीचने लगा। उठी हुई शङ्का की उद्भावना के कारण निकट जा कर उसने पूछा, हीरा, आज फिर किसी की स्मृति हो आयी!

'नहीं'।

'फिर,'!

'आज बहुत दिनों ही नहीं वर्षों बाद लीला की आँखों में आँसू देखा।

मुझे खूब याद है, इन आँखों में अब तक बाल-हठ के ही आँसू उमड़े हैं। दु:ख-पीड़ा के नहीं। इसके एक आँसू पर माँ जी, मैं सभी घबड़ा उठते हैं। इसकी छोटी-सी छोटी इच्छाओं का कभी हम लोगों ने दमन नहीं किया। रात के एकान्त में मेरे कानों ने उसके सिसकने को भी सुना। आप क्या जाने बाबू, उसके आँसू में कितना दर्द, कितनी पीड़ा, कितनी करुणा भरी रहती है।'

'तुमने पूछा नहीं कि ये आँसू क्यों ?'

'पूछने पर तो वह और भभक पड़ेगी।'

'ओ।' अशोक अब लगा, लीला के विषय में सोचने। आँसुओं का आशय क्या है। उसके हृदय में कैसी पीड़ा उठी कि वह रो पड़ी। किन्तु कारण भावनाओं का संचार हुआ कि वह व्याकुलता की परिधि में मँड़राने लगी। हर्ष-आमोद के संसार में खेलने वाली लीला, इस प्रकार साँझ-ऊषा के प्राङ्गण में आँख मिचौनी कैसे खेलने लगी। परम सन्तोष के जीवन में असन्तोष का बवन्डर क्यों! कहीं इसका कारण मैं बना तो, मैं बना तो...। नहीं, मैं क्यों! रास्ते पर चुपचाप चला जाने वाला पथिक किसी के आँसू का कारण बने, यह कैसे हो सकता है। स्वयं यदि किसी को छेड़ने की इच्छा हुई तो वह जाने, इसका परिणाम क्या होगा। यदि उससे छेड़ने वाले को पीड़ा हुई, तो उसमें उसका क्या दोष! किन्तु यह सोचना सच हो, यह कोई आवश्यक नहीं। सम्भव है, और कोई उसे आन्तरिक व्यथा हो जिसकी वजह उसकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े हों। इसमें मैं क्यों माथा-पच्ची करूँ। व्यक्तिगत कारण पर मैं क्यों अधिकार रखूँ। इसका फल तो रमेश से मिल चुका है। आश्चर्य तो यह है कि जीभ जलने पर भी दूध पीने वाला फूँक-फूँक कर पीना नहीं चाहता। रमेश की निकटता में एक अपूर्व स्नेह दौड़ता फिरता था, वह स्नेह लीला में कभी समा सकता ही नहीं, और समाये क्यों! रमेश और लीला की एक साथ कैसी तुलना, कैसी समता। दोनों दो हैं, उनका एक हो जाना असम्भव है। मेरा रमेश रमेश ही है। गलतियाँ सब से होती हैं, उससे भी हुई; बल्कि औरों की अपेक्षा, गलतियों का बेचारे को बड़ा कड़ा दण्ड मिला। दण्ड देने वाले जज ने थोड़े से अपराध के लिए महान् दण्ड दिया, यह उसके लिए भीषण

अपराध ही कहा जा सकता है। किन्तु इसका उसे कौन दण्ड दे, रमेश भी जज बन कर दण्ड दे सकता है; इस रूप में कि मुझे माफ कर दे। यही दण्ड मेरे लिए असह्य है, मैं मर जाऊँगा। मगर इस मरने में संतोष होगा, सुख होगा।

अतीत का चिर स्वप्न पुनः जागरित हो गया। लीला बहुत दूर, बहुत पीछे फेंक दी गई। रमेश के स्मृति-बल ने बाजी मार ली, और उसे अशोक से दूर, कहीं और फेंक दिया। किन्तु इसका फल यह हुआ कि अशोक के सर पर फिर चिन्ताओं का बोझ लद गया, जिसके भार से दब कर, मर जाना कोई बड़ी बात नहीं। उसकी इच्छा हुई, चाहे/जैसे भी हो, रमेश आकर मुझे क्षमा कर दे। छोटा भाई है तो क्या, बड़े भाई के भयङ्कर अपराध को क्षमा कर देने का उसे भी अधिकार है। अनधिकार प्रयत्न करने को थोड़े ही मैं कहता हूँ। यदि कहीं नहीं क्षमा करे तो! करेगा कैसे नहीं; अपने तो आखिर अपने ही हैं, एक दूसरे की भावना न लखें, यह कभी सम्भव नहीं। किन्तु शायद नहीं करे तो, हो सकता है, फिर मैं अनर्थ कर बैठूँ। नहीं, इससे अच्छा है, ऐसे ही जहाँ कहीं भटकता फिरूँ।

अति चिन्ता के कारण अशोक अशान्त हो उठा। यों शान्त ही कब था कि अशान्त हो उठा, किन्तु बीच की लीलावाली परिस्थिति ने रमेश से खींच कर, दूसरी ओर उसे बहाया, अतः थोड़ा शान्त कहा जा सकता था। परन्तु पुनः आज घोर संघर्ष से छटपटाने लगा। चाहने लगा, कहीं जाकर एकान्त की शरण लूँ, और घण्टों वहीं पड़ा-पड़ा उसके विषय में कुछ सोचूं, विचारूँ। जीवन का प्रत्येक क्षण, उसका खरीदा हुआ है। मैं बिका बैल हूँ, खरीदनेवाले ने सस्ते मूल्य में खरीदा है, और अब महँगे मूल्य में भी बेंचने को वह राजी नहीं है। उसका राजी होना भी असम्भव ही है। इसलिए नहीं कि मुझसे उसको कोई महान् लाभ है, बल्कि इसलिए कि ......क्या इसलिए .....क्यों इसलिए......। यह तो खरीदनेवाला ही जाने।

अव्यक्त प्रश्नों का आप ही उत्तर देनेवाला अशोक उद्विग्न हो उठा। रमेश की गुप्त भावनाओं का भी जैसे वह अर्थ नहीं जानता है, किन्तु पीछे

सचमुच उससे अनभिज्ञ होने के कारण उसे बड़ा पश्चात्ताप होता है, दुःख होता है। ऐसे समय में दूर, एकान्त में, जाकर प्रश्न-उत्तर कर शान्त होना चाहता है। इसी ख्याल से उसने हीरा को बुला कर पूछा, लीला देवी कहाँ हैं, जरा उन्हें बुलाना तो ?

हीरा अकचकाया-सा देखता रहा, फिर जाने क्या सोच, अजीब उदासी लिए, उसके रूम की ओर मुड़ पड़ा। जाकर उसने देखा, हल्की चादर ओढ़े, हाथ में कोई पुस्तक लिए, वह कुछ सोचने में व्यस्त है। उसने समझ लिया, न चाहती हुई भी, पढ़ने का बहाना कर कुछ सोचती है, और सोचती ही जा रही है। इस समय उसे छेड़ना ठीक नहीं, फिर बाबू ! हाँ, हाँ, उनका अपमान जो होगा। उसने कहा, तुम्हें बाबू बुला रहे हैं। सुनती नहीं; बाबू बुला रहे हैं।

'ऐं, ओह, क्या कहा हीरा !'

'बाबू, बुला रहे हैं।'

'मुझे !'

'हाँ, हाँ, तुम्हें ही।'

'क्यों, क्या बात ?'

'कह नहीं सकता, सहसा जैसे कुछ याद कर उन्होंने कहा, लीला को जाकर बुला।

अशोक सहसा लीला को कभी नहीं पुकारता था। अतः उसके हृदय में एक साथ कई प्रश्न उठ रहे थे। आज यों क्यों अशोक बाबू ने उसे बुलाया, उसकी समझ में नहीं आ रहा था। कहीं ऊब कर यहाँ से जाने को तो नहीं सोच रहे हैं। पर वे जायँगे ही तो लीला इसमें क्या करेगी, रोक रखने का उसे अधिकार तो है नहीं। और यह निश्चय है कि अनधिकार चेष्टा करेगी ही नहीं। मगर जाते-जाते लीला को क्या देकर जायँगे, आँसू, वेदना, करुणा। इसके सिवा उनके पास कुछ है भी तो नहीं। और स्वयं यहाँ से वे लेकर क्या जायँगे, शायद कछ नहीं। लीला की स्मृति, नहीं, नहीं, क्यों, आखिर किन-किन स्मृतियों को अपने में स्थान दे। यहाँ की स्मृति से भी तो वे व्याकुल ही

रहेंगे। बल्कि लीला की स्मृति उनकी चिन्ता को बढ़ायेगी ही। तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि लीला अशोक बाबू को और अशान्त करेगी। मगर लीला ऐसा नहीं करेगी।

लीला ने पास आकर पूछा, आपने बुलाया!

'हाँ, कोई अनुचित तो न हुआ!'

'नहीं तो।'

'मैं यह पूछूँ किसी कार्य में बाधा तो नहीं पहुँची।'

'नहीं अशोक बाबू, आप कुछ कहें भी।'

'इच्छा हुई, कहीं दूर चलें।'

'भोजन प्रस्तुत है, पहले खा लें।'

'नहीं, पहले चलें।'

'नहीं, पहले खा लें।' इस पर जाने कैसे दोनों हँस पड़े। अशोक को भी बड़ा आश्चर्य हो रहा था, आज की इस खुल कर हँसी पर। लीला का बिना विरोध किये चुपचाप उसने भोजन किया। लीला यह नहीं समझ रही थी कि अशोक बाबू अपने साथ कैसे आज जाने को कह रहे हैं। उसने समझा, और दिन की जैसी ही उनकी इच्छा हुई, कहीं जाने की, जायँगे।

... उसे तनिक भी विश्वास न था कि अशोक बाबू भी कभी अपने साथ जाने को कहेंगे। हीरा को साथ कर देने के अभिप्राय से उसने पूछा, अकेले ही कि......।

इतना ही कह पाई थी कि अशोक ने कहा, नहीं भाई, आप भी आज साथ ही चलें।

'मैं भी!' लीला के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उमंग का नृत्य उसकी आँखों के आगे होने लगा। हर्ष के आवेग में उसने पूछा, पैदल या कार से!

'कार से, आज हम बहुत दूर चलेंगे। शायद रात में देर से लौटें। कोई हानि तो नहीं!'

'नहीं, नहीं, कोई नहीं,' लीला ने सोफर से कार निकालने को कहा। स्वयं

ड्रेसिङ्ग रूम में कपड़े बदलने चली गई। हीरा देख रहा था, उसकी लीला आज बहुत ख़ुश है। उसके आँसुओं को शायद अशोक पी गया। वह इस पर सोचता हुआ यहाँ पहुँचा कि अशोक बाबू कहीं यों ही लीला को छोड़ कर चले गये तो, कितना अनर्थ होगा। बेचारी कहीं की नहीं रहेगी। इसका प्रयत्न भी तो कोई नजर नहीं आता। सिवा इसके कि वह अशोक से आग्रह करे लीला को छोड़ कर वह कहीं नहीं जाय। किन्तु कैसे यह सम्भव हो सकता है। परिवार के लिए नितान्त अपरिचित अशोक लीला के जीवन को सँभालने का कैसे वचन दे सकता है। लेकिन इससे क्या, वह बहुत कुछ कर सकता है। हीरा इसके लिए सब कुछ कर देगा। यह कैसे होगा कि अशोक के चले जाने के बाद, लीला के नित्य नहीं रुकनेवाले आँसू को वह बर्दाश्त करेगा। लीला के आँसू, आँसू नहीं, छिपे हुए अँगारे हैं। कोई प्रच्छन्न पीड़ा की जल-धारा हैं। हीरा की सहनशक्ति अब थोड़े ही है। शक्ति का आधा हिस्सा तो उसके बेटे ही ने छीन लिया, अवशेष आधे हिस्से को लीला भी छीन लेगी तो उसके पास बचेगा क्या। उसका जीना भी दूभर हो जायगा।

कार लेकर लीला चल पड़ी। आगेवाली सीट पर ही लीला के पार्श्व में अशोक बैठा था। उसने कहा, बड़ा सुहावना प्रतीत हो रहा है। चलती कार की हवा भी बड़ी अच्छी लग रही है।

'ऐसा ?'

'सच !'

'हाँ !'

कार बहुत दूर चली गई थी। बड़ा रम्य एकान्त प्रदेश था। कार हवा से बातें करती हुई भागी जा रही थी। लीला एक अपूर्व आनन्द अनुभव करती हुई बड़ी तेजी से कार हाँक रही थी। और चाहती थी इससे भी अधिक तेज हाँकूँ। अशोक ने कहा भी, इतना तेज न हाँको। किन्तु यह कह कर और तेज हाँकने लगी कि मैं इससे भी अधिक तेज हाँकना चाहती हूँ। मैं तेज हाँकती ही कहाँ हूँ। मेरा ख्याल है इससे भी अधिक तेज तो आपके विचार दौड़ते होंगे।

'यह आप कैसे जानती हैं ?'

'मैं जानती हूँ, समझती भी हूँ ।'

'बड़ा आश्चर्य !'

'मैं एक बात कहूँ !'

'हाँ, हाँ, अवश्य ।'

'आप की आकृति प्रसुप्त प्रकृति की उदासीनता को क्यों ढोती है ?'

'यह मैं कैसे बताऊँ !'

'अस्तु, आप को मैं कैसे भी प्रसन्न रख सकती हूँ । चाहती हूँ, आप को चाहे जैसे भी हो, खूब नहीं तो थोड़ा भी अवश्य प्रसन्न रक्खूँ ।'

'आखिर क्यों ?'

'मेरी इच्छा ।'

'मैं तो सदा प्रसन्न रहता हूँ ।'

'बिल्कुल झूठ ।'

'अशोक घबड़ाने को हुआ तो वह समझ गई अब ये उतावले हो उठेंगे । आमोद की जगह फिर इनके सर पर वेदना मँड़राने लगेगी । अतः और कुछ न कह कर वातावरण बदल देना चाहिए । इसी उद्देश्य से उसने कहा, इधर-उधर की जगह सुहावनी है या नहीं ?'

अशोक का जैसे ध्यान टूटा । उसने आँखें फैलाईं, देखा, चारो ओर पार्वतीय प्रदेश हैं । चिकनी सड़क पर मानो कार चल ही नहीं रही थी । पीच्ड् रोड की वजह कार के टायर की अजीब आवाज हो रही थी । सीधी सड़क के दोनों किनारे चँवर से थे । ऐसी सड़क पर कार चल रही थी जिस पर शायद ही कभी एक आध कार आ-जा पाती हो । आकाश पर शायद दो-एक चील के और कोई पक्षी नहीं दीख रहे थे । शान्ति प्राकृति के ऐसे वातावरण में कदाचित् पहली बार अशोक आया था । लीला भी कभी ही ऐसी जगह आई हो । अशोक पा रहा था जैसे वह बड़ा प्रसन्न है । आँखें पीछे गुजरती हुई वस्तुओं को देखना चाहती हुई भी आगे की ही ओर देख रही थीं । उनके जानते इससे भी अधिक सौंदर्य लिए कोई वस्तु आ रही हो ।

अब दो-एक भवन उसकी आँखें देख रही थीं। उनके पार्श्व में छोटे न अधिक बड़े पहाड़ थे। उसमें से एक पर दो-तीन मजदूर काम कर रहे थे। कमर में रस्सा बाँध कर बहुत ऊँचे शिखर पर चढ़ कर वे पर्वत के कुछ हिस्से को काट रहे थे। अशोक की आँखें उनकी ओर देखना चाहती थी, देर तक। उसने कहा कार रोकें।

लीला ने वैसा ही किया। अशोक उतर पड़ा, लीला भी। उसने समझा नहीं कि क्यों उसने कार रोकने को कहा। उसने पूछा, आगे नहीं चलेंगे?

"चलेंगे, यहाँ तो अचानक उन मजदूरों को देख कर यह इच्छा हुई, उनके कामों को देखता रहूँ। बतायें आप, ये कहीं गिर पड़ें तो इनकी एक भी हड्डी शेष रहेगी! शायद नहीं। भूख की शान्ति के लिए बारह आने या एक रुपये पर अपनी जिन्दगी की बाजी लगा कर जुआ खेल रहे हैं। जरा सोचें भी, अगर रस्सा छुट जाय तो उनका क्या होगा। किन्तु उन बेचारों को क्या होने की फिक्र ही नहीं, साँझ के पैसों की फिक्र है। कहीं काम कम हुआ, तो शायद मजदूरी भी न मिलेगी। फिर घर के भूखे बाल-बच्चों का क्या होगा। स्त्री के हाथ पसारने पर वह क्या उत्तर देगा। चुप रह कर सो सकना उसके लिए कठिन ही है। लगी नींद भी बच्चों की भूख की कराह से उचट जायगी। उसके बाद उस कराह को सहना असम्भव ही है। इसी कराह को याद कर तो वे खटकते हैं और खटकते ही रहेंगे।"

लीला बड़े ध्यान से अशोक की इन बातों को सोचती हुई उन मजदूरों को देख रही थी। उन्हें इस प्रकार देखने का शायद बहुत कम अवसर आया है। कभी उनकी ओर से दृष्टि हटा कर, अशोक की ओर भी दृष्टि दौड़ाती है। वह सोचने लगती, इन बेचारे उपेक्षित मजदूरों के प्रति अशोक बाबू की कितनी बड़ी सुहानुभूति है।

इसी बीच लीला ने देखा, सात-आठ साल की एक सुन्दर बच्ची एक बन्दर पर ढेला फेंक रही थी। उसके साथ ही एक छोटा, करीब पाँच-छः साल का बच्चा भी हँसता हुआ, ढेला फेंकने का व्यर्थ प्रयास कर रहा था। दोनों

की भोली आकृति उसे बड़ी अच्छी लग रही थी। उसने कहा, उधर उन बच्चों को भी देखें, बड़े अच्छे लग रहे हैं। चञ्चलता को लिए हुए हँसी कितनी भली लग रही है। बच्चे का कूद-कूद कर ढेला फेंकना, और फेंक कर हँसना, साथ ही बन्दर का यह समझ कर, घुड़की लगाना कि ये बच्चे हैं, डर जायँगे। ये बच्चे हैं, जरा मैं इन्हें खेला दूँ, कैसा लग रहा है!

अशोक ने आँखें उनकी ओर कीं! सचमुच उसे भी ये बच्चे बड़े भले लग रहे थे। उसने निकट जा कर उनसे पूछा, तुम्हारा नाम क्या है, बच्चे!

बच्ची अपनी ढेलावाली क्रिया पर शरमा-सी गई। बच्चा स्तब्ध हो गया। दोनों के हाथ से ढेले छूट गये। बन्दर ऊपर की शाखा पर चढ़ गया। बच्ची ने कहा, मेरा नाम 'पूनो' है।

"और बच्चे का!" उसने कहा, मेरा नाम 'मुन्नू है।'

लीला और अशोक दोनों को पकड़ना चाह रहे थे कि वे भाग खड़े हुए। निकट के बड़े भवन पर पहुँच कर बच्ची ने हाथ के संकेत से उन्हें चिढ़ाया। बच्चे ने भी बड़ी का अनुकरण किया। अशोक और लीला हँस पड़े। अशोक ने कहाँ इनका भी एक अजीब जीवन है। न कोई चिन्ता है, न क्लेश। इनके हर्ष-आमोद को दुनिया आबाद रहे। कितना अच्छा होता, ये हमेशा ऐसे ही रहते। किन्तु अवस्था के अनुसार इनके परिवर्त्तन को कौन रोक सकता है। जाने भी दो, रुक पड़ना भी थोड़े ही जीवन है! सृष्टि के विधान में गति को जीवन मानना, बड़ा अच्छा है। और गति को जीवन मानने का मतलब हुआ परिवर्त्तन को निमंत्रण देना। है न, लीला देवी! गति में परिवर्त्तन होना आवश्यक है।

लीला को बचपन की मधुर स्मृति याद आ गई। एक दिन उसकी भी दुनिया ऐसी ही थी, इन्हीं बच्चों के जैसा हर्ष-आमोद उसका घर था। मगर अब। अस्तु, तब और अब में महान अन्तर हो गया, होना ही चाहिए। उसने उसे भुलाते हुए एक उसाँस भरे शब्दों में कहा, अच्छा, आगे भी चलें।

"हाँ, हाँ, आगे ही चलें; जहाँ दो-एक भवन भी न हों, और इससे भी अधिक रम्य प्रान्त मिले।"

कार फिर चल पड़ी। और चल पड़ी उसी तीव्र स्पीड से। दूर निकलने पर, अशोक को अपनी इच्छानुसार जगह मिली। उसने कहा, गई सीधी बीच वाली सड़क को छोड़ कर, दूसरी सड़क पर कार ले चलें। उन पर्वतों के बीच हम चलेंगे। एक और कार खड़ी रहेगी। वहाँ हृदय-कमल विकसित होगा। प्रत्यक्ष के आनन्द में शायद हम विभोर, हो सकें।

लीला ने वैसा ही किया। पर्वत के ठीक सामने उसने कार खड़ी कर दी। अशोक ने कहा अब हम बैठें कहाँ, कैसे! यह सोच कर हम चले तो थे नहीं। ऐसा रम्य प्रान्त भी मिलेगा जहाँ हम बैठे बिना नहीं रहेंगे।

"शायद कार में कालीन हो, मैं देखती हूँ।" कई जगह दो-चार लड़के, लड़कियों के साथ अपने कार में जाती है। कभी-कभी पार्टी भी हो जाती है। अतः एक चादर एवं छोटी कालीन कार-सीट के नीचे रक्खा करती है। उसे ख्याल आया, यदि हीरा ने उन्हें न निकाला होगा तो निश्चय ही दोनों मिल जायँगी, मिलीं भी। उन्हें लाकर उसने बिछाया। दोनों बैठ गये। बैठते ही अशोक ने कहा, मेरे जीवन में आनन्द है ही नहीं। प्रसन्नता तो शायद वर्षों से भग गई है, दूर, हाँ, बहुत दूर। अब सच पूछें तो मैं प्रसन्न रहना चाहता भी नहीं।

'पर मैं चाहती हूँ, आप को सदैव प्रसन्न रक्खूँ।'

'यह कैसे!'

'चाहे जैसे भी हो मैं जानती हूँ अशोक बाबू, आप कभी भी मेरे पास नहीं टिकेंगे और इसीलिए चाहती हूँ, जब तक आप मेरे पास हैं सदा प्रसन्न रहें। मैं जानती नहीं, क्यों चाहती हूँ, आप को प्रसन्न रक्खूँ। किन्तु आप इसमें ननु-नच न करें। मुझे यह अधिकार दें कि मैं आप को सब प्रकार से प्रसन्न रक्खूँ।

'आखिर आप कैसे प्रसन्न रक्खेंगी?'

'मेरे पास इसके कई साधन हैं।'

'सच! अच्छा, मैं इस समय चाहता हूँ, सारी चिन्ताएँ भाग जायँ और मैं प्रसन्न रहूँ।'

'अच्छा, आप नृत्य पसन्द करते हैं ?'

'हाँ, हाँ, क्यों नहीं, मगर सच पूछें तो जीवन, में दो-एक बार छोड़ कर नृत्य देखने का कभी अवसर ही नहीं मिला। बहुत नहीं प्रायः दो वर्ष पहले हम शान्ति निकेतन गये थे।'

'हम का क्या अर्थ, क्यों, क्या और कोई..................।' बीच ही में लीला ने टोका।

'हाँ, आनन्द और रमेश भी।' लीला ने देखा, फिर उदासी छाने लगी है। उसने कहा, हाँ, तब क्या हुआ ?

'वहाँ दो शिक्षित बालाओं का नृत्य देखा। एक बंगीय मित्र नृत्य का आशय समझाते जाते थे।'

'अच्छा लग रहा था।'

'हाँ, हम चाहते थे, हमेशा देखते ही रहें। यह भी एक गजब की कला है।'

'मैं यहाँ नृत्य करूँ तो आप को अच्छा लगेगा ?'

'तो क्या आप नृत्य जानती हैं !'

'थोड़ा बहुत।' चलते समय लीला ने घुँघरू भी ले लिए थे। उसकी इच्छा थी, मैं अशोक बाबू को अपने नृत्य में भुला दूँ। कम से कम एक क्षण भी सब कुछ भूल कर वे प्रसन्न तो रहेंगे। कैसी स्मृति भी क्यों न होगी, मेरे नृत्य में विलीन हो जायगी। बात भी ठीक थी। उसने नृत्य में कई स्वर्ण-पदक भी पाये थे। उसकी नृत्य-कला की बड़ों ने भी प्रशंसा की थी। उदयशंकर भट्ट ने भी एक बार कहा था, ऐसी कला, दो-चार को छोड़ कर, और किसी में नहीं। किन्तु यह जानने के लिए अशोक को अवकाश कहाँ था। रमेश की स्मृति से उसे थोड़ी ही फुर्सत थी कि वह यह जाने, लीला नृत्य कला-प्रवीणा है। उसे इस पर बड़ा हर्ष हो रहा था कि, लीला में कई कलाएँ भी निहित हैं। उसने कहा, इसे आप ने छिपा क्यों रक्खा था !

'कब आप ने जानने की चेष्टा ही की !'

'ओह, तो मेरी ही गलती थी।'

'हाँ, अवश्य।' इस पर वह मुस्कुरा पड़ी। आज उसे बड़ी प्रसन्नता हो

रही थी। उमंग के आवेश में घुँघरू पहनती हुई सोच रही थी, ऐसा नाच नाचूँ कि कभी उसकी समाप्ति ही न हो। अशोक देखें तो देखते ही रह जायँ, कभी अघायें नहीं, ऊबे नहीं।'

घुँघरू बाँध उसने नृत्य करना आरम्भ किया। अशोक बिछावन से हट कर एक ओर नीचे बैठ गया। वह उसके नृत्य को देख कर चाहता था, कभी पलकें गिरे ही नहीं। नृत्य देखने में वह किसी प्रकार की बाधा नहीं चाह रहा था। और उधर लीला मस्त हो नाच रही थी। उमंग के इस नृत्य का बहुतों के आगे बड़ा महत्त्व होता। वह चाह भी रही थी, ऐसा नृत्य करूँ, जो पीछे के भी नृत्यों से बढ़ कर हो। और आगे भी ऐसा नृत्य न कर पाऊँ। जीवन का यह नृत्य श्रेष्ठ और अन्तिम हो।

उसका थिरकना-नाचना अशोक को बड़ा अच्छा लग रहा था। सच, कुछ देर के लिए वह दुनिया के तमाम धंधों, झंझटों को एक दम भूल गया। उसकी आँखें बाजते घुँघरू पर टिकी थीं। उसके मुख से अनायास ही निकल पड़ा :—

'बाज रे घुँघरू बाज,
तुम बाजो, बाज उठे संसार,
थिरक-थिरक, ठुमुक ठुमुक,
नाच रे, बाज रे, घुँघरू बाज।'

घण्टों लीला नाचती रही। स्वेद-कण, उसके गालों पर लुढ़क रहे थे, ललाट भींग चुका था। हाँफना भी आरम्भ था। फिर भी नाचना चाहती, नाचती ही रहना चाहती थी। जाने आज अशोक भी कैसा हो गया था कि वह यह चाहने को कभी प्रस्तुत न था, लीला अपना नृत्य बन्द करे। पसीने पर उसका तनिक ध्यान न था। लीला ने अपने इतने बड़े लम्बे जीवन में इतना परिश्रम कभी न किया था। अन्त में बहुत प्रयास करने पर भी उसे लग रहा था, अब नृत्य बन्द हो जायगा; पैर और हाथ दोनों साथ ही रुक पड़ेंगे। फिर भी वह नाचती रही। आगे भी नाचने का प्रयास कर रही थी कि अशोक ने सहसा देखा, लीला पसीने-पसीने हो गई। उसे लगा, यदि मैं न रोकूँगा, तो निश्चय

ही वह गिर पड़ेगी। सम्भव है, गिरने पर चोट भी लगे। मगर प्रश्न है; वह रोके कैसे। चन्द्रमा के मौन, निस्तब्ध प्रकाश में लीला का नृत्य अमृत-वर्षा का काम कर रहा था। कभी अशोक ऐसे समय में चाहता, हाँ, हाँ, लीला थकती क्यों है! वह थके नहीं। वह नाचे, और खूब नाचे। कभी स्वयं गर्दन हिलाता कि थकें नहीं, नाचें, रुकें नहीं, नाचें।

उसी क्षण उसकी आँखों ने देखा, लीला की आकृति रो-सी रही है। पसीने में भींग कर भी वह नृत्य कर रही है। और इसलिए कर रही है कि अशोक बाबू प्रसन्न रहें। और एक मैं हूँ कि उसकी थकान तक नहीं मिटा पा रहा हूँ। उसे लगा, मेरे रोके बिना वह रुकेगी नहीं। आगे बढ़ कर उसने उसे दोनों हाथों से रोक लिया। लीला की आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। सारी चीजें नाचने लगीं। आँखें झँप गईं। खड़ा होना, उसके लिए कठिन था, लुढ़कने लगी। अशोक ने धीरे से उसे सुला दिया। इस समय उसे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था कि क्यों मैं इतनी देर तक लीला को नाचने देता रहा। कहीं कुछ हो गया तो! नहीं, कुछ नहीं होगा; कहीं हो गया तो..:.. ...! मैं कितना बड़ा स्वार्थी था कि अपने सुख, अपने आनन्द के लिए भोली एक बाला की जान की भी परवाह नहीं की। जाने क्या, लीला समझेगी!

लीला को नींद आ गई। अशोक ने सोचा, सो जाने से शायद लीला की थकावट मिट जायगी। अतः वह उसे सोती छोड़, वहीं एक ओर बैठा-बैठा, कुछ तारों को, कभी लीला के मुँह को देखने लगा। कभी वैसा देखने लगता मानो अभी लीला का नृत्य हो ही रहा हो। थोड़ा भी उसने अनुभव नहीं किया कि लीला का नृत्य बन्द है। किन्तु जब अचानक उसका ध्यान लीला की ओर जाता तो उसे खयाल आता, ओह नृत्य तो बन्द है। प्रकाश में उसका सौन्दर्य बिखर रहा था। उसकी छलनारहित भोली आकृति की ओर देखता हुआ अशोक सोचने लगा, मुझे प्रसन्न मात्र रखने के लिए बेचारी लीला क्या नहीं करती! अपनी जान गँवा कर भी चाहती है, मैं सदा प्रसन्न रक्खूँ। और एक अशोक जो है, मानो उसके आगे इस जान गँवाने का कोई मूल्य ही नहीं है। आखिर क्यों न हो, एक हत्यारे से अधिक तो मेरा महत्त्व

है नहीं। ऐसा नहीं रहता तो, रमेश जैसे निरपराध व्यक्ति की जान का कैसे भूखा रहता। अमरावती यदि लीला ही जैसी होगी तो उसका सम्पर्क मुझे क्यों बुरा लगा। बहुत सम्भव है, वह भी चाहती हो, रमेश को इसी प्रकार प्रसन्न रखना। यदि इस समय मेरी भी जान, उसी प्रकार लेने को कोई उतारू हो जाय तो, मुझे कैसा लगेगा। अपने अनुभव पर, सोच कर चलना, मानव सीख जाय तो, मेरे जानते कदापि असम्भव घटना न घटे।

बहुत देर बाद लीला की नींद टूटी। उठने पर उसे बड़ा अफसोस हो रहा था कि मैं शायद अशोक को प्रसन्न न कर सकी। जब उसकी गम्भीर मुद्रा की ओर दृष्टि गई, तब उसने देखा, पूर्ववत् ही अशोक बाबू, कई प्रश्नों को एक ही साथ हल करने में लगे हैं। उसने पूछा, नृत्य शायद आप को अच्छा नहीं लगा!

'ओह! आप उठ गईं; ऐसा आपने क्यों कहा?'

'जीवन में ऐसा नृत्य मैंने कभी नहीं देखा था। आगे भी जब तक मेरा जीवन रहेगा, इस नृत्य को कभी न भूलूँगा।'

'ऐसा!'

'हाँ, अच्छा, अब चलें; बड़ी रात हो आई।'

'हाँ, हाँ, जाने घर वाले क्या कहते होंगे।'

'इसकी आप फिकर न करें, परिवार का मेरे ऊपर दृढ़ विश्वास है।' यह कह उसने नीचे की सारी चीजें कार में रक्खीं और कार स्टार्ट कर चल पड़ी। दूर जाने पर उसने अनुभव किया, कार की हवा, कभी-कभी हड्डियों तक भी पहुँच जाती है। रोम भी सिहर उठते हैं। वह तेजी से कार हाँकती बढ़ी जा रही थी कि अशोक ने कहा, कुछ ठंड लग रही है। इतनी तेज न हाँकें।

'तब तो हम सुबह ही पहुँचेंगे।'

'ओह! तो इससे भी तेज हाँकें।'

घर पहुँचने पर लीला ने देखा, तीन बजने में कुछ ही मिनट शेष हैं। हीरा की लगी नींद दोनों की आवाज से उचट गई। उसे लगा, अशोक ही के

जैसा लीला भी बेसुध होती चली जा रही है। किन्तु उसने कुछ कहा नहीं। अशोक के पास आकर उसने कहा, बाबू, कहाँ बेखबर पड़े रह जाते हैं कि खाने-पीने की भी सुध नहीं रखते।

'हाँ हीरा, देर हो गई। हम बहुत दूर छोटे-छोटे पर्वतो के पीछे हो, बड़े रम्य प्रान्त की ओर चले गये थे। तुम्हारी लीला ने अपना नृत्य भी दिखाया। इस कला में वे खूब दक्ष है। तुम भी कैसे थे कि इसको कभी खोलते भी न थे।'

"लीला दुनिया की तमाम अच्छी चीजें जानती है।'

हीरा को अपनी लीला पर गर्व हो आया। किन्तु उसी क्षण जब उसकी आँखों के आगे, कल की उदास आकृति नाचने लगी, तब अचानक उसका चेहरा सुर्ख हो गया। अशोक ने हीरा की इस परिवर्तित आकृति को देख कर कहा, सहसा म्लान मुख क्यों हो गये।

'सोच रहा हूँ, आप के जाने के बाद उसका क्या होगा।'

'क्यों ?'

'यह तो आप ही जानें, किन्तु इतना बाँध लें कि उसके आँसू कभी थमेंगे ही नहीं।'

'आखिर मेरी वजह यह सब क्यों होगा ?'

'आप में उसने क्या देखा है कि हमेशा रोती-सी लगती है। आप यहाँ से न जायँगे बाबू ?'

'यह कैसे होगा।'

'जैसे भी हो।'

'यह सब कुछ नहीं होने का हीरा, तुम जाओ सो रहो। मैं कुछ सोचूँगा।'

हीरा अजीब उदासी लिए एक ओर चला गया। अब अशोक माथे पर हाथ रख विचारों में झूलने लगा। उसकी वजह लीला रोये, उदास हो यह ठीक नहीं। लीला व्यर्थ के आँसू में क्यों नहायेगी। उसके हृदय में कैसी भावना उठती रहती है कि मेरी ओर से वह क्लिष्ट होगी। अमरावती की भावना तो उसके हृदय में नहीं घर कर रही है। हाँ, तो महा अनर्थ हो जायगा। मै उसके आगे प्रकट हो जाऊँगा। मेरी दुर्बलता आ खड़ी होगी

मेरे रमेश की कहानी से परिचित हो जायगी। जीवन के पूर्वार्द्ध की घटना में जितना बल था, सब का ह्रास हो जायगा। फिर मैं उसकी आँखों से गिर जाऊँगा। रमेश, आनन्द एक साथ कह उठेंगे, अशोक एक बड़ा भारी ढोंगी है। अपनी कमजोरी पर उसको विश्वास न था तो रमेश की जान लेने पर क्यों उतारू हो गया। अपने साही उसने रमेश को क्यों नहीं समझा। नहीं, नहीं, रमेश, विश्वास मानो, तुम्हारा अशोक कभी भी अपने पद से नहीं डिगेगा। लीला के व्यवहार में अपने आप को, अपने रमेश को, नहीं भूलूँगा। मेरा जीवन तुम्हारा ही जीवन है। अनुभवहीनता की वजह तुम्हारे साथ मैंने अन्याय किया। मुझे क्षमा करो, रमेश! चूँकि मैं यह अच्छी तरह समझ गया हूँ, प्रत्येक मनुष्य में कुछ न कुछ कमजोरियाँ रह ही जाती हैं। किन्तु झूठ के विश्वास के बल पर अपनी कमजोरियों को वह नहीं रख पाता, यह भी उसकी सब से बड़ी कमजोरी है। मैं यह कैसे कहूँ कि लीला की आँखों में मेरी वजह आँसू नहीं हैं, और उसकी वजह मेरी आँखों में भी आँसू नहीं उमड़ेंगे। इन आँसुओं का यह मतलब नहीं कि मैं नितान्त दुर्बल हूँ। हाँ, रमेश, मैं एक बार नहीं सौ बार कहूँगा, मेरे जैसा दुर्बल कोई नहीं है। हाँ, कोई नहीं है।

वह रो पड़ा। पहले से भी अधिक भयंकर तूफान उसके हृदय में उठने लगा। लीला और रमेश की इस लड़ाई से वह पागल हो उठा। विशेष कर रमेश की क्रिया उसकी गर्दन दबोचने लगी। विश्वासघात, एक बड़ा भारी पाप है। व्यर्थ में किसी की जान लेना, अनर्थ है। ये सभी भाव अशोक को हैरान करने लगे। इस समय वह चाहने लगा, यहीं कहीं सागर में जा कर विलीन हो जाऊँ। एक साथ इतना बड़ा मैंने अनाचार किया है, जिसका एक मात्र प्रायश्चित्त है, प्राण गँवाना। और मेरे लिए यह प्रायश्चित्त सर्वथा उचित भी है। बल्कि इससे भी भयकर प्रायश्चित्त मुझे करना चाहिए। रमेश को विनष्ट करने का मेरा क्या अधिकार था। उससे आगे चल कर विश्व का कल्याण होता। राष्ट्र की कई समस्यायें, सहज ही में उसका मस्तिष्क सुलझा सकता था। इसकी उसमें पूर्ण शक्ति थी। इसके लिए वह अपने आप की भी आहुति

दे देता। वैसे रमेश के प्राण लेने वाले अशोक के लिए विश्व में बड़ा से बड़ा प्रायश्चित्त भी छोटा ही कहा जा सकता है।

उठता-बैठता, टहलता, माथा पीटता अशोक विह्वल हो उठा। इसी अवस्था में लीला का आना हुआ। किन्तु अशोक इस प्रकार उलझा रहा मानो उसके सामने कोई है ही नहीं। और बेचारी लीला अशोक की इस अवस्था पर रोने-रोने को हो आई। सहमती हुई यह पूछना चाहती कि सहसा, पुनः यह परिवर्त्तन क्यों? किन्तु उसकी बेचैनी देख उसका मुँह खुल कर भी बन्द हो जाता। बहुत देर तक रुकी रही। अन्त में उसने हीरा ही से कुछ कहना अच्छा समझा। बाहर आने पर उसे आश्चर्य हुआ, यह देख कर कि आज हीरा भी बेचैन-सा लग रहा है, पास की घास नोचता हुआ वह जाने क्या-क्या बुदबुदा रहा है। लीला ने उसका ध्यान भङ्ग करते हुए कहा, आज इतनी धूप चढ़ आने पर भी तुमने बाबू से जल-पान करने को नहीं कहा। मैं सोती रह गई, तो क्या तुम भी सोते रहे?

हीरा की सजल आँखें उसकी ओर मुड़ीं। लीला को लगा, वे कह रही हों, मुझे इतनी फुरसत कहाँ कि सो सकूँ। फिर तुम जो, सोने दो! उसने उन्हें देख कर घबड़ाने के स्वर में कहा, आज सब जगह परिवर्त्तन क्यों दीख रहा है हीरा?

'कैसा परिवर्त्तन?'

'उधर बाबू बेकल हो, उठ-बैठ रहे हैं; और इधर तुम......।'

'शायद उन्हें नींद नहीं आई।'

'मालूम तो ऐसा ही होता है, तुम उनसे कहो, वे जल-पान कर लें।'

हीरा झुँझलाया हुआ यह कहते उठा कि जाने यह बाबू कहाँ से आ गये कि मेरी लीला को भी ले मरे। अब भी अशोक पूर्व की ही अवस्था में नाच रहा था। एक बार हीरा भी उसकी अवस्था से डर गया। किन्तु सँभल कर उसने कहा, बाबू, जलपान कर लें।

अशोक इस समय कुछ नहीं सुनना चाहता था। उठी आँधी में सब जैसे बह कर ही रहेंगे। हीरा के वाक्य, उसके कान तक नहीं पहुँचे। फिर कुछ

उच्च-स्वर में उसने कहा, बाबू , जलपान .... ।

अशोक की अङ्गारमयी आँखें हीरा की ओर मुड़ी, मानो वे हीरा जैसे कितनों को जला डालेंगी । उन्हें देख कर भी हीरा भाग जाना चाहता था कि उसके मुँह से निकला, ज......ज......ल......।

'भाग यहाँ से, चला जा; अन्यथा मैं कुछ कर बैठूँगा । मानव मात्र से मैं दूर रहना चाहता हूँ ।' हीरा मुड़ पड़ा । लीला एक ओर से यह सब देख रही थी । आज तक उसने कभी अशोक को ऐसा नहीं देखा था । उसके जोर की इस डाँट से एक बार सारी रोमराशि थर्रा उठी । लीला भी काँप गई थी । उसने हीरा के निकट जाकर कहा, आज बाबू को हो क्या गया है ?

'क्या जानें लीला, मैंने इतना बेचैन उन्हें कभी नहीं देखा था । स्वभाव भी बड़ा कोमल दीखता है । मगर आज जैसे साक्षात् उन पर काली माई चढ़ आई हों । इनके भीतर बड़ी आग है जिसमें रात-दिन बाबू जलते रहते हैं । कौन जाने यह आग बाबू को जला कर ही छोड़े ।

'नहीं, नहीं, ऐसा न कहो हीरा, बाबू की इस आग को बुझा दो । वे कहीं भी रहें, इस आग की लपट से दूर, और शान्त रहें । उनकी डाँट को बुरा न मानना । मैं जानती हूँ, यह डाँट उनकी नहीं, दबी हुई किसी दूसरे की भावना का उच्छ्वास है । उसी की यह डाँट हो सकती है । वे तो शायद सच्चे अर्थ में डाँटना भी न जानते होंगे ।'

'यह तो मैं भी जानता हूँ, मगर .....।'

'मैं जाऊँ ?'

"इस समय नहीं, ठहर कर ।'

लीला कुछ सोचती हुई एक ओर चली गई । उसने भी सोचा, ठहर ही कर जाना अच्छा है । अशोक कभी त्रिनेत्र का रूप धारण कर सकता है, इस पर उसने कभी सोचा तक न था । अशोक को पीछे बड़ी ग्लानि होने लगी कि व्यर्थ में मैंने हीरा को क्यों डाँटा । बेचारा क्या सोचता होगा । अपने ऊपर झुँझलाने का यह मतलब नहीं कि मैं किसी पर बरसता रहूँ । कई आघातों को सहनेवाला हीरा आज मेरे आघात से बहुत दुःखित हुआ होगा । भगवन् ,

सैकड़ों अपराध मेरे द्वारा ही क्यों होते हैं ! अशोक को सोलह आने अपराधी ही रखोगे ! रमेश को मेरे जीवन में आने क्यों दिया ! वह आया भी तो लीला या हीरा की यहाँ क्या जरूरत थी !

दोपहर के बाद लीला ने सोचा, आज शायद अशोक बाबू खायँगे भी नहीं। जाकर यदि न कहूँ, तो उनका उपवास निश्चित है। चाहे जैसे भी हो, अब स्वयं मैं जाकर कहूँगी। आप पहले भोजन कर लें। इसी विचार से उसने अशोक के रूम में प्रवेश किया। जाकर देखा, टेबुल पर माथा नवाए, कुरसी पर वह बैठा है। सोचते-सोचते थक गया था, श्रान्त पथिक-सा विश्राम लेना चाहता था। खास कर हीरा के डाँटने पर उसे विश्राम की सख्त जरूरत हुई। हीरा मानो सारे विचारों की थकान बन कर आया था। उसके चले जाने पर उसने अनुभव किया, मुझसे उसे चोट लगी होगी, वह उसके लिए असह्य नहीं तो सह्य भी शायद ही हो। निरपराध व्यक्तियों को ही दण्ड देना मैंने सीखा है। एक पितृ-हृदय को ठोकर ही ठोकर सहनी पड़ी। लीला को वह मानता है। उसी की वजह मुझे भी प्यार करता है। उस प्यार का बदला मैंने अपनी डाँट से चुकाया। ऐसे अनर्थ करनेवाले अशोक को शायद ही कहीं जगह मिले।

इन्हीं विचारों में वह लीन था कि लीला ने कहा, भोजन करना, सोचने और विचारने से, अधिक महत्त्व रखता है। सारा संसार उसी पर अवलम्बित है। और आप उसे ही त्यागना चाहते हैं।

सहमती हुई लीला पता नहीं कैसे इतना बोल गई। अशोक ने गरदन उठाई और बिना कुछ कहे ही बाथ-रूम में गया। लीला अपनी सफलता पर बड़ी प्रसन्नता अनुभव कर रही थी। उसने हीरा से जाकर कहा, नहीं, नहीं, बाबू रंज नहीं हैं। देखो न, स्नान करने गये हैं। तुम उन्हें ऊपर भोजन करने लाओ। मैं सब ठीक करने चली।

किसी स्वप्न में विचरता हुआ अशोक भोजन करने बैठा। रोटी के एक-एक टुकड़े को यों खाता मानो वह भी कोई समस्या हो। आज वह बहुत दिन बाद सोचने लगा, पता नहीं, बेचारा रमेश यह टुकड़ा खाता होगा या नहीं।

ओह ! मैंने बड़ा अन्याय किया रमेश !

लीला बैठी-बैठी यह सब देख रही थी। उसने यह भी देखा कि हाथ की रोटी के टुकड़े पर और थाली में अशोक की आँखों ने कई बूँदें भी टपका दी हैं। लीला की भी आँखों में बूँदें जमा होने लगीं। इसी समय सहसा अशोक ने कहा, मैं नहीं खा सकूंगा। इसके बाद वह ऐसा उठा, मानो उसके साथ कोई भीषण घटना घटी हो। उन्मत्त-सा वह सीढ़ी पर उतरने लगा कि पैर फिसल पड़े और वह लुढ़कता हुआ नीचे आ गिरा। यद्यपि सीढ़ियाँ ज्यादा न थीं; फिर भी अशोक को कई जगह जोर के घाव लगे। सर भी फूट गया, नाक से खून भी बहने लगा। लीला ने तुरन्त डाक्टर बुलाने के लिए कहा। स्वयं उसकी सेवा में निरत हुई। उसे चेतना थी, किन्तु सिर्फ रमेश के लिए ही। आज उसके मुँह से निकल पड़ा, मैं बड़ा भारी अपराधी हूँ रमेश, मुझे दण्ड दे दो, यही मैं चाहता हूँ। संसार में यही एक इच्छा रह गई। इस इच्छा की पूर्त्ति करनेवाले का मैं चिर-ऋणी रहूँगा।

'कैसा अपराध, कौन रमेश, अशोक बाबू।'

'कोई अपराध नहीं, कोई रमेश नहीं। नहीं, नहीं, कोई नहीं,' अशोक अपने को प्रकट नहीं करना चाहता था। यह उसकी दुर्बलता ही कही जा सकती है। थोड़ी देर बाद डाक्टर ने उसे देख कर कहा, इनका हार्ट बड़ा वीक है। उसके फेल हो जाने का हमेशा भय है। लीला ने घबरा कर कहा, इसका उपाय ?'

'है, किन्तु रोगी का बहुत ख्याल करना होगा। और वैसे आदमी को रहना होगा, जो इन्हें सदा प्रसन्न रख सके। डाक्टर के जाने के बाद लीला ने सोचा, किसी भी प्रकार से इन्हें अच्छा करना होगा। मैं इनकी अथक सेवा करूँगी।

वह यही सब सोच रही थी कि अशोक ने कहा, बहुत कमजोरी मालूम होती है, जैसे मुझसे उठा तक नहीं जायगा।

'घबड़ायें नहीं, सब ठीक हो जायगा।'

'अब क्या ठीक होगा, अब तो मैं चला।'

'आप क्या कहते हैं अशोक बाबू ! हताश युवक नहीं होते।'

'मैं हताश नहीं, किन्तु आप ही कहें, यहाँ से जाने के बाद कौन मेरी इतनी सेवा करेगा ! हीरा भी तो मेरे साथ नहीं जायगा। मैंने उस बेचारे को भी व्यर्थ ही में डाँटा। सच मानें आप, उसका कोई अपराध नहीं था। मैंने अपनी उन्मत्तता के कारण उसे डाँट बताई। उसे कितनी चोट लगी होगी ! बेचारे को जरा बुला दें, मैं क्षमा माँग लूँ।'

'आप निश्चिन्त रहें, उसे थोड़ी भी चोट नहीं लगी है। आप पर उसका बड़ा स्नेह रहता है। आप के गिरते ही सब से पहले उसी की आँखों में आँसू उमड़े थे। कह रहा था, बाबू को पता नहीं, कौन इतना दुःख पहुँचा रहा है ?'

'वैसे व्यक्ति को मैंने डाँटा। सच, मुझे कहीं भी विश्राम नहीं मिलेगा।'

'आप चिन्तित न हों, सभी कभी न कभी ऐसी भूल कर बैठते हैं। और आपने यह भूल नहीं की, आपकी विवश अवस्था से भूल हो गई। अस्तु, आप कहीं भी न जाकर यहीं रहें। आप की सेवा हीरा और मैं, दोनों मिल कर करेंगे। अच्छा होने पर फिर आप कहीं चले जायँगे।'

'अरे, मुझे कुछ हुआ ही कहाँ है ! यह देखो, मैं उठ-बैठ सकता हूँ।' किन्तु अपने आपको ठगने वाला अशोक, ज्योंही चलने का प्रयास करने लगा कि गिर पड़ा। टेबुल् पर के गिलास, शीशा फूट गये। बड़ी चोट लगी। लीला घबराई हुई उसे सँभालने लगी, तो उसने कहा, तो क्या मैं सचमुच कमजोर हो गया ! बीमार हो गया ! !'

'हाँ, अब आप उठने का प्रयास न करें।' लीला की आँखों में आँसू आ गये। उसकी यह अवस्था देख विश्वास हो आया, यदि ये यहाँ नहीं रुके तो निश्चय ही शीघ्र एक दिन संसार से बिदा लेकर रहेंगे। उसने पुनः कहा, सारी चिन्ता छोड़, अपने मन को कहीं दूसरी ओर दौड़ायें।

'ऐसा कैसे होगा, आप समझती नहीं; अशोक पर शोक का कितना राज्य है, और उसका कितना प्रभाव है। चिन्ता, उसका जीवन है। वेदना, करुणा उसका घर है। इस घर से आप उसे नहीं निकाल सकतीं।'

'प्रयास तो करने दें।'

'मैं जानता हूँ, विफल होगा।'

'होने दें, सन्तोष तो होगा।'

'इसमें भी सन्देह है।' लीला ने देखा, अब ये फिर बढ़ेंगे। अच्छा है, इन्हें यहीं रोक दिया जाय। उसने कहा, आप के माता-पिता आपको नहीं खोजते होंगे!

'घृणा होगी, यह जान कर कि मैं दुष्ट, उनकी एक न सुन सका। कई बार उन्होंने मुझे देखने तक को बुलाया, किन्तु मैं नहीं जा सका। उनका मैं एक-मात्र रत्न था। मुझे खूब याद है, कालेज जाने के समय माँ के आँसू रोकते नहीं रुकते थे। उनकी एक इच्छा की भी मैंने पूर्त्ति नहीं की।'

फिर लीला ने देखा, अब ये कुछ देर तक उनके विषय में सोच कर उदास होंगे; अतः बात बदल कर उसने कहा, अब आप कुछ देर तक आराम करें। डाक्टर ने आप को बहुत आराम करने के लिए कहा है।

'उसका कहना काम है, कहने दें।' उच्छ्वास भरे शब्दों में यह कहते हुए उसने करवटें बदलीं, लीला की स्थिर आँखों में फिर एक बार अस्थिरता भर गई। किन्तु उसने इस पर कुछ नहीं कह, एक ओर चल दिया।'

१०

कई दिनों से अशोक रुग्ण है। हीरा, लीला, सब ने सेवा की, पर कोई लाभ नहीं। आज रात में लगी नींद भी उचट गई। अशोक ने मानो स्वप्न देखा हो। अन्धकार में भी उसकी आँखें कुछ देखने का प्रयास करतीं, किन्तु विफल ही। हाँ, रमेश की घटना तीव्र हो उसमें अवश्य दीखती। हृदय में यह भी भावना उठने लगी कि बहुत सम्भव है, अब मैं न बचूँ। किन्तु आखिर रमेश से तो नहीं भेंट होगी। क्षमा तो नहीं माँग सकूँगा। लीला के आगे प्रकट हो जाना भी अनुचित ही है। वह श्रान्त पथिक की व्यर्थ थकान मिटाने का विफल प्रयास करती है। अशोक को जिलाना, मुरझाये फूल को खिलाना है। और यदि यह सच भी हो जाय, अशोक अच्छा भी हो जाय तो लाभ ही क्या है! तिल-तिल मरने से अच्छा है, एक ही बार मर जाऊँ। किन्तु यहाँ कहीं मर गया तो रमेश न मिल सकेगा; और यह भी सत्य है कि

उसके न मिलने पर अशोक की मृतात्मा को कभी भी शान्ति न मिलेगी।

सूर्य की लाल-पीली किरणें अशोक के रूम में प्रवेश कर रही थीं। किन्तु अशोक इन्हें देख कर भी शायद इन्हें नहीं देख पा रहा था। खुली आँखों को प्रभात भी रजनी-सा लग रहा था। लीला घने अन्धकार का दीपक बन उसकी आँखों के आगे नाचती, पर उसे लगता, बिना आँधी आये ही वह दीपक बुझ जायगा। अस्तु, बुझने दो, अशोक को इससे क्या।

उसने बिछावन से उठने का प्रयास किया। उसके पैर काँपने लगे। सारे संसार की दुर्बलता मानो उसमें समा गई हो। फिर वह सो गया। इसी समय सामने उसने हीरा को पाया। उसकी आँखें उसी पर टिकी थीं। उसने कहा, बाबू, अपने आप को इतना न ठगो। नितान्त निर्बल होकर भी अपने को सब से बड़ा बली होने का ढोंग न रचो।

'नहीं हीरा, मैं अपने को ठगता नहीं। सच मुझ में अब भी बड़ा बल है। खैर, छोड़ो इन बातों को, यह कहो कल तुम मुझ पर रुष्ट हो गये थे न।'

'नहीं बाबू, हीरा आदमी को पहचानता है। है तो नौकर मगर उसकी आँखें मूर्ख की नहीं हैं। वे सब कुछ देख सकती हैं।'

हाँ हीरा, सचमुच जो अशोक को पहचानने में भूल करेगा, निश्चय ही उसके साथ अन्याय करेगा। और तुम भी रंज हुए तो मुझे बड़ी चोट लगेगी। विश्व के किसी एक को भी प्रसन्न रखने का मुझे सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। मरने के बाद भी मुझे इसका दुःख ही रहेगा। अच्छा हीरा, आज मैं चला जाऊँगा, मेरे अपराधों को माफ कर देना। शायद अब हम फिर नहीं मिलेंगे। मेरी डाँट को बुरा न मानना।'

'अभी आप नहीं जा सकते बाबू।'

'मुझे जाना ही होगा, हीरा।'

'नहीं, नहीं, न जायें बाबू, लीला......।'

'वे समझदार हैं, समझ जायँगी। कभी कह देना, अशोक के जीवन में आप ने अमृत का काम किया है। उसे सन्तोष दिया है जिससे उसे सुख मिला है। इस सुख को वह कभी नहीं भूलेगा।

'चाहे जो भी हो, आप को नहीं जाना होगा।'

'सच मानो हीरा, अशोक को अब कोई नहीं रोक सकता।'

हीरा हत-प्रभ-सा उसकी ओर देखता रहा। उसे विश्वास हो आया, बाबू का रुकना असम्भव है। वे यहाँ से फिर तुरन्त ही संसार से भी चले जायँगे। उन्हें कोई रोक नहीं सकता। कुछ देर में लीला भी आई। अशोक ने उससे भी कहा, लीला, शैलेन्द्र के यहाँ फोन कर दो, अशोक शीघ्र ही प्रयाग जायगा। यह भी कह दो, आनन्द को वह तार दे दे कि बीमार अशोक को प्रयाग स्टेशन से ले जाने के लिए वह अवश्य पहुँचा रहेगा।

'सच, आप चले जायँगे अशोक बाबू।' उसने निर्वाणोन्मुख दीप-सा कहा।

'हाँ लीला, अशोक नहीं रुक सकता।'

'मैं आप के साथ सिर्फ आप की सेवा के लिए चलूँ।'

'तुम्हारे माँ-बाप क्या कहेंगे।'

'इसकी आप फिकर न करें। वे मुझ को पहचानते हैं। उनका मुझ पर दृढ़ विश्वास है।'

'नहीं, आप का जाना ठीक नहीं। और यह भी आप जान लें, अशोक का बचना भी असम्भव है।'

'तो आप न रुकेंगे, न अपने साथ मुझे ले ही चलेंगे।'

'हाँ, विवशता है।'

'अच्छा, मैं फोन कर देती हूँ।'

११

शैलेन्द्र आया। अशोक की अवस्था देख कर उसे बड़ी वेदना हो रही थी। उसे लग रहा था, अशोक वर्षों का रोगी है। पूछने पर उसने बताया, अनुभव नहीं कर रहा था कि मैं बीमार हूँ, बीमारी बढ़ती चली जा रही है। कहो कि लीला देवी थीं कि सँभालती रहीं, अन्यथा कब का मर

चुका होता ।

दिवाल पर अङ्कित छाया-चित्र-सा, शैलेन्द्र को अशोक लग रहा था। उसकी विवश, उदास, खिन्न आकृति बड़ी कारुणिक थी। वह चाह रहा था, अपनी सारी दौलत खर्च कर अशोक को अच्छा कर दूँ। किन्तु हठी अशोक कुछ भी सुनने को तैयार न था। उसके यह कहने पर कि मरने के पहिले की अन्तिम आकांक्षा भी पूरी न होगी, शैलेन्द्र ने जाने देना ही अच्छा समझा।

अशोक ने आगे कुछ कहने का प्रयास नहीं किया। अन्त में उसने भी उसके जाने में ही भलाई देखी।

अशोक लीला के घर से बिदा ले रहा है। बहुत मना करने पर भी लीला ने कहा, कम से कम बोरी बन्दर तक तो अवश्य ही मेरी कार पर आप को चलना होगा।

कार चल पड़ी। हीरा दूर होता हुआ भी, उसकी ओर मानो दौड़ा जा रहा था, लीला के माँ-बाप को भी आँसू आये बिना न रहे। रास्ते के जाते राही ने जाने कैसे, सब के हृदय में घर कर लिया था। सारे बरार की पार्वतीय-प्रकृति के आँगन में भी मानो आँसू की अविरल वर्षा हो रही हो। अशोक यह सब देख कर विचित्र समस्या में उलझ पड़ा। उसके जैसे व्यक्ति के लिये इतना स्नेह, फिर इतना शोक! इतनी चिन्ता!! उपेक्षित, तिरस्कृत, घृणित अशोक के प्रति इनका व्यवहार अनुचित था। ये क्या जानें, अशोक कितना बड़ा हत्यारा है, कितना बड़ा अनर्थकारी है! कमजोर हो कर भी, अपने को वैसा नहीं समझने का ढोंग रचना, कितना बुरा होता है; बेचारे ये भले आदमी, क्या जाने। संसार में मुझ जैसा व्यक्ति, इनको कभी भी, किसी समय ठग सकता है। तारीफ तो यह है कि ठगे जाने पर भी ये अपनी आदत से लाचार रहेंगे। अस्तु, जो भी हो, अशोक यह कभी नहीं भूलेगा कि दूसरे होकर भी इन लोगों ने अपना-सा स्नेह रखा, जिसका मूल्य चुकाने को सोचना, ओछी प्रवृत्ति का परिचय देना है।

बोरी बन्दर पहुँचने पर सब को मालूम हुआ गाड़ी लगी। फर्स्ट क्लास का शैलेन्द्र ने टिकट कटा लिया था। फिर भी उसे विश्वास हो रहा था, अशोक

को इसमें विश्राम नहीं मिलेगा। उसने कहा, अभी न जाओ अशोक, कुछ अच्छे होने पर जाना। मैं नहीं रोकूँगा। किन्तु अशोक ने कहा, मैं आज अच्छा हूँ, चला जाऊँगा। कमजोरी भी कम ही है।

लीला की ओर उसकी दृष्टि गयी। चुप स्तब्ध लीला आँखों में अजीब भावना लिये अशोक की ओर देख रही थी। अशोक ने कहा, क्षमा करेंगी, मैंने अनेक कष्ट दिये। विशेष इतना ही कि मरते समय डाक छोड़वा दूँगा।

'नहीं, नहीं, हताश न हो।' फिर लीला की जीभ जैसे रुक गई। उधर हृदय में ज्वार लिये अशोक चल पड़ा। एलेक्ट्रिक ट्रेन में उसके ज्वार से भी अधिक तीव्रता थी, किन्तु इससे भी अधिक तीव्र लीला की साँसें चल रही थीं। वह खड़ी रही और तब तक खड़ी रही, जब तक शैलेन्द्र ने यह नहीं कहा कि चलो लीला, अशोक अपनी एक बड़ी करुण गहरी किन्तु मधुर स्मृति देकर चला गया। और अब वह नहीं आयेगा। 'नहीं, हाँ, नहीं ही आयेंगे।' लीला ने धीमे स्वर में कहा। जैसे वह जानती हो, जाने वाले कभी नहीं आते हैं। परन्तु पीछे वह स्वयं विरोध करने लगी कि वे जायेंगे कहाँ आखिर प्रयाग ही न! और कहीं उससे भी अधिक दूर की उसने यात्रा की तो.........। नहीं, नहीं, वे ऐसी यात्रा नहीं करेंगे; यदि करनी पड़ी तो.........। लीला इसमें क्या करेगी। नियति से लड़ने की उसमें थोड़े ही शक्ति है।

शैलेन्द्र को शहर में उतार कर अकेले ही वह कार लिए चल पड़ी। उसकी आँखों के आगे बीमार अशोक नाच रहा था और जोरों से नाच रहा था। उसकी कार के चक्के से भी अधिक तेज नाच रहा था। उसे कभी यह भी डर हो आता कि कहीं दुर्घटना न हो जाय। सँभल पड़ती और सँभल कर कार हाँकने लगती। किन्तु यह सँभलना तुरन्त विलीन हो जाता। और पूर्ववत् ही विचार-चित्र देखने में लीन हो जाती। उसकी आँखों के आगे मानो सिनेमा की रील दौड़ रही हो। वह चाहती थी, यह रील दौड़ती ही रहे, इसकी कभी समाप्ति ही न हो। इसके समाप्त हो जाने पर जैसे वह बेहोश हो जायगी। कार की हैंडिल छूट जायगी। परिणाम में भीषण दुर्घटना होगी। नहीं, वह वैसा नहीं होने देगी। यदि हो गई तो! नहीं, वह ऐसा नहीं होने देगी।

१२

साहित्य की आवृत्ति करता हुआ आनन्द, 'किताबिस्तान' में 'दीपशिखा' उलट-पलट कर खरीदने के लिये देख रहा था कि किसी ने कहा, तुम्हारे नाम से तार आया है। सहसा परिस्थिति के भँवर में मडराने वाले आनन्द में घबराहट भर गई। उसने तार पढ़ा, पढ़कर हाँफने-सा लगा। अशोक की उदास, विवश, आकृति, स्मृति पट पर पहले ही अङ्कित हो चुकी थी। रमेश से रात-दिन युद्ध करने वाले अशोक की क्या स्थिति हुई होगी। यह वह अच्छी तरह समझता है। विद्यालय से वह होस्टल् में चला आया। रमेश और अशोक दोनों ही उसके मित्र थे। किन्तु बीचवाली घटना या अशोक की कारुणिक विवशता ने उसी का पक्ष लेने के लिये बाध्य किया। भविष्य का एक प्रबल भाग सिद्ध कर रहा था कि अशोक अस्तित्वरहित होकर ही रहेगा। यहाँ पहुँचते ही आनन्द काँपने लगता है। उसका रोम-रोम कहने लगता, यह उसके प्रति अत्याचार होगा, अन्याय होगा। किन्तु जैसे सब एक दायरे में टकरा कर ही रह जाते हैं। वह उठने-बैठने, टहलने लगा। वह चाहता था, गाड़ी वायुमान बन कर चली आए, और मैं अपने अशोक को देख सकूँ। शीघ्र बीत जाने वाला समय उसे वर्ष-सा लग रहा था। अन्त में वह स्टेशन पर ही चल पड़ा। अभी गाड़ी आने में एक दिन की देर थी। फिर भी वह यों देखता, मानो तुरत ही आ रही हो। बारबार पूछता, आज गाड़ी लेट तो नहीं है। इस प्रश्न के कारण उसे मूर्ख भी बनना पड़ा, डाँट भी सुननी पड़ी। पर इसका उसे तनिक भी ख्याल न रहा। उसके मस्तिष्क में एक साथ एक ही चित्र का रूप खड़ा होता, उसके आगे एक ही आकृति नाचती, सिर्फ अशोक की। सिंग्नल् के लाल हिस्से को वह हरा देखना चाहता। कई बार हरा भी होता, पर औरों के लिये, उसके लिये नहीं।

गाड़ी आयी, व्यग्र आनन्द ने देखा, ढूँढ़ा; अन्त में आँखों में आग और पानी लिए अशोक उसे दीख पड़ा। बर्षों का रोगी-सा वह प्रतीत हो रहा था। आनन्द की आँखें उसमें अटक गईं। चाह रहा था, मैं इसे देखता ही

रहूँ। वह यह भूल गया कि अशोक बीमार है और उसे उतारना भी है, वह तब हिला, जब किसी ने उसे धक्का दिया। गिरते-गिरते बचा। इसी बीच अशोक ने कहा, पहचानते हो, आनन्द ! उसने आँसुओं को पोंछते हुए कहा, पहले उतरो भी।

होस्टल् में उसने बड़े परिश्रम से उसे लाया। डाक्टर के यहाँ जाने लगा तो अशोक ने कहा, अब व्यर्थ है, डाक्टर के पास मुझे बचाने की कोई दवा न होगी, यह विश्वास मानो। मेरा आग्रह है, तुम बराबर यहीं मेरे पास बैठे रहो। अच्छा आनन्द, अमरावती कहाँ है ?

वह बहुत पहले ही यहाँ से चली गई।

"शायद अब आगरा पढ़ती है।"

"बीच में रमेश आया था ?"

"नहीं।"

'तो वह भी शायद अमरावती के साथ ही पढ़ता है। चलो, अच्छा ही हुआ, दोनों साथ ही उन्नति करेंगे।'

'नहीं जी, उसका तो कोई पता ही नहीं। एक दिन उसके पिता ने बड़ा लम्बा-चौड़ा पत्र लिखा था कि रमेश अब पहले का रमेश न रहा। पागल की नाईं इधर-उधर भटकता फिरता है। दूर, दूर गाँवों में जङ्गल से भी अधिक भयानक जगहों में घूमता रहता है। लाख पूछने पर अपनी आन्तरिक इच्छा या अभिलाषा नहीं प्रकट करता। जीवन का कोई उद्देश्य ही नहीं, लक्ष्य ही नहीं। आज घर आनेवाला था, पर तुरंत मालूम हुआ, वह वहाँ से भी दूर, कहीं और चला गया। इतने में आनन्द ने देखा, अशोक की आँखें बरस रही है, और बरसती ही जाती हैं, जैसे वे रुकना जानती ही नहीं। रुकेंगी ही नहीं।'

'जानते हो, आनन्द, मेरे कारण उसे भी बड़ी पीड़ा है। कहीं भी उसे कल नहीं पड़ती होगी। सच, मैं महान् अपराधी हूँ, वह इसका दण्ड दे, तो मुझे शान्ति मिलेगी।'

'मैंने कितनी बार कहा, अधिक न सोचा करो; अपने आप को खो देने से

तो कोई लाभ नहीं। मैं जानता हूँ, दोनों का हृदय पवित्र है, स्वच्छ है; प्रति कालुष्यरहित है। जभी मिलेंगे, सारा संकोच दूर हो जायगा भेद की भित्ति ढह जायगी।"

'हम मिलेंगे, यह तुम्हारा विश्वास है ?'

'हाँ, निश्चय ही।'

'नहीं आनन्द, तुम्हारा अशोक रमेश से शायद ही मिले। वह अब थोड़ी ही देर के लिए टिका हुआ है।'

"ऐसा न कहो, अशोक, निराश युवक तुम कदापि नहीं थे, फिर यह निराशा-जनक बातें कैसी। भाग्य से लड़नेवाले अशोक को यह क्या हो गया।"

वह सब केवल ढोंग था, अशोक अब जान गया है, वह कितना कमजोर है, कितना निर्बल है, जिस अपने आप को सँभालने की शक्ति नहीं रह गई, वह नियति या भाग्य से क्या लड़ पायेगा! खैर, मैंने तुम्हारे साथ भी कोई अच्छा व्यवहार नहीं किया था। बराबर आवेश में आकर तुम्हें मारा है, यह भी एक अनाचार ही है। किन्तु तुम इसे कदापि भूलना नहीं कि वैसा मैंने अधिकारपूर्वक किया है। सच की मार कभी नहीं मारी। मेरा हृदय एक दम स्वच्छ है। यदि तुम मुझे अन्यथा समझोगे, तो मेरे साथ अन्याय करोगे, शत्रुता करोगे। जो अशोक को पहचानने में भूल करेगा, वह निश्चय ही, वह निश्चय ही.........।"

अशोक व्यग्रता की करवटें लेने लगा। कुछ कहना चाहता हुआ भी रुक पड़ा। कई घटनायें, कई स्मृतियाँ, साथ ही नाचने लगीं। और वह ऊहापोह में पड़ गया। आनन्द ने अपने नहीं रुकनेवाले आँसू को पोंछ कर कहा, विश्वास रखो अशोक, तुम्हारे विषय में मुझे कभी भ्रान्ति नहीं होगी। मैं रमेश को भी जानता हूँ, पहचानता हूँ। वह भी इस विषय में भूल नहीं करेगा।

'सच!'

'हाँ, तब तो वह मुझे माँफ कर देगा!'

'निश्चय'।

'पर विश्वास नहीं होता, यदि वह ऐसा ही रहता तो मेरी खोज-खबर नहीं लेता ! तुम भूलते हो, आनन्द, अब भी, आज भी वह मुझ से रुष्ट है। संसार के अपराध को भले ही वह क्षमा कर दे, किन्तु मेरे अपराध को कदापि क्षमा नहीं कर सकता। आखिर करे भी तो कैसे ! भयङ्कर अपराध को शायद क्षमा करने का उसे भी अधिकार न हो।'

'यह सब तुम्हारी व्यर्थ की भ्रान्तिपूर्ण धारणायें हैं, और कुछ नहीं।'

'चाहे इसे तुम जो समझो।' वह चिन्ता के साथ खेला खेलता हुआ करवटें बदल, सोने के उपक्रम के व्याज से सोचने लगा, और खूब सोचने लगा। आनन्द ने सोचा, बाधा नहीं देनी चाहिये। वह एक ओर चला गया। इस समय वह रमेश को खूब कोस रहा था। अशोक को इस स्थिति तक पहुँचाने का सारा दोष उसी पर मढ़ रहा था, जो कुछ अंशो में ठीक ही कहा जा सकता है। परन्तु बड़े ध्यान से देखने या सोचने पर विदित होगा, उसी का नहीं, इसमें अशोक का भी दोष है। निःस्वार्थभावना से प्रेरित होकर उसने रमेश के साथ वैसा व्यवहार किया, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर आवेश या क्रोध से अभिभूत होकर जो उसने काण्ड रचा, वह तो दोष ही में सम्मिलित हो सकता है। फिर भी यह निश्चय है, उसने जो कुछ किया, उसके लिये इतने बड़े प्रायश्चित्त या पश्चात्ताप की आवश्यकता न थी। किन्तु यह भी एक कठोर सत्य है कि साधारण मानव से वह अवश्य ही उठा हुआ मानव है। वह निर्बल होता हुआ भी बड़ा सबल है।

चौदह-पन्द्रह दिवस हो गये, उसे मुम्बई से आये हुये, किन्तु वह अच्छा न हो सका। आनन्द ने बड़ी सेवा की, पर कोई लाभ नहीं। कितनी बार उसने कहा, रमेश के यहाँ तार दूँ ! किन्तु उसने ऐसा करने से मना किया। आज वह अधिक सुस्त था। मुम्बई की स्मृतियों में सजगता आ गई थी। लीला, हीरा, दोनों आँखों के आगे नाच रहे थे। लीला का एकान्त नृत्य उसे प्रिय लग रहा था। वह चाह रहा था, इस समय वही नृत्य लीला आरम्भ करे। यद्यपि वह अनुभव कर रहा था, मैं नृत्य देख रहा हूँ, फिर भी यहाँ लीला की उपस्थिति अनिवार्य थी। इसी बीच रमेश ओट में आकर जैसे कह जाता, तुम भी

वही हो, जो मैं हूँ। वह कह उठता, नहीं, नहीं, दोनों में महान् अन्तर है। अमरावती और लीला दोनों दो विपरीत धाराओं में प्रवाहित होने वाली नारियाँ हैं, जिनकी एक साथ कोई तुलना नहीं, कोई समता नहीं। अशोक और रमेश, उनके लिये दो समस्यायें हैं, जिनका अन्योन्य कोई खास सम्पर्क नहीं। तुलनात्मक दृष्टि से भी दोनों के दो स्थान हैं। यदि तुम ऐसा नहीं समझते, तो तुम्हारी यह भूल है, हाँ, रमेश बड़ी भूल है।

पर उसे लगा, सच, मैं भी औरों जैसा कमजोर ही निकला। बहुत लड़ने-झगड़ने पर उसने कहा, आनन्द, रमेश के घर तार दो कि वह जल्दी आ जाय, अन्यथा अशोक से शायद ही भेंट हो। किन्तु वहाँ से उत्तर आया, रमेश यहाँ से कहीं और चला गया है। इस उत्तर से वह विक्षुब्ध हो उठा। उसे विश्वास होने लगा, रमेश नहीं ही मिलेगा। और यदि वह नहीं मिला तो निस्सन्देह उसकी मृतात्मा को कदापि शान्ति नहीं मिलेगी। आनन्द ने भी देखा, कुछ ही घड़ी का अब वह अतिथि रह गया है। उसने कहा, कुछ कहो ना, अशोक!

धीरे से साँय-साँय के स्वर में उसने कहा, कहीं से उसे ढूँढ़ निकालो, खोज निकालो।

'फिर यहाँ तुम्हारे साथ कौन रहेगा!'

'आवश्यकता नहीं, हाँ, एक काम और इस पते से मुम्बई एक रिप्लाई तार दो, लिखो, आप जल्द आयें, कब आती हैं, यह भी लिखें।' आनन्द ने सोचा, यह मुम्बई की लीला कौन है! जो भी हो, तार दे देना चाहिये।

तार देकर, वह रमेश की खोज में निकल पड़ा। और इधर बेचारा अशोक जिन्दगी की बड़ी मञ्जिल तय कर रहा था। रह-रह कर उसे लगता, शायद लीला भी न आ सकेगी। वायु बन कर पहले वह रमेश से मिलना चाहता था, बाद में लीला से। जब दो दिन बीत गये, लीला के तार का कोई उत्तर नहीं आया, तब उसने समझा, उससे भी भेंट नहीं होगी।

आनन्द अपनी अनुपस्थित में एक अपने परिचित को अशोक के पास रख गया था। सङ्केत से उसने कलम और कागज माँगा। रमेश और लीला के नाम से दो पत्र लिखे। रमेश को उसने लिखा, अपनों का अपराध, अपराध

नहीं कहलाता यदि कहलाता भी हो तो, सदा वह क्षम्य रहता है। माना कि मेरा भयङ्कर अपराध था, पर मैं तुम्हारा अपना जो था। अस्तु, चाहता था, मरने के पहले सामने ही, तुम्हारे शब्दों से सुन लूँ, तुमने क्षमा कर दिया। मेरा दुर्भाग्य, वह भी न हो सका। इसे तुम भूलना नहीं कि मैं तड़प-तड़प कर, घुल-घुल कर मरा हूँ। अमरावती से कहना, अशोक तुम्हारा मित्र नहीं तो शत्रु भी नहीं था। तुम उसे क्षमा कर देना।

लीला के लिए उसने लिखा, चुपचाप चले जाने वाले पीड़ित पथिक ने तुम्हें कष्ट दिया, पीड़ा दी, यह देने की उसने अनधिकार चेष्टा की, दूसरे शब्दों में उसने अपराध ही किया। क्षमा करेंगी, अन्तिम समय में चाह रहा था, आप एक बार वही पार्वत्य प्रदेश वाला नृत्य करतीं, और मैं गा उठता, जाजरे......... । पर......... । इसी बीच उसे लगा डाकिया पुकार रहा है। बिना सोचे ही उसने कोठे से नीचे आना चाहा। तिलमलाता हुआ सीढ़ियों से उतरने लगा कि गिर पड़ा, और नीचे आ गिरा। बहुत विद्यार्थी उसके निकट आ गये, वह परिचित भी आया। अशोक, जैसे सब से बहुत कुछ कहना चाहता है, आँखें इधर-उधर बहुत कुछ ढूँढ़ती हैं, परन्तु न वे ही पा सकीं, न मुँह ही कुछ कह सका। विद्यार्थियों की आँखों में आँसू आ गये। थोड़ी ही देर बाद दाढ़ी बढ़ाये, अजीब चेहरा लिए रमेश आया। आनन्द समझ गया, अशोक छोड़ चला। बड़े उतावले शब्दों में अशोक को झकझोरता हुआ रमेश कह रहा था, मैं आ गया, भैया क्षमा कर दो; अब कभी कहीं नहीं जाऊँगा।

रमेश अब कुछ भी कहे, अशोक इतना सुनने के लिये थोड़े ही रुका रहे। इसी बीच एक ओर हीरा, छोटा-सा चमड़े का बैग लिए और लीला कोई पुस्तक लिए पहुँची। लगी भीड़ को देख, उसका हृदय हाँ-ना, हाँ-ना, के स्वर में लड़ने लगा। सभी एक ओर हो गये। निकट आकर उसने अस्फुट स्वर में कहा, आखिर रुके नहीं चले गये! क्या बाबू, यह जाना, क्या मेरे आने के बाद नहीं हो सकता था! लौट चलें हीरा, हमने देर कर दी, बाबू ठहर नहीं सके, छोड़ गये; चले गये। उसने औरों से कहा, उनका कमरा कहाँ है!

'ऊपर !' वह ऊपर गई, चौकी पर देखा, एक अधूरा पत्र है पढ़ा, पढ़ कर कहा, इसीलिए तो मैं घुँघरू भी लाई थी। मैं क्या करती, आप प्रतीक्षा करना जैसे जानते ही न थे। इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने पर उसने अशोक का छोटा-सा चित्र देखा, उसे उठा लिया। और नीचे आई। सभी अवाक् थे, वह मृत अशोक को देखती हुई जाने लगी कि उसे लगा, अशोक कह रहा हो रुक पड़ें, एक बार नाच दें।

वह विक्षिप्त-सी लौटने लगी। फिर मुड़ पड़ी, और उसकी ओर देखती हुई कहने लगी, आप देखें न, घुँघरू भी साथ है, जरा उठिये भी; सच, मैं नाचूँगी।

हीरा के कपोल सिक्त थे।

उसने कहा, चलो लीला, बाबू उठेंगे नहीं।

वह उसे सँभालता हुआ चल पड़ा।

× × ×

अशोक की चिता जल रही थी। कई प्रोफेसर एवं छात्र एकत्र थे। पास ही उफ्-आफ करता हुआ रमेश आँसू बहाये जा रहा था। आनन्द का हाथ उसकी गर्दन पर था।

लीला की जी० आई० पी० बड़ी तेजी से भागी जा रही थी। आस-पास के भागते दृश्यों को वह देख रही थी। उन दृश्यों में अशोक तैरता-सा दीख रहा था। उधर हीरा आँखों से गङ्गा बहाये जा रहा था। रह-रह कर लीला की ओर देख लेता।

१३

आनन्द के बहुत समझाने पर भी रमेश कुछ नहीं समझ रहा था। अशोक की मृत्यु का कारण वह बना, यही रात दिन उसके हृदय में उठ-बैठ रहा था। प्रकृति के प्रत्येक अङ्ग यही कहते तुम अशोक के शत्रु हो। लाख प्रयत्न करने पर भी उसका मन कालेज में नहीं लग रहा

था। जाने, बेचारा अशोक कौन-कौन अभिलाषायें लेकर, आकांक्षाये लेकर मरा होगा। आखिर उसका अपराध क्या था, बड़ा भाई था, अपना था, मुझ पर उसका पूर्ण अधिकार था; इसलिये उसने डाँटा, मारा-पीटा; इसमें पश्चात्ताप की क्या जरूरत थी। जीवन भर तड़फड़ाते रहने के लिये प्रतिशोध की भावना से उसने ऐसा किया।

खाना-पीना छोड़ कर वह भी उन्मत्त की तरह इधर-उधर भटकता फिरता। कभी यह जीवन खोटा लगने लगता, और वह मरने पर उतारू हो जाता। उस समय कहना नहीं होगा कि आनन्द अशोक का दूसरा रूप बन कर उपस्थित रहता। चूँकि हर समय उसकी देख-भाल करने के लिए अशोक ने कहा था। उसने यह भी कहा था कि रमेश अभी बुद्धिरहित है, विश्व के प्रपञ्च से अनभिज्ञ है। उसे छोटा भाई समझ तुम सर्वथा उसकी रक्षा करना। अतः उतावलापन की अवस्था में जहाँ वह रहता, आनन्द भी वहीं उपस्थित रहता। पढ़ना-लिखना भूल कर हमेशा रमेश की निगरानी करता। रमेश का सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर समझता। उसे भारी चिन्ता हो गई कि अब वह कैसे सँभलेगा। कभी यह कह उठता, आखिर जब उसे ही अपनी चिन्ता नहीं तो मैं कब तक उसकी चिन्ता करता रहूँगा। ठीक इसी समय मानो अशोक की मृतात्मा बोल उठती, आनन्द भूलो नहीं, वह तुम्हारा छोटा भाई है उसके साथ कर्त्तव्य पालन करना तुम्हारा श्रेष्ठ धर्म है। और फिर मेरे साथ विश्वास-घात करना क्या है अपने आप को ठगना है।

चाहे जो कुछ भी हो प्रयत्न करने पर भी आनन्द रमेश को स्थिर नहीं रख सका। आज वह व्यग्रता की आँधी में घर चला गया। शान्ति-क्रान्ति के बीच उलझता-सुलझता किसी भी निश्चित पथ पर पहुँचना उसके लिए कठिन था। घर से भी कहीं और भाग जाना चाहता था। परिवार को विश्वास हो आया, अवश्य वह पागल हो गया है, अशोक का चित्र लिए वह घूमता फिरता है। कभी सामने रख उससे कुछ कहने और रोने लगता है। भर्राया हुआ चेहरा लिए, आँखों में विषाद और पश्चात्ताप का आँसू लिए परिवार के एकान्त में खड़ा हो जाता तो माँ सैकड़ों प्रश्न एक ही साथ करती।

वह सब का उत्तर मौन आँसू से दे देता, और तुरत कहीं चल पड़ता। सुबह-शाम, रात-ऊषा, किसी का उसे ख्याल नहीं रहता। सब कुछ उसे एक स्वप्न-सा लगता, वह चाहता, हमेशा के लिए मैं इस स्वप्न में खो जाऊँ। मानव के क्षणिक परिवर्तित रूप पर विचार करते समय उसके सारे विचार एक झञ्झा में बह जाते हैं। और वह कुछ खोजने लगता, ढूँढ़ने लगता। अशोक की शोकमयी आकृति मुर्झाने लगती तो आँखों को मीचने लगता। सच की वास्तविक छवि देखना चाहता, पर प्रयास विफल हो जाने पर जोर से चिल्ला उठता, 'भैया अशोक, क्षमा करना इस हत्यारे को। इसकी आँखें अपनों को पहचानने में सदा से भूल करती आई हैं। तुम मेरे एक सम्बल थे, सहायक थे, किन्तु मैं हतभाग्य इस पर कभी सोच न सका, विचार न सका जिसका फल अब भोगना होगा। तुमने तो व्यर्थ के प्रायश्चित्त में अपने प्राण गँवा दिये, मेरे लिए उससे भी बढ़ कर भयङ्कर प्रायश्चित्त करना होगा। जीवन में मैंने एक भी ऐसा कार्य नहीं किया जो अच्छा वा प्रशंसनीय कहा जा सके। प्रशस्त मार्ग पर ले चलनेवाले तो तुम थे, अब कहाँ-कहाँ भटकता फिरूँगा। कोई भी तुम-सा नहीं मिलेगा इस में सन्देह नहीं किन्तु क्षमा करना भैया, मैं अपराधी हूँ, दोषी हूँ।

साँझ के आँगन में रमेश यों ही बढ़ा जा रहा था कि सिसकने और कुछ रोने के स्वर सुन पड़े। ठहरना न चाहते हुए भी उसे ठहरना पड़ा। वेदना के विराम का नाम उसने आँसू दे रखा था। पैर आगे बढ़ने के लिए उठते किन्तु उनमें जैसे कई मन की ईंटें बँधी हों। उसे लगा अपार दुःख उमड़ने पर ही सहसा इसे भभकना पड़ा होगा। बिना प्रयास ही वह उधर ही मुड़ पड़ा जिधर से रोने के स्वर आ रहे थे। एक पुराने भग्नावशेष की ओट में उसने देखा, कोई करुणा की मूर्त्ति का रूप लिए अजीब परिस्थिति में अपने आप में उलझ रहा है। उसके मुख से निकला, वेदना की सीमा को देख कर मैं काँप उठता हूँ। आप इस प्रकार......!

विचित्र ही उसकी अवस्था हो गई। उसमें भय का सञ्चार देख पुनः रमेश ने कहा, घबराएँ नहीं, यह मैं जानता हूँ कि आप नारी हैं, जिसे

बराबर भय की शङ्का रहती है, फिर भी विश्वास दिलाता हूँ, शायद आप का कुछ नहीं बिगड़ेगा।

नारी का भय भागने-सा लगा। उसे रमेश बुरा नहीं लगा। समझा, यह भी मेरे जैसा आफत का मारा होगा, तभी तो अचानक अजनबी औरत के साथ इसकी हमदर्दी है। उसने भी यह कहने का साहस किया कि दुनिया के किसी कोने में पड़ी रहनेवाली औरत पर अत्याचार करना बड़ा भारी गुनाह है। खैर,

कहीं ऐसा न हो, एक दूसरे को पहचानने में हम भूल कर बैठें, चूँकि अब का इनसान अकसर दूसरे इन्सान को पहचानने में भूल कर बैठता है चाहे इसका दोष न भी हो, पर फल बुरा होता है, हो सकता है हम भी वैसी ही भूल कर बैठें।

रमेश को कभी भी उस नारी से ऐसी आशा न थी कि वह इतना साफ-सुथरा विचार व्यक्त कर सकती है। गहरे दुःख को मापने में भले ही वह अक्षम रहे, किन्तु किसी को खास कर इन्सान को जो हैवान् का अर्थ भी नहीं जानता, पहचानने में कभी भूल नहीं करता।

विश्व से उपेक्षित ऐसे व्यक्तियों के प्रति उसकी बड़ी सहानुभूति रहती है। निकट से उन्हें देखने का अवसर ढूँढ़ता है। भले ही इसकी वजह उसे अपने आप को भी क्यों न खो देना पड़े। बल्कि उसे तो यह भी एक कर्त्तव्य ही लगता है कि मानव को पहचानने की आँखें देनी चाहिए उसने विश्वास दिलाते हुए कहा, मैं कम से कम किसी को पहचानने में भूल नहीं करता। यह कहते समय एक बार उसे रोमाञ्च हो आया। उसके भीतर मानो अशोक के स्वर गूँजने लगे कि रमेश, तुम झूठ विश्वास न दिलाओ, इसका परिणाम बुरा होगा। बराबर तुमने इस विषय में भूल की है। उसने सहमते हुए कहा, यों तो मनुष्य से भूल हो ही जाती है, किन्तु जहाँ तक चेष्टा करूँगा, इस विषय में भूल न हो।

नारी ने देखा, सहसा उसके स्वर में परिवर्त्तन हो गया। उसने कहा, किन्तु आप खिन्न-से लगते हैं।

'यह छोड़िये, पहले बताइये, आप कोई खास विपत्ति में आ फँसी हैं।'

'यह विपत्ति तो कोई नई नहीं है, जीवन के साथ ही आई, और शायद उसी के साथ जायगी भी।'

'मैं आप के विषय में कुछ जान सकता हूँ!'

'क्या करेंगे जान कर, जाननेवाले का तो पता नहीं।' 'शायद वह जानने की जरूरत ही नहीं समझता।'

'वह कौन है?'

'यह तो मैं भी नहीं जानती किन्तु आज उसकी सख्त जरूरत थी। मैं यह नहीं जानती कि वह मेरी जरूरत पूरी करता या नहीं, परन्तु जाने क्यों यकीन होता है, मेरी कुछ सुनता, शायद जरूरत भी पूरी करता। मगर सवाल है, वह है, कहाँ? मिलेगा कहाँ?'

'पहले वह मिला कहाँ था?'

'यह भी एक अजीब किस्सा है, उसका यों मिलना ही तो मेरे लिए सर्वनाश का कारण हुआ। वह जो आप छोटी-सी गली देखते हैं, उसी में अन्धेरी रात को वह मिला था। मैं जरा बड़ा अलमस्त हूँ, चिराग लिए हलीम को बुला रही थी कि बेचारे से टकरा गई। चिराग का शीशा फूट गया, वह आदमी भी डर गया। मैं उस समय उसकी सूरत देखना चाहती थी, परन्तु अल्लाह् को यह मंजूर न था किन्तु वहीं, एक ही दफे हम मिले उसके बाद लाख मैंने कोशिश की वह मिले, मगर न मिल सका। हो सकता है, मिला भी हो, मगर मैंने पहचाना न हो। खुदा जानता है, वह मेरी याद करता है या नहीं। लेकिन जाने कैसा मेरा दिल था कि यों ही लगा उस अजनबी की याद करने। इसी याद ने घर में एक तहलका मचा दिया। भाई यह नहीं जानता था कि क्या बात है। मगर शक्-सुबहा से उसने यह अन्दाज लगाया कि मैं इश्क में फँस गई हूँ। इसके लिए उसने बड़ी मार मारी। इतना कह कर वह चुप होने लगी कि रमेश ने कहा, फिर?

'फिर क्या मैं ठीक नहीं कह सकती कि वह हिन्दू था या मुसलमान लेकिन मुझे लग रहा था कि वह हिन्दू था, चूँकि उसके एलफाज हिन्दवी से मिलते-

झुलते थे। और अगर मेरा भाई हैदर जान गया कि मैं एक हिन्दू से......। तो वह उसे हलाल कर दे सकता है, मेरी भी खैर नहीं रहेगी। मगर मुझे बड़ा सदमा पहुँचेगा, उसे यों मरते देख कर। चाहे कोई मुसलमान हो या हिन्दू, मुझे कोई फर्क नहीं मालूम होता। मैं दोनों का भला चाहती हूँ। खैर, एक दिन अपनी ही वजह हैदर जेल चला गया।'

'क्यों?'

'अम्मा के रात-दिन कहने से उसे मेरी शादी की फिकर होने लगी। वह चाहने लगा, मैं किसी भी तरह रुपये लाकर शादी कर दूँ। बड़ा भारी वह पियक्कड़ था। खूब पीकर एक दिन चला आ रहा था कि एक सेठ के हाथ में उसने रुपये देखा बस, झपट कर छीन लिया। अब क्या था, पुलिस आयी और जेल ले गयी। तब से अभी तक जेल ही में है। इधर आस-पास के लोग अम्मा को कोसने लगे कि तैमुन्ना की शादी क्यों नहीं करती! अब सयानी हो गई है; कहीं कुछ हुआ तो जानना। मारे डर के अम्मा ने रखे गहने बेंच कर, जाने कहाँ, शायद दीनापूर किसी बूढ़े से शादी ठीक कर दी है।'

'आप कैसे जानती हैं कि वह बूढ़ा है?'

'रौशन कहती थी, मैं उसे जानती हूँ। वह बुढ्ढ़ है, बूढ़ा है। सच, मेरा भी दिल कहने लगा है, वह बूढ़ा ही है। और परसों शादी होनेवाली है। सोते-जागते, उठते-बैठते, सब समय मुर्राया चेहरा नाच उठता है, साथ ही मैं काँप उठती हूँ। दक्खिन तरफ गङ्गा के किनारे रोज शाम को जाकर, उस अनदेखे आदमी का स्वप्न देखने लगती थी, झूठ की थकान मिटाती थी। महीनों से वहाँ भी जाना बन्द हो गया। मैं जानती हूँ, दुनिया की आँखों में, किसी की याद करना, गुनाह है। सब जानते हुये लाचारी है। आज चारों ओर नज़र दौड़ाने पर सिवा उस शख्स के, और कोई अपना न मिला। मुसीबत की मारी इधर चली आई। सोचा, कुछ भी तो चैन मिलेगी!'

इसके बाद उसकी आँखों में आँसू उमड़ने लगे कि उसने सुना, अम्मा का स्वर। शायद वह पुकारती हुई इधर ही आ रही थी। रमेश को, इसका ध्यान ही न था। दूर से आते हुये बिजली के थोड़े प्रकाश में, वह उस यवन-युवती

को बड़े गौर से देख रहा था। उसे लग रहा था, मैं अब भी उसकी कहानी सुन रहा हूँ। तैमुन्ना घबराई। उसने कहा, आप उधर चले जायँ, नहीं तो मैं ही चली जाती हूँ। रमेश जैसे सोते से जगा।

'अच्छा तो उसने आप से यह भी कहा था कि आप माफ कर दें!'

'हाँ, इस पर मैंने कहा था, इस में माफी की क्या बात है; इन्सान से ही तो गलती होती है। मगर आप......। मगर आप......। मुड़ कर, वह आप-आप, कहती हुई घर की ओर भाग गई। और रमेश वहीं बैठ गया। उसकी आँखों के आगे वर्षों की सोयी, मरी स्मृति जग पड़ी, जी उठी, नाच उठी। यही तैमुन्ना तो उसके जीवन में पहले-पहल एक क्रान्ति लेकर आई। भीषण, आँधी लेकर आई। वह अब भी मेरी याद करती है। और एक मैं हूँ जो उसके भूलने के बाद की स्मृति पर भी न सोच सका। इस विवश अवस्था में मेरा कर्त्तव्य होना चाहिये कि जिस किसी भी तरह उसे बचाऊँ। पर इसका उपाय! कुछ नहीं। सामाजिक विधान में इसीलिये मैं चाहता था, एक भयङ्कर परिवर्त्तन ला दूँ। आज यदि मैं उसे अपना लूँ तो सभी काट खायेंगे। उस का विनाश सभी देखेंगे, मैं भी उन्हीं की तरह देखता रहूँगा। पर यह कैसे सम्भव होगा कि एक नवोढ़ा नायिका का, जो आवेश, उमंग, उछाह का घर है, जिसके यौवन की एक अङ्गड़ायी में त्रिनेत्र या इन्द्र भी आ सकते हैं, और आकर आत्म-विस्मृत हो सकते हैं, एक जरा जीर्ण-शीर्ण नीरस, शुष्क, करील वृक्ष-सा वृद्ध के साथ बन्धन हो जाय, और वह खड़ा-खड़ा देखता रहे! किन्तु समाज शक्ति का सामना करने के लिए उसके पास साधन ही क्या है? जो विफल प्रयास करे, इन दोनों के बीच पड़ने का। जब कि यह निश्चय है कि उसे सफलता नहीं मिलेगी। कभी जीवन में उसने सफलता पायी है कि अब झूठ की आशा करे! उसके लिए अच्छा है कि सब पचड़ों से अलग रह कर अध्ययन की ओर लगे। मगर उसके लिए यह सम्भव है! शायद नहीं। क्यों नहीं, तैमुन्ना उसकी होती ही कौन है, और अशोक .. .. .., हाँ, हाँ, उसे वह कैसे छोड़ सकता है! तैमुन्ना एक बूँद है, जो कभी भी सूख सकती है। और अशोक एक सागर है, जिसके सूखने की कल्पना करना, अपनी मूर्खता का परि-

चय देना है। दोनों से कोई तुलना नहीं, किन्तु इस सत्य को कौन टाल सकता है, कि दोनों ही उसकी शान्ति के शत्रु हैं। उसके अध्ययन के बाधक हैं। आह! तो वह क्या करे कहाँ जाय। कहीं भी जाय, कुछ भी करे, इसका उन्हीं दोनों ने थोड़े ही ठीका ले रक्खा है।

इस प्रकार विचारों से लड़ते उसके कई घण्टे बीत गये। नाना प्रकार की कल्पनायें करता और अपने आप पर खीझता, झिझकता। अन्त में हारा-सा, थका सा, उठा और घर की ओर चल पड़ा। पहुँचने पर उसने देखा, उसके माता-पिता द्वार खोले, ऊँघते हुए अपने बेटे की बाट जोह रहे हैं! वे जानते हैं. अशोक की मृत्यु से वह घबरा उठा है। वे यह भी जानते हैं, उसका वह बड़ा अपना था, सगा था; इसके लिए वह सब कुछ था। लेकिन आखिर उपाय ही क्या है? उन लोगों ने कहा, ऐसे रहोगे तो हम लोगों को तकलीफ होगी बेटा! संसार के नियम, सृष्टि के विधान पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। अपने आप को यों नष्ट न करो। बूढ़े माँ-बाप का भी तो कुछ ख़्याल करो।

रमेश ने देखा, दोनों की आँखों में बड़ी ही निराशा भरी है, साथ ही आँसू भी। उसके हृदय ने कहा, आप हृदय से यह भावना निकाल दें कि रमेश कभी आप को सुख भी दे सकता है। उससे आप को जीवन भर तकलीफ होगी। आप विश्वास न करेंगे, किन्तु सच जानें, इसका स्वयं रमेश को खेद है, चिन्ता है। आदि से ही उसका जीवन दुःखमय रहा है। वह सोचता कुछ है, होता है कुछ। विश्व के कल्याण के विषय में सोचता है, किन्तु स्वयं उसके लिए किसी को सोचने की फ़ुरसत नहीं, परवाह नहीं। वह जिधर दृष्टि दौड़ाता है, उधर निराशा के ही बादल उमड़ते-से दीखते हैं। मोटर या गाड़ी के चक्के की भाँति हमेशा वह नाचता रहता है शायद नाचता ही जायगा। न उसके जीवन में सुख है, न आराम है, न विराम है। निर्बल-सबल दोनों अपना उस पर पूर्ण अधिकार रखते हैं। सभी दबाते हैं, वह दबता है। निर्जीव से सजीव सभी समान रूप से उसके साथ अपना व्यवहार रखते हैं। उसके जीवन में साँझ है, रात है, उषा नहीं, प्रभात नहीं, दिन नहीं। बादल है, किन्तु अमृत की जगह

गरल उगलने के लिए। बसन्त है किन्तु कोयल नहीं। उसके कान रात-दिन काग के कर्कश स्वर सुनते हैं। आप का रमेश हमेशा कई बोझिल समस्यायें लिये इधर-उधर भटकता फिरता है। उसे कभी कहीं चैन नहीं, कल नहीं। उसके जीवन में शान्ति नहीं, क्रान्ति है, सुख नहीं; दुःख है। उसकी सारी अभिलाषायें, आकांक्षायें जैसे सो गई हैं। उसमें चेतना नहीं, जीवन नहीं, कुछ नहीं।

माता-पिता ने उसकी अशान्ति देखी, व्यग्रता देखी, साथ ही विह्वलता और विवशता भी। वे अपने रमेश को जानते हैं, पहचानते हैं। उन्हें गर्व है कि उनका लड़का अवारा नहीं, बदमाश नहीं, किन्तु अभी से इतनी चिन्ताओं को ढोना उन्हें असह्य हो रहा था। उन्होंने उससे कुछ कहना चाहा कि देखा, वह वहाँ से अपने रूम में चला गया है। उन लोगों ने चुप ही साध रखना उचित समझा। उन्हें विश्वास हो आया, यदि इसके लिये कुछ न किया गया, तो निस्सन्देह उन्हें अपने रमेश से हाथ धोना पड़ेगा। एक दिन वह सब से, विश्व से भी नाता तोड़ कर अशोक के पास ही चला जायगा! जाकर दोनों सोने का उपक्रम करने लगे। आँख कभी झँपती भी, परन्तु तुरन्त उनकी आँखों के आगे रमेश नाच उठता।

प्रातः प्रायः सोया-सोया नव बजे रमेश उठा। नहीं इच्छा रहने पर भी माँ के हठ से उसे कुछ खाना ही पड़ा। फिर कोट पहना, जिसकी जेब में कुछ रुपये थे। और कहीं चल पड़ा। माता-पिता उसकी ओर एक टकसे देखते ही रहे, और वह दूर निकल गया। कल से उसके आगे तैमुन्ना एक गम्भीर समस्या बन कर नाँच रही थी। उसने मानो आदेश दे दिया, कि खबरदार मुझे ठगना नहीं, धोखा न देना, विश्वासघात न करना। संसार की शक्ति लेकर वह चाहता, जैसे भी हो, तैमुन्ना की रक्षा करूँ, और अपना बना लूँ। यद्यति ऐसा विश्वास उसे न था, तथापि एक धारणा बन गई थी, कल्पना खड़ी हो गई थी। अपनी कमजोरी लखता था, प्रयत्न विहीन, साधन रहित मानव विवशता की गोद में सोने के सिवा कर ही क्या सकता है। दुनिया को उलट-पुलट देने की इच्छा तो उसके लिए व्यर्थ ही है। एक स्वप्न मात्र है।

और बेचारा रमेश इसी में से है । संसार को समझता हुआ भी नासमझी का कार्य करता रहता है । वह जानता है इतने बड़े विश्व में हम छोटों की कोई पूछ नहीं, गणना नहीं, फिर अपने आप से लड़ता रहता है । जैसे यह अब उसकी आदत हो गई है, लत पड़ गई है ।

घर से कुछ दूर जाने पर वह गङ्गा तट पर पहुँचा । आज उसकी इच्छा हो रही थी, दूर तक नाव पर सफर करूँ । इसी उद्देश्य से उसने एक छोटी नाव जो डोंगी के रूप में थी, मँगाई । मल्लाह से कहा, दूर ले चलो, जब तक मैं न कहूँ वापस न लाना । पहले तो उसने आनाकानी की, पर मनमाना रुपये पाने के लोभ से वह ले जाने को प्रस्तुत हो गया । गङ्गा की धारा की ओर और कभी फैली धरती की ओर देखता हुआ रमेश जाने लगा । मल्लाह ने बीच ही में कहा, यों क्यों इच्छा हुई बाबू !

'तुम चलाते जाओ बीच में न बोलो । तुम नहीं समझ सकते कि कभी-कभी इच्छाओं का दमन करना बड़ा कठिन हो जाता है । आज दूर टहलने की इच्छा हुई, चल पड़ा । समझे, अब बीच में न बोलना' ।

मल्लाह कुछ सोचता हुआ डाँड़ खेने लगा । रमेश मानव की विभिन्न प्रवृत्तियों पर सोचने विचारने लगा । यवन-हिन्दू व्यर्थ की इस दो भित्तियों को ढाह देना चाहता था । सामाजिक शृङ्खला तोड़ देने के पक्ष में सभी रहते हैं, पर वह इस पक्ष में नहीं था । हाँ परिवर्त्तन अवश्य चाहता था । यह तो सभी चाहते हैं, विश्व भी चाहता है । किन्तु रमेश इसके अतिरिक्त यह भी चाहता कि मैं परिवर्त्तन के बाद जो सब के समक्ष समाज का आदर्श रूप खड़ा करूँ, वह सबों के लिए कल्याणकर एवं अनुकरणीय हो । तैमुन्ना की-सी दशा हिन्दू बालिका की भी होती है, फिर खास भेद-भाव क्यों ? संस्कार, संस्कृति, सभ्यता के ठीकेदारों को दो पृथक्-पृथक् सत्ता कायम करने का क्या अधिकार था । अमानुषिकता का प्रचार करना दोनों में से किसी की संस्कृति, सभ्यता नहीं सिखलाती, फिर अलग खिचड़ी पकाने से लाभ ! खास कोई एक व्यर्थ की स्वार्थ-भावना को लेकर यदि हम विश्व में कुछ खड़ा करें तो सत्य है कि वह अविलम्ब ही ढह जायगा । प्रयास या प्रबल प्रयत्न करने पर भी जिन्होंने

वैसा किया, वे देख चुके हैं कि इसका परिणाम क्या हुआ है ! भयङ्कर उत्पात देखने पर भी उनकी आँखें थकतीं नहीं,—आश्चर्य ! सीमित या घेरे में रहनेवालों को कौन-कौन-सी तकलीफें, कौन-कौन-सी मुसीबतें उठानी पड़ती हैं, यह वे क्या जाने ।

साँझ होने को आई । सूरज की किरणों में रमेश देख रहा था, कलवाली रात की तैमुना की आकृति उदास हो झाँक रही थी । अलसाई और कुछ जागरित भावना के प्रवाह में वे ही प्रवाहित होते हैं, जो खास कोई वस्त्र-विशेष से प्रभावित रहते हैं । रमेश की भावना की गति किधर किस ओर जा रही थी, यह कहना कठिन है, फिर भी यह सच है कि वह चारों ओर तैमुन्ना को और उसकी विवशता को देख रहा था, यह भी वह समझ रहा था, किसी भी दशा में उसका बचाना असम्भव है । किन्तु रह-रह कर यह भी इच्छा होती है, प्रयास कर देख ही लेने में क्या हानि है । वातावरण की ओर दृष्टि दौड़ाता तो ज्ञात होता, नहीं बच्चू, खेला नहीं है कि खेल लोगे, और जीत लोगे । समाज, वह भी विजातीय-सजातीय दोनों में उथल-पुथल मचाने का यह मतलब है, नृशंसता फैलाना । तलवारें भी चमक सकती हैं, खून की नदियाँ भी बह सकती हैं । और तुम्हारे लिए यह सर्वथा दुस्कर है ।

चन्द्रमा के स्निग्ध प्रकाश में, गङ्गा की गति में बाधा देते हुए, मल्लाह नाव लिए बढ़ा जा रहा था कि उसने कहा, बाबू, टिकेंगे नहीं ?

'क्यों, क्या हम दूर आ गये ?'

'हाँ, बहुत दूर ।'

'किन्तु जैसे लगता है, अभी निकट ही हैं ।'

'भूलते हैं बाबू !'

'हाँ, यह तुमने ठीक कहा । मैं बराबर भूलता हूँ, पर भूल भी तो नहीं पाता । नहीं, याद करना चाहते हुए भी याद ही करता जाता हूँ । तुम समझ सकोगे नाविक ! यह याद करना, कितना अनर्थ है, बुरा है । आदमी को यह विनष्ट करके ही छोड़ता है । कभी तुम भी कुछ याद करते हो ?'

नाविक की आँखें भींगने लगीं । पतवार हाथ से छूट गया था, फिर भी

नाव चल रही थी, चली जा रही थी। रमेश ने देखा, मैं ही नहीं, और भी याद में तपते हैं, जैसे सभी को यह बेचैन किये रहती है। उसने कहा, तुम्हें किसकी याद आई नाविक !,

'अपनी छौनी सिगरी की। वह मेरी चिलम बोझा करती, रोटी पकाया करती। छोटी ही थी कि उसकी माँ मर गई। उसी के लिये दूसरी शादी नहीं की। मगर यह कह कर वह भी चली गई कि बाबू, हरदम न रोया करना। और मैं ठीक इसके उलटे खूब रोया करता हूँ। वहीं तो, देखिये, ओ हाँ, नहीं धू-धू उसकी चिता जली थी ! जब कभी उसकी याद आ जाती है, और बेकल हो रो उठता हूँ।'

रमेश भी जैसे सामने ही देखने लगा, अशोक की चिता जल रही है। और वह बार-बार कह रहा है भूल की, भूल करते जाते हो। जलते हो, जलाते हो, और जलाते जाते हो। परिणाम बुरा होगा, तुम्हें इसका प्रायश्चित्त करना होगा। ठीक इसी समय नाविक ने देखा, उसके बाबू की भी आँखें गीली हो गयीं हैं। उसने कहा, याद कर रोने से शान्ति जरूर मिलती है बाबू !

पर पीछे इससे कुछ नहीं सधता है। अच्छा है, याद के बजाय भूलने ही की कोशिश करें।

'तुम ऐसा करते हो कि मुझे कह रहे हो ?'

नाविक की आँखें झुक गईं, मानो कहने लगीं, हाँ बाबू, यह नहीं होता; न हो सकता है। कुछ देर तक यों ही चुपकी निस्तब्धता छाई रही। फिर सहसा रमेश ने कहा, अरे ! देखो विपरीत धारा की ओर बही जा रही है।

नाविक ने भी देखा, नाव एक ऐसी धारा की ओर बही जा रही है, जहाँ उलट पड़ने की ही अधिक सम्भावना है। उसने तुरन्त दूसरी ओर मोड़ने का प्रयास करते हुए कहा, तट पर ले चलूँ !

'हाँ, ले ही चलो !'

नाव तट पर पहुँची। रमेश ने खुली चाँदनी में बहुत कुछ देखा। अब भी वह नाव पर ही था। और उसने कहा भी, मैं इसी में रहूँगा। नाविक का उसके साथ अपनापन का व्यवहार हो गया था, अतः उसने उसी में सो रहने

की व्यवस्था करते हुए कहा, कुछ खाने का प्रबन्ध करूँ ?

'नहीं, हाँ अपने लिए करो; मुझे कोई खास भूख नहीं है।'

'तो अकेले मैं कैसे खा लूँ !'

'ओ, तो मैं भी कुछ खा लूँगा !'

खा-पी चुकने के बाद भी रमेश जगा ही रहा। बेचारा नाविक गहरी नींद ले रहा था। जीवन के इस चढ़ाव-उतराव पर रमेश और खीझ रहा था। कुछ देर के लिए विगत घटनाओं को भूल कर वह चाहने लगा, बराबर मैं इसी तरह गङ्गा में घूमता रहूँ। यह घूमना ही सुख है शान्ति है। परन्तु स्मृतियों के घर दबाने से उसे चारों ओर विवशता ही दृष्टि-गोचर हो रही थी। तैमुन्ना का व्यापक प्रभाव तो उसे और विचलित कर रहा था। शायद कहीं अनर्थ न हो जाय, इसका भी उसे बड़ा भय था पर आश्चर्य, विरोधमयी प्रवृत्ति का अब भी सामना करने के लिए वह प्रस्तुत था।

व्यक्ति की प्रधानता में कभी-कभी समाज का महत्त्व घटने लगता है। किन्तु वह एक ऐसी शक्ति का केन्द्र है, जिससे कई व्यक्ति टकरा कर अस्तित्व विहीन हो सकते हैं। हाँ, यह सत्य है कि व्यक्ति अलग कोई खास सम्बल लेकर समाज का निर्माण कर सकता है। रमेश समाज का निर्माण कर सकता है, व्यक्ति बन कर, किन्तु बड़ा प्रयास करने पर भी शायद ही कोई वह सम्बल पाये। दूसरी बात यह कि एक सबल समाज के साथ लड़ने के लिए, उसका निर्मित समाज नितान्त निर्बल ही प्रमाणित होगा। और यदि कहीं तैमुन्ना का प्रश्न उठ खड़ा हुआ तो एक क्रान्ति मच जायगी जिसमें, रमेश जैसे कितने बह जायँगे। तैमुन्ना जैसी विजातीय नारी के लिए उसका प्रयास ही घृण्य समझा जायगा। और फिर उसका यह अधिकार कदापि नहीं कि यों ही किसी की बात में वह दखल दे दिया करे। यदि ऐसा करेगा तो निश्चय ही उसका फल बुरा होगा। मानवता की रक्षा करने के व्याज से कहीं अपना स्वार्थ साध रहा हो तब ! अपने आप की आकांक्षा पूरी करने के निमित्त कहीं उथल-पुथल मचा रहा हो तब !! संसार का हरेक व्यक्ति चाहेगा, चाहे जैसे भी हो तुम मर कर ही रहो; विलुप्त हो कर ही रहो। हृदय-दौर्बल्य भी उसमें इतना है कि

अपने आप को सँभालने में भी अक्षम ही रहता है। किन्तु आज सोच-समझ रहा था, पा रहा था, मुझमें बल है शक्ति है। परन्तु आँखें खोलने पर देखता, सर्वत्र शून्यता है; गोलाकार परिधि है, जिसमें मड़रा कर ही रह जा सकता हूँ। मेरा कोई स्थान नहीं, महत्त्व नहीं; आवश्यकता नहीं तो फिर वैसे रमेश को तैमुन्ना क्यों चाहती है! उससे कुछ की आशा क्यों रखती है! यह उसकी भी सब से बड़ी कमजोरी है, तो क्या वह भी कमजोर है, हाँ, है; किन्तु इससे क्या, मानव मात्र निर्बल है, अपूर्ण है।

इस समय रमेश का हृदय तर्क का केन्द्र था। निश्चित पूर्ण विराम पर पहुँचना चाहता, किन्तु पहुँच नहीं पाता। एक प्रकार से वह समस्त जीवन से उदास हो गया था। लड़ाइयाँ लड़ता, किन्तु सब में हारता गया। और अब इस हार से ऊब गया था, फिर भी आगे लड़ कर ही कुछ पाने के लिए उतावला है। सारी शक्ति लेकर तैमुन्ना के लिए वह लड़ेगा। इसी विचार को लेकर उसने नाविक से कहा, आगे के बजाय पीछे ही नौका ले चलो, और जल्दी ले चलो। नाविक ने देखा, धीरे-धीरे बाल किरणें उठ रही हैं, जय का घोष हो रहा है; नीरव प्रकृति कुछ गुनगुना रही है। गङ्गा की गति में तीव्रता थी, निस्तब्ध स्वर प्रखर हो रहा था; वातावरण गुञ्जित होने लगा। और नाव चल पड़ी। स्वर्णिम किरणों के आगे रमेश की आँखें नहीं ठहर रही थीं। प्रकृति की गोद में सुखद नींद सोने का उसे कम ही अवसर मिला था। रात के विचार-स्वप्न को सत्य का रूप देना चाहता, जो असम्भव था। इसीलिए उसकी आँखें धूमिल प्रभा लिये झपने लगीं, और वह सो गया। जीवन के कठोर दुर्दम प्रहर में मानव की सारी शक्ति का ह्रास होकर ही रहता है। रमेश शक्ति-सञ्चय का प्रयत्न करता, पर विफल हो जाता।

परिस्थितियाँ विरोध में इस प्रकार नित लड़ती रहतीं कि बची-खुची भी शक्ति का ह्रास हो जाना स्वाभाविक ही था। वह वह मगर था, जो पानी से दूर था, और जिसके पीछे बन्दूक लिए कई शिकारी हैं। वैसी दशा में कुछ करने को कौन कहे, अपने आपको बचाना भी कठिन है। संसार पर दृष्टिपात करने पर तो साफ विदित हो जाता, अकेले एक के लिए कोई काम दुष्कर

है। उसकी दशा ठीक उस मछली की-सी रहेगी, जो मछुए के जाल में रहती है। पर इस सिद्धान्त के आगे सब फीका है, व्यर्थ है कि कर्मवादी पुरुष कभी न कभी सफलता प्राप्त करता ही है, जीतता ही है। आशा, उमङ्ग, उत्तेजना, ये उसके घर हैं। उसका जीवन साँझ नहीं, रात नहीं, उषा नहीं, प्रभात है। परिस्थितियों से जूझना, लड़ना, उसका धर्म है, कर्त्तव्य है। तभी उसके सिद्धान्तों में बल रहेगा, और उसका प्रभाव समान रूप से समाज पर, व्यक्ति वर्ग पर पड़ेगा। विचारों में स्थायित्व रहेगा। विरोधक स्वतः शान्त हो जायँगे।

बहुत देर तक जब चारो ओर निस्तब्धता रही, चुप-चुप-साँय-साँय, मर-मर के अतिरिक्त, कोई स्वर नहीं हो रहा था, तब नाविक को आज अजीब लगने लगा। उसने रमेश के चिन्तन में बाधा देते हुए कहा, 'रात-दिन सोचने-विचारनेवालों को कभी चैन नहीं मिलती, सुख नहीं मिलता; चित स्थिर नहीं रहता। तुम हँसो, बोलो, खेलो, फिर देखो, चिन्तायें दूर हो जायँगी, दुःख भूलने लगेगा; किसी की याद में शान्ति मिलेगी !' बीच ही में व्यग्र-स्वर रमेश बोल उठा।

'हाँ भाई।'

'नहीं, झूठ, तब तुम भी अपने को ठगते हो। रमेश की याद में आग है, जो क्रान्ति का दूसरा नाम है, और जिसमें मुझे जलना ही पड़ता है, तपना ही पड़ता है।'

'खैर, तुम्हारा अपना अनुभव होगा, मुझे ऐसा नहीं लगा है, किन्तु यह तुमको मानना होगा बाबू, अधिक सोचने या विचारने पर आदमी आप में डोलने लगता है, झूला झूलने लगता है, और अन्त में रोने लगता है।'

'तुम क्या कहते हो, नाविक !'

हाँ बाबू मैं जो कहता हूँ, ठीक है, सच है। रमेश पा रहा था, अब मैं तीसरी ही धारा में बहा जाने लगा, अतः चुप ही रहना चाहिये। नाविक को अपने ऊपर गर्व हो रहा था, मेरी जीत हुई। इतने दिनों का अनुभव काम आया, आज वह सत्य प्रमाणित हुआ। ये बाबू अभी कच्चे हैं, दुनिया इन्होंने नहीं देखी है; उसे इन्होंने समझने का भी प्रयास नहीं किया है। सोचना-

विचारना तो एक दिन मानव को खा कर ही रहता है। नष्ट कर ही छोड़ता है। यह वह रोग है, जिसका कोई इलाज नहीं, दवा नहीं। आगे से बाबू नहीं सँभले तो निश्चय ही कभी न कभी शीघ्र ही संसार से बिदा ले लेंगे। करना अधिक चाहिये, सोचना या विचारना कम। वकील बाबू का लड़का इसीलिये तो मर गया। पर हे भगवान्, कोई मरे नहीं, खास कर बाबू। बेचारा कितना दुःखित रहता है। भीतर जैसे इनके, ओले छुपे हों, लुत्ती सुलगती हो।

नाविक की आँखों में आँसू आने लगे, सहसा उसके साथ रुक गये। वह रमेश की ओर देखने लगा। रमेश को भी बड़ा आश्चर्य हुआ नाविक की यह स्थिति देख कर। उसने पूछा, क्यों नाविक ! 'कुछ नहीं बाबू, बस, केवल तुम सोचो नहीं; विचारो नहीं, कभी हँसो भी।'

'इसमें तुम्हारा क्या स्वार्थ है !'

'यही कि मुझे सन्तोष होगा, तुम जैसों को हँसते देख मेरा रोम-रोम हँस पड़ता है।'

'क्या करूँ नाविक, मैं क्या नहीं चाहता हँसना। मगर हँसी भी तो आये !'

'ऐसा आखिर क्यों होता है बाबू ?'

"यह कैसे बताऊँ, मगर इतना जान लो, तुम्हारा बाबू रोने को ही आया है।"

नाविक ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह नाव खेने लगा। तेजी से नाव बढ़ने लगी। और वह चाहने लगा, खेता रहूँ, और खेता ही जाऊँ। आस-पास के दृष्य की ओर उसका ध्यान नहीं था। उसकी आँखें नीचे थीं। माथा घूम रहा था, शरीर हिल-डोल रहा था। रमेश फिर सोचने-विचारने लगा। अशोक की स्मृति निर्बल होने लगती तो तैमुन्ना की विवशता घूरने लगती। वह व्याकुल हो उठता, उन्मत्त हो उठता। कभी-कभी अब चाहने लगता है, इसी गङ्गा में विलीन हो जाऊँ। किन्तु लाभ। शायद कुछ नहीं। तो मानव कुछ नहीं के लिए थोड़े ही आया है, उसका अर्थ यही है। नहीं, तो यह व्यर्थ भ्रांतिपूर्ण विचार क्यों ! कार्य-कारण के आरोप के बिना ही हम सब को सोच कर, कुछ करने पर उतारू क्यों हो जाते हैं। धैर्य धारण कर समय की प्रतीक्षा

करनी चाहिए।

फिर वह लड़ने लगा। यही लड़ना तो उसके लिए जीवन और काल दोनों है। यदि लड़ता नहीं रहे तो सुलगता जायगा, सुलगता जायगा। और पीछे अनर्थ कर बैठेगा। और न लड़ा करे तो चैन नहीं, कल नहीं पड़ने की। द्वन्द्वात्मक विचारों के साथ जूझना क्या है, अपने को टी० बी० का शिकार बनाना है। किन्तु आत्मिक चेतना या आन्तरिक विश्वास, या बल, रमेश को वहाँ तक शायद नहीं पहुँचने दे। फिर भी एक अज्ञात शङ्का या भय तो अवश्य ही बना रहता है। मानव की कुछ ऐसी कमजोरियाँ हैं, जिनमें अप्रत्यक्ष रूप से बल भी निहित रहता है। रमेश में कमजोरियाँ जरूर हैं, किन्तु वे बल को भी लिए हुए हैं। यद्यपि वह यह लख नहीं पाता। एक प्रकार से उसके पक्ष में यह अच्छा है, अन्यथा वह बल भी कमजोरी ही में मिल जाता। यही कारण है कि बली पुरुष भी हारने-हारने-सा हो जाता है, चूँकि जहाँ अपने ऊपर उसे गौरव होना चाहिए, वहाँ गर्व होने लगता है, और यह गर्व उसे खर्व करके ही छोड़ता है। सौन्दर्य के आवरण में, जो आडम्बर का पुतला है, यह गर्व छिप सकता है। जहाँ वास्तविकता है, वहाँ इसका टिकना भी कठिन है।

मन मारता हुआ, झंखता-सा रमेश चारो ओर दृष्टि दौड़ाने पर देखने लगा, कुछ हो रहा है। अचानक उसकी दृष्टि उधर गई, जिधर पीपल का वृक्ष था, और जहाँ कुछ लोग इकट्ठे थे। उस नाविक से पूछा, यह भीड़ क्यों ! जरा पता तो लगाओ।

"यह जगह अच्छी नहीं बाबू, यहाँ बराबर भीड़ लगी रहती है; यहाँ के लोग बड़े बुरे होते हैं।" रमेश और उतावला हुआ। उसकी उत्सुकता बढ़ती गई। उससे रहा नहीं गया। उसने पुनः कहा, खैर पता भी तो लगाओ।

बेचारे नाविक ने नौका तट पर लगायी। भीत हो, भीड़ से सटे पार्श्व में, पहुँच ही पाया था कि कराहने का स्वर सुन पड़ा। उसकी हड्डी काँप गयी। बड़ा साहस कर उसने किसी एक से पूछा, क्या बात है ? किन्तु सभी गुरेड़ कर ही रह गये, कुछ कहना, उन लोगों ने आवश्यक नहीं समझा।

दोबारा जब उसने कुछ जानने का प्रयास किया तब इतना ही विदित हुआ, किसी ने किसी को हलाल कर दिया है। रमेश ने सुना, पर इतना ही तक वह नहीं जानना चाहता। वह जानना चाहता, आखिर क्यों! इस 'क्यों' के लिए वह नाव से उतरा, और उन लोगों के निकट पहुँचा, देखने पर उसे ज्ञात हुआ, यवनों की ही संख्या यहाँ अधिक है। परिस्थित से परिचित होने के पूर्व ही वह मूर्च्छित-सा होने लगा। उसे देख सभी चकित-से थे। उनके जानते, उनके बीच किसी को आने का क्या हक है! उधर रमेश उस मरणासन्न मानव की कातर आँखें देख रहा था। उसके पेट की चमड़ी बाहर हो आई थी। कुछ दूर जाकर उसने पता लगाया तो विदित हुआ, दूर का एक व्यक्ति था, जो निकट पार्श्व के एक यवन-युवती से सम्पर्क रखता था। यह यहाँ के लोगों को असह्य था, फलतः इसकी यह गति हुई, और वहाँ ही, उस कुएँ में, वह युवती डूब मरी।

रमेश गिरने-गिरने हुआ। उसने कहा, नाविक यहाँ से जल्दी नाव ले चलो नहीं तो मेरे लिए यहाँ खड़ा होना भी दूभर हो जायगा।

जरा भी अशान्त वातावरण में यदि वह पहुँचता, तो निस्सन्देह उसे भी जान गँवानी होती। पुनः उसने कहा, भगा ले चलो, यहाँ दानव बसते हैं, दानव, किन्तु मानव के रूप में, देवता के रूप में। चलो नाविक, देर न करो।

नाव चल पड़ी। नाविक कहने लगा, मैं कहता था न, यहाँ के लोग बड़े बुरे हैं।

"हाँ, तुम सच कहते थे। तो क्या नाविक, जगत् में ऐसे लोग भी होते हैं!"

"नहीं भाई, तुमने जगत् देखा ही कहाँ है। आज सब जगह ऐसे ही राक्षस वास करते हैं।"

रमेश पसीना-पसीना हो गया। पूर्व विचार, पूर्व परिस्थितियाँ, भविष्य का नंगा नाच लिए, उसके चारों ओर दौड़ रही थीं। वह सोचने लगा, यह हलाल करना सब जगह होता है! तैमुन्ना और मेरे बीच भी ऐसा ही होगा!

नहीं, नहीं, परन्तु मैं तो जैसे उसी के लिए सब करने जा रहा हूँ। क्रूरता के राज्य का बड़ा अधिक प्रभाव है। दानवता का भीषण अत्याचार देख चुका। मानव-दानव के युद्ध में दानव जीतता आया है, मानव हारता गया है। मैं भी हारूँगा, खोऊँगा; जीतना या पाना, मेरे लिए कोरी कल्पना है। दो समाज लड़ता तो एक बात भी थी। यहाँ तो दो समाज से एक को लड़ना है। पक्ष-विपक्ष का प्रश्न ही नहीं उठता। सिमट कर रह जाओ, अन्यथा रेत-रेत कर मार दिये जाओगे। नृशंसता, क्रूरता, हिंसा पर पला मानव दया, करुणा, ममता से कोसों दूर रहता है। प्रेम-फ्रेम को वह नहीं जानता, एकता-फेकता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। वह केवल जीना जानता है, लूटना, खसोटना, चूसना जानता है, और जानता है, कुत्तों जैसा केवल पेट पालना। यही उसका कर्त्तव्य है, धर्म है। इसके अतिरिक्त न वह कुछ जानता है, न जानने की चेष्टा करता है, न जानने की आवश्यकता समझता है।

रमेश की व्यग्र स्थिति देख, नाविक समझ गया, फिर हृदय-सागर में नया ज्वार उठा है। सान्त्वना देने या समझाने-बुझाने के लिए बेचारे के पास मस्तिष्क था नहीं। इस समय रमेश, अशोक की उपस्थिति चाहता था। बार-बार कह उठता, क्यों भैया, तुम्हें अभी ही जाना था। जब कि तुम जानते थे, तुम्हारा रमेश अपने आप को कभी सँभाल नहीं सकता है। लड़खड़ाना जानता है, और हमेशा लड़खड़ाता ही रहता है। तुम मुझे भी साथ लेते चलते। तुमने जाकर मेरे साथ शत्रुता की, अन्याय किया, जो तुम्हारे लिए सर्वथा अनुचित था। बोलो भैया, क्यों गये, इस समय? आओ न, सभी मिल कर एक साथ गला घोंट रहे हैं, मेरा दम घुट रहा है। आओ, आओ, अब मैं नहीं बचूँगा।

किन्तु वह आप टकरा कर रह गया। तट के एकान्त भाग की ओर देख रहा था, साथ ही रो भी रहा था। उसे लग रहा था, जैसे चारो ओर एक ही साथ कई चिताएँ जल रही हैं, जो सब अशोक की हैं, और सब को वही जला रहा है। क्षुब्ध होता हुआ, वह विश्राम चाहने लगा। थका-सा था, अतः सोना चाह रहा था; किन्तु नींद नहीं आ रही थी। इसके लिए वह व्याकुल हो

उठा। इस समय चाहे जैसे भी हो, कोई मुझे सुलाये। मचे कोहराम में नींद हराम है। जितना ही वह सोना चाहता उतना ही जगा-जगा लड़ता रहता। जितना ही शान्ति चाहता, उतनी ही क्रान्ति की आग में झुलसता गया। परिस्थितियाँ कहतीं, निकल भागना कठिन है। जूझना होगा, हाँ, जूझना ही होगा। पर सफलता कहती, सब व्यर्थ है, प्रयास न करो; वही होगा, जो तुम्हारे प्रतिकूल होता आया है। असन्तोष की आँधी में बह जाओगे, खो जाओगे। यदि अस्तित्व कायम रखना हो तो अलग ही रहो, इन पचड़ों से सदा दूर; तभी तुम मानव कहला सकते हो। दूसरी ओर मनुष्यता कहती, मुड़ो नहीं, लड़ो, लड़ना न छोड़ो। सच्चे अर्थ में वही मानव है, जो कर्त्तव्य पालन करना, और परिस्थितियों के साथ लड़ना जानता है। शेष, मानवता का ढोंग रचते हैं। अपने आप को, जो विलीन कर देता है, उसका विश्व में कोई मूल्य नहीं रहता है। जो खो देता है, वह पाकर ही रहता है, यह एक सत्य है, इस पर सदा विश्वास रक्खो अन्यथा तुम्हारा कोई अस्तित्व नहीं रहेगा, फिर तुममें और पशु में कोई अन्तर नहीं रह जायगा।

अब रमेश' को सच का विश्राम मिलने लगा। थकान मिटने लगी। वह यह कह कर सोने लगा कि नाविक, तुम्हारा बाबू सो रहा है; नियत, निश्चित स्थान पर उसे जगा देना; ऐसा न हो कि वह सोता ही रह जाय। चूँकि अधिक सोने पर वह कुछ न कुछ खो कर ही उठा है। समझे नाविक जगा देना, हाँ, जगा ही देना भूलना नहीं।

"नहीं, नहीं, बाबू आप सो जायें, मैं अवश्य जगा दूँगा।" एक बार रमेश ने नाविक की ओर देखा, और जाने क्यों, उसकी ओर देख कर मुसकुरा पड़ा। थोड़ी देर बाद रुक कर कहा, क्यों नाविक, तुम अपने कैसे मिले, क्यों मिले ! लगता है, युग-युगान्तर के तुम मेरे साथी हो, अपने हो। मुझे सब जगह अपने ही मिलते हैं, पर दुर्भाग्य, पीछे वे छोड़ जाते हैं, या छूट जाते हैं। तुम भी कुछ देर में छूट जाओगे, और मैं रह जाऊँगा, अकेला का अकेला ही। उस समय कैसा लगेगा नाविक !

नाविक रो रहा था। यह देख उसने पुनः कहा, सच नाविक, मेरा क्या

ठिकाना, कब, कहाँ, फिर मिलूँगा। अभी बड़ी-बड़ी मंजिलों को तै करना है। गिरता-पड़ता, जीता-मरता आऊँ तो याद कर लेना। हाँ, नाविक! याद कर लेना, चूँकि मुझे सभी भूल ही जाते हैं। क्यों नाविक, याद करोगे न?

'बाबू, मैं अपनी सिगरी को भले ही भूल जाऊँ, पर तुम्हें अब जीवन में कभी न भूलूँगा।' रमेश उसकी आँखों में देखने लगा, सच उसमें उसी के लिए स्नेह सञ्चित है। इसी बीच नाविक ने कहा, बाबू तुम सो रहो। मैं देखना चाहता हूँ, मेरा बाबू, सच की नींद में सो रहा है, या झूठ की झपकी ले रहा है।

'अच्छा, सो ही जाता हूँ।'

'हाँ, इस सो रहने में, मुझे तुमसे दूनी शान्ति मिलेगी, दूना विश्राम मिलेगा। हाँ, विश्वास मानो, सच, मुझे विश्राम मिलेगा, सुख मिलेगा।'

'सच!'

'हाँ, सच।'

नाविक प्रसन्न हो नाव तेजी से बढ़ाने लगा। और रमेश हँसता हुआ सोने लगा—सो गया।

तट आ गया। नाविक रमेश को चुप सोता देख जगाना नहीं चाह रहा था, फिर भी उसने जगाया। जगने पर आँखें मलते हुए रमेश ने कहा, अब आ गये!

'हाँ, बाबू!'

जेब से रमेश ने करीब बीस रुपये निकाले और नाविक को देना चाहा, तो उसने कहा, नहीं बाबू, अब मैं आप से रुपये न लूँगा। अपनों से हम रुपये नहीं लेते।

'ऐसा करने से मुझे दुःख जो होगा, याद करने के लिए तो ले लो।'

संकुचित होते हुए उसने रुपये ले लिए। कोट उठा कर, एक बार उसकी ओर खूब देख कर, वह घर की ओर जाने लगा। नाविक भी सजल नयन हो बेसुध-सा उसी की ओर देख रहा था।

१४

जलते दीप के प्रकाश में माँ ने कहा, रमेश ! अब मेरी सुनो, इस प्रकार अपने को न रक्खो। जीवन का उत्तर वाला हिस्सा, हम लोगों ने सोचा था अच्छा बीतेगा; किन्तु देख रही हूँ, अन्त दुःखद होगा।

'माँ, विश्वास मानो हृदय से मैं नहीं चाहता कि मेरे चलते तुम लोगों को दुःख हो, पर विवशता के लिए क्या करूँ !'

'सारी चिन्ताओं को छोड़ कर, या तो घर में रहो, या कहीं और दूसरे कालेज में पढ़ो। यों अपने आप को मिटा देने में कोई लाभ नहीं।'

"खैर, देखो क्या होता है।" इसके बाद वह अपने रूम में चला गया और सामने के अशोक के चित्र को देखता हुआ सोने का उपक्रम करने लगा। थोड़ी देर में माँ ने आकर देखा, रमेश सपनों में उलझा है। उसके कपोल पर आँसू के स्पष्ट चिह्न हैं। पपनियाँ कड़ी और सूखी हैं। मुँह पर जैसे रोशनी है ही नहीं। उदासीनता, मलीनता, खिन्नता के अतिरिक्त मानो उसके पास कुछ है ही नहीं। एक बार यह सब देख माँ की आँखें भींग गईं। अपनी एक मात्र सन्तान को इस प्रकार वह कदापि नहीं देखना चाहती थी। उसे उसकी यह स्थिति असह्य हो रही थी। वह इसके लिए व्याकुल हो उठी कि जैसे भी हो, रमेश की आकृति हँसती-सी रहे, इसका प्रयत्न करना चाहिए। जगा देने की इच्छा को दमन कर उसने सोचा, खूब सोने दूँ, जाने कब से न सो सका होगा। खेल-कूद की दुनिया का, इसने स्वप्न भी न देखा था कि एक साथ कई भीषण उलझी समस्यायों को सुलझाने लगा। देव ! रक्षा करना, रमेश की।

देव ने सुना हो या नहीं, किन्तु वह प्रार्थना कर गई, कुछ कह गई।

प्रातः उठने पर रमेश का सर भारी मालूम होने लगा। यद्यपि क्लान्ति के बजाय कुछ शान्ति अनुभव कर रहा था, फिर भी चाह रहा था, यहीं कहीं आस-पास जाऊँ, किन्तु माँ ने कहा, इस समय विश्राम करो, फिर पीछे कुछ करना।

'नहीं माँ, कहीं जाने ही दो; दूर नहीं जाऊँगा।'

'तबियत जो खराब है।'

'इससे कुछ नहीं होगा, तुम निर्भय रहो।'

'अच्छा, दूध तो पी लो।'

बिना आनाकानी के उसने माँ की आज्ञा का पालन कर लिया। तैमुन्ना से किसी भी प्रकार, वह इस समय मिलने के लिए उतावला था, पर कोई प्रयत्न असम्भव था। उस दिन वह जना भी नहीं पाया कि जिसकी तैमुन्ना व्यर्थ में याद करती है, वह रमेश ही है। शायद तब कहीं दोनों मिल सकते थे। सफलता भले ही न मिले, परन्तु शादी के पहले एक बार वह जता देना चाहता था, तैमुन्ना, रमेश को पहचानने में तुमने भूल की है। जैसा तुम सोचती हो, वह वैसा नहीं है। आशा के विपरीत उसमें ऐसी अनेक कमजोरियाँ हैं, जिनसे तुम शीघ्र ही घृणा करने लग जाओगी। तुम्हारी रक्षा वह क्या करेगा, जब कि स्वयं वह अपनी रक्षा करने में अक्षम है। कुप्रवृत्तियाँ उसमें भरी हैं, उसके विचारों में अस्थिरता है, समझ में भूल है। तुम उसकी अपेक्षा कर दो, उसकी ओर से विमुख हो जाओ। तुम्हारे किसी भी कार्य में वह सहयोग नहीं दे सकता। वह नितान्त दुर्बल है। अपने नये परिवार, संसार को बसाओ, उसी के बसाने में तेरा कल्याण है। हम जैसे मानव तुम्हारा बिनाश कर के ही छोड़ेंगे। हम लोग तुम्हारे जीवन में क्रान्ति का बीज बोते हैं। शान्त जल में ढेले का कार्य करते हैं। जीवन को ऐसी दिशा की ओर बढ़ाते हैं। जिसमें हर्ष, आमोद, उमंग का नाम तक नहीं, उधर अङ्गारे हैं जिनमें तुम्हें जलना होगा, तपना होगा, घुलना होगा। तुम्हें कभी भी कल नहीं पड़ेगी, चैन नहीं मिलेगी। हँसने के बदले रोना होगा, बिलखना होगा, आँसू में नहाना होगा, और उसी में सुख अनुभव करना होगा। मगर तुम अपने नूतन संसार में हँस सकोगी, अपनी आकांक्षाओं की पूर्त्ति कर सकोगी! नहीं, नहीं, उसमें भी तुम्हें तपना होगा, और तपना ही होगा।

अशान्त रमेश अविचारे पुनः निकल पड़ा। निरुद्देश्य कहा जाता! बढ़ता-बढ़ता उधर पहुँचा, जिधर उसका पुराना स्कूल था, जिसमें कभी

अशोक, आनन्द और वह तीनों मिल कर पढ़ा करते थे। जहाँ कभी उनकी हँसी-खुशी की दुनिया थी। कुछ देर के लिए यहाँ वह रुका, और कुछ याद करने लगा, दुहराने लगा। परिवर्त्तन के इस विचित्र काल पर उसे क्षोभ और आश्चर्य, सब से अधिक खेद हो रहा था। पुरानी स्मृति की आवृत्ति वह नहीं चाह रहा था, किन्तु स्वाभाविक घटनाएँ स्मृति का घना, सबल रूप लेकर; इस प्रकार खड़ी थीं कि उसमें उसे उलझना ही पड़ा। हृदय कह रहा था, इसमें कुछ देर के लिए अपने आप को भी भूल जाओ, पर परिस्थितियाँ कहतीं, मेरे ही अनुकूल चलना होगा। वहीं रहो, जहाँ मैं कहूँ, वही करो, जो मैं कहूँ। मानवीय प्रवृत्ति या प्रकृति दोनों में से किसी का मेरे आगे महत्त्व नहीं; किसी की एक नहीं चल सकती, मेरे आगे। भूलो नहीं कि मैं अजेय हूँ, और रहूँगी! हारना मैं नहीं जानता, इसे भी कभी भूलने का प्रयास नहीं करना। इसके विपरीत गये कि समझ रक्खो, कहीं के न रहोगे। खो कर ही रहना होगा। कुछ पा सकने की उमीद नहीं रखनी होगी, ठोकर ही खानी होगी। हाँ रमेश, वही करो, जो मैं कहूँ विश्वास मानो, विजय निश्चित है।

पुनः द्वन्द्व विचारों से वह लड़ने लगा। क्रान्ति के नग्न नृत्य में भूलने लगा कि मेरा क्या कर्त्तव्य होना चाहिए। किन्तु इसके बीच वह यह कभी न भूल सका कि किसी भी प्रकार शादी के पहले तैमुन्ना से मिल लेना है। पर प्रयत्न करने की उसने चेष्टा नहीं की, प्रयास नहीं किया। हाँ, इसे वह भूल नहीं सका है। दूसरी ओर अचानक ध्यान जाने पर उसने देखा, 'निर्मला' को, जो अमरावती की मित्र थीं। इच्छा हुई, ठहराने की, पर कोई लाभ न था, इसलिए वह उसे जाने ही देना चाहता था कि स्वयं वह मुड़ पड़ी। उसे लग रहा था, शायद रमेश उसे न पहचान सकेगा, किन्तु उसकी धारणा गलत निकली। खिन्नता की अवस्था में भी उसने पूछा, कैसे आना हुआ निर्मला!

'सब कहने में तो देर होगी, परन्तु इतना जानें, किसी विशेष कार्य वश आना पड़ा है। शायद लौटते समय कुछ कह सकूँ।'

'कब, कहाँ से लौटना होगा?'

'वहीं, उधर जो गाँव हैं, वहीं से कल या परसों लौट सकूँगी। कहाँ

मिलूँगी ?'

'कह नहीं सकता, पर यहीं कहीं आप पूछ लेंगी। हाँ, ये महाशय !'

'अमरावती के हृदय में उथल-पुथल मचाने वाले, यवन-युवक, नासीर हैं। इनका अध्ययन, वहीं, आगरे में ही होता है, आप एम० ए० के फाइनल में हैं।'

रमेश उन्हें ध्यान से देखते हुए सोचने लगा। फिर कुछ देर रुक कर उसने कहा, मिल कर प्रसन्नता हुई; याद रक्खेंगे।

दोनों चले गये, पर रमेश के मस्तिष्क में कई बातें चक्कर काटने लगीं। सोचने लगा, उथल-पुथल मचाने का क्या मतलब ! निर्मला इसके साथ क्यों ! शायद अमरावती के भी संसार ने पलटा खाया। कहीं, वहाँ भी अनर्थ न हो। होगा भी तो रमेश इसके लिए क्या करेगा। संसार में यह विचित्र तथागत नियम है, जिसमें पड़ कर सब को खोना नहीं पड़ता है। द्वन्द्वात्मक जीवन से लड़ना ही पड़ता है। हार-जीत का प्रश्न उठने पर इससे भी अधिक कुछ करना ही पड़ता है, किन्तु यह कैसी समस्या है, जिसका सुलझना, असम्भव-सा प्रतीत होता है। स्वत्व-परत्व की भावना, प्रबलता को क्यों लिए रहती है। जगत् में साम्य नहीं, वैषम्य है, इसको दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं। तब तो मानव की शक्ति का एक दिन ह्रास हो कर ही रहेगा, तो क्या दानवता का ही संसार मानवता समझेगा ! हाँ, ऐसा ही समय शीघ्र आने वाला है। अमरावती, नासीर, तैमुला, रमेश, अशोक और शायद लीला, ये सब अलग-अलग प्रश्न हैं,'. जिनका कोई समाधान नहीं ! ये सब निकट परिस्थिति की पोषिका, गम्भीर समस्याये हैं, जिनका हल होना, नितान्त कठिन है। और मेरे लिये इसमें पड़ना क्या है, विश्व को तो नहीं, किन्तु देश को आग में झोंक देना है; जिसमें वह जल कर खाक हो जायगा, बल्कि उसी के आगे एक दिन बड़ी समस्या आ खड़ी होगी। यद्यपि उसके आगे यह समस्या बहुत पहले से आ खड़ी है, परन्तु उसमें और भीषणता ला देना, ठीक नहीं।

सङ्कीर्ण विचार, विस्तीर्ण होता हुआ राष्ट्रीय बन गया। रमेश अपने राष्ट्रीय विचारों में प्रौढ़ता लाने तथा उसको व्यापक बनाने का प्रयत्न करने लगा।

उसके जानते, बिना कुछ किये परिवर्त्तन नहीं होने का। बिना अपने को आग में झोंके, वास्तविक आदर्श की स्थापना नहीं हो सकती। पहले अपनी आहुति देनी होगी।

सब होगा, पर इस समय क्या करना है! तैमुन्ना से मिलकर, कुछ कहना है।

सहसा इसी समय कल वाली गङ्गा तट की घटना उसे याद आ गयी। हलाल किया जाता हुआ मानव का विभत्स-दृश्य उसके आगे नाचने लगा, फलतः वह कह उठा, नहीं, यह सब नहीं होगा। नृशंसता और क्रूरता के बीच कोई आदर्श स्थापित नहीं होगा। उसके आगे आज का आदर्श, एक ढोंग साबित होगा। सच्चे आदर्श की स्थापना कदापि नहीं हो सकती।

साँझ के उदास प्राङ्गण में रमेश बड़ी शीघ्रता के साथ टहल रहा था। धीरे-धीरे सान्ध्य दीप जलने लगे। देखने का प्रयास करने पर भी, वह कुछ देख नहीं पा रहा था। रात होने लगी, और होती गई। उसके पैर बढ़ पड़े, और सीधे नगर के दक्षिण छोर पर, जहाँ गङ्गा तट था, पहुँचे। वह सिकतामयी पृथ्वी पर बैठ गया। किसी का आना-जाना बन्द था। भय को लिये हुए सून्यता बढ़ती जा रही थी। कभी कोई पक्षी कर्कश स्वर में बोल उठता, जो रमेश को अच्छा नहीं लग रहा था। बालू पर अनदेखे, वह कुछ लेखा लिखने लगा, फिर यों ही लेट गया। आकाश के तारों को, झूठ-मूठ गिनने का प्रयास कर रहा था कि उसके कान खड़े हो गये। रह-रह कर कोई मानवीय स्वर सुन पड़ता था। सोचता, इस समय इस शून्य विजन प्रान्त में मुझ-सा यह दूसरा कौन! दूसरा रमेश कहाँ से उपस्थित हो गया। अपने आप को रोकने में असमर्थ वह टोहता, टोहता उधर गया, जिधर धीमा-धीमा स्वर सुन पड़ रहा था। कुछ दूर ही से खड़ा-खड़ा देखने लगा कि वह मानव घबराने लगा, भय के मारे वह सिकुर गया। रमेश ने यह अवस्था देखी नहीं, किन्तु हिल डोल से समझ गया, वह डर गया है। निकट आकर उसने कहा, कौन भाई, अंधेरे में इस प्रकार बैठने का शायद मैं ही अधिकारी था, पर आप......!

वह और निकट आ चुका था। मानव, थोड़े जल में पैर डाले अब भी बैठा था, जाने क्यों अब उसे भय नहीं लग रहा था, फिर उसने रमेश को कोई उत्तर नहीं दिया। 'बोलो भी, मैं कुछ करूँगा नहीं।' इस बार बड़े ध्यान से देखने पर उसे विदित हुआ, नर नहीं, नारी।

'यों ही जब कभी मैं इस किनारे पर चली आया करती हूँ। यह किनारा, सारा किस्सा जानता है, मेरी थकान भी मिटाता है। इस दरिया के किनारे मैं अपने को सुखी पाती हूँ। यह दूसरी बात है कि कितनों की निगाह में मैं गिर जाऊँ। दुनिया, मेरे यहाँ आने का और ही मतलब लगाती है। खैर, अब मुझे उससे न कुछ कहना है, न शिकायत ही करनी है।' स्वर परिचित-सा लगा। रमेश ने सन्दिग्ध स्वर में कहा, कौन, तैमुन्ना !

वह चकित हो गई। उसकी समझ में नहीं आया, किसने इस स्वर में पुकारा। बदनसीब तैमुन्ना का नाम लिया ! उसने सहमते हुए कहा, आप कौन हैं ? 'उस दिन जो रात के उस खँडहर में मिला था, वही मैं।'

ओ, उस दिन वाले बाबू !'

'हाँ, उसी दिन से चाह रहा था, जैसे भी हो तुम से मिलूँ, किन्तु संसार के भय से नहीं मिल रहा था। कहो, कब शादी होगी ?'

'यही, परसों, पर यहाँ आप कैसे आए थे बाबू !'

'कहीं जी नहीं लग रहा था, पैर अचानक इधर ही बढ़ पड़े। वे सहमत थे, तुमसे मिलने के लिए। अच्छा, यह तो बताओ, आज तुम्हारी अम्मा ने यहाँ आने कैसे दिया ?'

'बड़ी मुश्किल से, मैंने कहा है, थोड़ी ही देर में आ जाऊँगी, किन्तु एक बात बतायेंगे ?'

'क्या !'

'आप हैं कौन ?'

'क्या करोगी जानकर, तुम्हें दुःख होगा।'

'नहीं, मुझे कोई दुःख नहीं होगा, आप बतायें।'

'मैं वही हूँ, जो एक रात को तुमसे टकरा गया था। मैं वही हूँ, जिसकी

तुम नित याद किया करती हो।'

तैमुन्ना को जैसे जौहर मिल गया हो, आँखों में हर्ष के आँसू उमड़ पड़े। वह उठ खड़ी हुई। कुछ गीले स्वर में कहा, मेरा दिल कहता था, कभी तुम जरूर मिलोगे। उम्मीद थी, जरूर मिलोगे।

'बैठ ही जावो तैमुन्ना, मैं भी बैठता हूँ।' दोनों बैठ गये। वर्षों के जैसे परिचित हों। रमेश ने कहना आरम्भ किया।

'जानती हो तैमुन्ना, शुरू में ही तुम अच्छी लगी। मेरा हृदय कहता था, तुम मुसलमान हो, तुम्हारे लफ़्ज भी यही कहते थे। मगर मुझे लग रहा था, तुम्हें शायद हिन्दू बुरा नहीं लगते होंगे। तुम दोनों को एक ही निगाह से देखती होगी। तुम्हारे जानने में दोनों बराबर होंगे। तुम्हारे स्वभाव ने मुझे अपनी ओर खींच लिया। उसी समय से चाहने लगा, तुमसे मिलूँ। मगर पहचानता तो था नहीं। और देखो न, तब से जाने क्यों, हम रात में ही मिलते हैं। परसों, आज, शुरू में, तीनों समय रात में ही मिले। अनजाने भूले-भटके हम मिले, पर अपने होकर मिले। अच्छा, सच कहना तैमुन्ना, तुम मुसलमान और हिन्दू, दोनों को एक ही निगाह से देखती हो!'

'तुमसे खोदा की कसम से कहती हूँ, अल्लाह जानता है, दोनों के लिए मेरे दिल में एक ही जगह है, दोनों को एक ही निगाह से देखती हूँ। यह दूसरी बात है कि ऐसे घर में जनमी हूँ, जो हिन्दू नाम से ही चिढ़ता है।'

'इसके लिए क्या करोगी! मेरे यहाँ भी ऐसे कितने हैं, जो तुम्हारे नाम से चिढ़ पड़ते हैं, उबल पड़ते हैं।'

'यह दुनिया निगोड़ी ऐसी है कि मजहब-मजहब में बटवारा करती है। भला, इन्सान-इन्सान में फर्क कैसा! कोई-कोई शख्स तो खून को भी दो रंग का साबित करता है। अल्लाह ने तो, दोनों को एक ही हाथ से बनाया। सूरत भी तो एक ही गढ़ी। खैर, छोड़ो इनको; यह बोलो, अब क्या होगा?'

'तुम्हीं बतावो है कोई उपाय? मेरा अशोक जिन्दा होता तो मुझे कोई परवाह न थी। जीवन का मानो उसने ठीका ले रक्खा था। हर समय, वह मेरी निगरानी रखता था। मेरे ही कारण मरा भी।'

'अशोक कौन है ?'

'है नहीं, था, मुझ अभागे का साथी या भाई।'

'क्या दुनिया से गुजर गया ?'

'हाँ तैमुन्ना, बड़ी-बड़ी साध लेकर मरा है। मैंने उसे कभी चैन नहीं लेने दी। मुझे इसका बड़ा पाप होगा। सच, मैं कभी सुखी नहीं रहूँगा।'

'क्या करोगे, जिन्दगी ही ऐसी होती है। इन्सान को इस जिन्दगी में बड़ी-बड़ी तकलीफें सहनी होती हैं। खैर, आगे का सोचो।'

'क्या सोचूँ, समझ में नहीं आता। तुम जानती ही हो, यहाँ मजहब के चलते क्या नहीं हो जाता है। हम-तुम तो जायेंगे ही, कई को भी साथ ले मरेंगे। तुम ही बतावो, खून बहाना, क्या मेरे हक में अच्छा होगा ?'

'नहीं, यह मैं कैसे कहूँ। खून की दरिया बहेगी तो क्या-क्या हो जायगा सब हमको निगलने पर उतारू हो जायेंगे। मगर तमाम जिन्दगी, रोते ही बीतेगी। घुल-घुल कर मरना होगा।

'इससे तो अच्छा समझती हूँ, आज ही इसी गङ्गा में डूब मरूँ।'

'नहीं, ऐसा करना पाप है, अपराध है। सहना ही चाहिए तैमुन्ना, सब कसक को, पीड़ा को सह लो। बाद में कभी हम मिलेंगे ही।'

'पर सहने की भी तो हद होती है बाबू! यह सहना ही तो मरना है।'

'इसी मरने में तो आराम है।

'खैर, तुम कह लो; मगर जीना हराम होगा।'

'ऐसा नहीं कहते तैमुन्ना!'

'क्या हर्ज है, हम कहीं दूर चले चलें। कमायेंगे और खायेंगे। जिन्दगी कट जायगी।' इसी बीच उसे हैदर की क्रूर आकृति याद आई। सोचने लगी, बापरे, हलाल कर देगा, रेत-रेत कर मारेगा। नहीं, नहीं बाबू, हम ऐसे ही रहें घुलना ही अच्छा है; यही जिन्दगी अच्छी है।

'क्यों, सहसा घबड़ा उठी।'

'कुछ याद आ गया था।'

'कैसी याद ?'

'एक मेरा भाई है, जो हिन्दुओं को देख नहीं सकता है। उस साल, जब दंगा हुआ था, जाने, कितनों को हलाल किया। उसका छुरा है, बड़ा खतरनाक है, चमचम चमकता रहता है। दूसरा कोई उसे छू नहीं सकता।'

'हाँ, ऐसा !'

'हाँ बाबू, हम ऐसे ही रहें; लेकिन .....'

'लेकिन क्या, आज रुको नहीं तैमुन्ना सब कह डालो; छिपाओ नहीं। अन्यथा मुझे दुःख पहुँचेगा।'

'मैं हाथ जोड़ती हूँ, कभी तुम भूलना मत। तैमुन्ना को याद रखना। न चाहती हुई भी बरबस तुम्हें वह याद करती है। जानती नहीं क्यों, किस लिए ! लेकिन तुम्हारी याद में ही उसकी कब्र होगी। बस, यही कि तुम उसे याद नहीं करना तो भूलना भी नहीं।'

रमेश रो रहा था। उसके जीवन में यह तैमुन्ना भी अजीब मिली। जान न पहचान, दो पृथक् धारा टकरा कर भी गजब मिली। स्वप्न में भी इनका मिलना असम्भव था। ईश्वर तुम भी विचित्र हो। समझ में नहीं आता, तुम्हारा इसमें क्या मतलब था कि हिन्दू-मुसलमान को एक में गूँथने का प्रयास किया। किया भी तो वियोग की परिस्थिति क्यों आने दी। अब जो तैमुन्ना का विनाश होगा, उसका दोष किसके सर पर मढ़ा जायगा। किन्तु तुम्हारा इसमें दोष नहीं, इन मानवों का जो दानवों से भी बदतर हैं, दोष है। कुछ देर रुक कर कहा, विश्वास रक्खो, मैं यदि तुझे भूल जाऊँगा, तो दुनिया के किसी की भी याद नहीं रख सकता। अच्छा, अब देर न करो; नहीं तो अम्मा आयेगी।

तैमुन्ना उठी और चलने को हुई, फिर रुक पड़ी; और रमेश को झकझोरती हुई कहने लगी. बाबू, सच, भूलना नहीं; नहीं तो एक दिन मैं इसी दरिया में डूब मरूँगी।

'विश्वास मानो, याद रक्खूँगा; किन्तु मेरी भी एक बात, बिना मिले कभी जान गवाने की मूर्खता न करना।'

'अच्छा।'

यह कह कर धीरे-धीरे जाने लगी। अमा की घनी रात थी। बड़ी चेष्टा करने पर भी रमेश उसे नहीं देख पा रहा था। पीछे वह भी घर चला गया।

१५

किरण फैल चुकी थीं। रमेश के कमरे में धूप आ चुकी थी, पर अब भी गहरी नींद ले रहा था। माँ ने जगाया, रमेश, उठो भी। सूरज अब आकाश पर चढ़ेगा।

'नहीं माँ, अभी सोऊँगा; रात भर का जगा हूँ।' करवटें बदलते हुए उसने कहा। उसके पिता ने भी कहा, सोने ही दो। वह सोता भी है कभी, तुम कुछ सोचती भी नहीं; सोने दो।

उसके फिर सो चुकने के बाद पिता ने देखा, कैसा सौम्य चेहरा है। दुनिया के छल प्रपञ्च से दूर रहने वाले रमेश को किसने विकल कर रक्खा है! जिसने ऐसा किया, उसे कहीं, कभी चैन न मिले। कभी वह सुख की नींद न सोए। शान्ति, जैसे इससे कोसों दूर भाग गयी। रात-दिन चिन्ताओं के भार से दबा रहता है। भगवन्, रमेश को पहले जैसा कर दो। दुनिया का इसने कुछ नहीं बिगाड़ा है। तुम भी तो एक प्रकार से पिता ही हो; तुम्हारा भी तो हृदय पितृ-हृदय है। तुम यह क्यों नहीं समझ पाते कि पिता को अपनी सन्तति कितनी प्रिय होती है। यदि सच का कोई पिता है, तो दुनिया की सारी जायदाद एक तरफ, और उसकी अकेले एक औलाद एक तरफ।

कुछ देर तक मन ही मन नाना प्रकार की बातों को सोचते रहे, फिर आँखों में करुणा लिये कहीं बाहर चले गये। रमेश को सब था, आस्तिकों के कथनानुसार ईश्वर नामधारी अलख जीव ने उन्हें सब कुछ दे रक्खा था। कर्मवादी नास्तिकों के अनुसार कर्मण्यता ने सारी वस्तु दे रक्खी थी। फिर भी जैसे इन वस्तुओं से उसे कोई लाभ नहीं, कोई प्रयोजन नहीं। उसके लिए ये सब बेकार हैं, व्यर्थ हैं; इनकी कोई जरूरत न थी। बस, जरूरत थी तो इसी की कि वह जो चाहे, सब पूरा हो जाय। ऐसी कोई घर में वस्तु होनी चाहिये थी, जो संसार की सारी शक्ति से भी अधिक शक्ति रखती होती। राष्ट्र में उथल-पुथल मचा देने के लिए वह पर्याप्त होती। वह अपने अशोक को लौटा लेती,

तैमुन्ना की रक्षा करने में सदा समर्थ होती। हिन्दू-यवन का प्रश्न ही नहीं उठने देती। एक साँचे में ढाल देती। मगर यह नितान्त दुर्लभ है, कोरी कल्पना, तनिक भी सत्यता नहीं।

दोपहर के समय रमेश की आँखें खुलीं, स्वप्न देखने की-सी उसकी अवस्था थी। ऊपर-सी वस्तुओं का स्वप्न देखता हुआ जगा था। यों ही आँखें खोल कर सोये-सोये कुछ देख रहा था, सोच भी रहा था। इसी बीच माँ आयी। निकट आकर उसने देखा रमेश जगा ही है, पहले तो बहुत दिन बाद उसे यह बचपना देख हँसी आयी।

फिर उसने कहा, पहले की आदत रह ही गई रमेश !

वह चुप रहा। मानो सुना ही न हो। पुनः माँ ने कहा, सुनते नहीं, उठो, चलो। जगे सो रहे हो !

'ओ, माँ !'

'हाँ, उठो।' अँगड़ाइयाँ लेता हुआ वह उठा और दैनिक-कार्य से निपटने लगा।

खा-पी कर यों ही रमेश अपने रूम में बैठा था कि उसके पिता ने प्रवेश किया। वह उठ बैठा। अपने पिता से भय नहीं खाता था, किन्तु किसी भी अवस्था में उनका सम्मान करना नहीं भूलता था। उनके प्रति उसकी बड़ी श्रद्धा थी, उन पर अटल विश्वास था। उनके आगे छिपना-छुपाना नहीं जानता था। जब उन्होंने बैठे रहने को ही कहा, तब वह एक ओर बैठ गया। पिता ने कहा, रमेश, आखिर यों कब तक जीवन-गाड़ी चलती रहेगी। पढ़ना-लिखना छोड़ कर, यों जहाँ-तहाँ मारे-मारे फिरते हो; इससे कोई लाभ नहीं। जीवन में कुछ करना चाहिये। हम लोग भी आखिर अधिक दिन तक रुक नहीं सकते, हमारी अवधि भी थोड़े ही दिन की है। वैसी दशा में कुछ करना चाहिये; सोचना चाहिये। तुम्हारी माँ कहती है, तुम बहू लाते, हँसते-खेलते सब कार्य सँभालते, पर तुम्हें जाने क्या हो गया है। कुछ सुनने के लिये प्रस्तुत ही नहीं रहते हो।

'हाँ क्यों, हमेशा तो सुनता ही हूँ, आदेशों का पालन करता ही हूँ किन्तु

इधर एक ही साथ ऐसी परिस्थितियाँ आती गयीं कि उनके साथ जूझना पड़ रहा है।'

'जूझने में तुम्हें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि तुम क्या हो। अपने आप को खोकर परिस्थितियों से जूझने वाले कभी-कभी अनर्थ भी कर बैठते हैं।'

'सभी ऐसा नहीं करते होंगे।'

'तुम अपने को उन सभी में ही रखते हो?'

'शायद हाँ।'

'तब मुझे कुछ नहीं कहना है। हाँ, अब कहाँ पढ़ोगे?'

'कोई, निश्चय तो नहीं किया है, लेकिन आशा है कि आगरा ही पढ़ूँगा।'

'जहाँ कहीं पढ़ो, शीघ्र पढ़ो।'

'जी।'

पिता जी दूसरी ओर चले गये। रमेश भी कुछ विचारों में मग्न बाहर कहीं जाने को हुआ कि उसने सामने निर्मला को उपस्थित पाया। विगत को भूलने लगा, और वर्त्तमान पर सोचने लगा। निर्मला का इस प्रकार आना-जाना उसे अजीब-सा लग रहा था। उसने यह भी देखा कि उसके ललाट पर घबराहट के कई चिह्न हैं।

कुछ रुक कर उसने पूछा, निर्मला, मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।

'हाँ, ऐसी ही कुछ बातें हैं।'

'मैं उन्हें सुन सकता हूँ?'

'अवश्य, किन्तु तत्काल मैं सोना चाहती हूँ।'

'और खाना नहीं!'

'वह भी, किन्तु ठहर कर, चूँकि आज कई दिनों से सो भी न सकी हूँ।'

'अच्छा उसी की व्यवस्था कर दी जाती है।' माँ से कह कर उसने निर्मला के विश्राम की व्यवस्था कर दी। आप कई घटनाओं, प्रस्तुत विचारों पर सोचने लगा। अमरावती और उसका जीवन, नासीर और निर्मला, उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। सहसा परिवर्त्तन पर वह बड़ा भय खाता था। कई आशङ्कायें मन में उठती थीं। सन्देह, आश्चर्य दोनों को एक ही दृष्टि से

देखने पर अँधेरा और प्रकाश, दोनों पाता। और इन्हीं दोनों में फिर एक बार अपने आप को भूलने-सा लगा। चञ्चलता, उसमें समा गई। सारी बातों को जाने बिना जैसे वह नहीं रह सकता, हाँ, उसे नहीं रहा जायगा। निर्मला के पास वह आया, किन्तु प्रस्तुत आकृति की अचानक निषेध पर उससे कुछ पूछा नहीं गया। पुनः लौट आया, जीवन में विश्राम भी तो आवश्यक है। सभी उसी के जैसा तो नहीं हैं।

जीवन-दीप के लघु-प्रकाश में रहने वाली अमरावती की स्मृति में व्यथा का अनुभव करता हुआ रमेश सान्ध्य प्रकृति में विचरने लगा। बाहर-भीतर डगमगाता हुआ एक निश्चित पथ पर पहुँचना चाह रहा था कि उसने देखा, निर्मला जग गई है। अपनी उत्सुकता को न छिपा सकने के कारण उतावले शब्दों में उसने कहा, कहानी कह डालो निर्मला, अन्यथा मैं शान्त न रह सकूँगा। द्वन्द्व को बढ़ाना अब ठीक नहीं। चूँकि बराबर से जो मेरे आगे घटाव का चिह्न था और रहा उसके परिणाम में अब शेष के लिए शून्य अवशिष्ट है।

इसका अर्थ मैं नहीं समझ पा रही हूँ, किन्तु देख रही हूँ, तुम इसके लिए बड़े उद्विग्न हो, अतः कह रही हूँ; आगरा में सहसा एक दिन नासीर से अमरावती का परिचय हुआ। धीरे-धीरे इसी परिचय ने घनिष्ठता का रूप धारण कर लिया, फलतः एक दूसरे को कुछ क्षण का भी अभाव खटने लगा। सभी तुम तो हैं नहीं। तुम कमजोर थे, किन्तु इस कमजोरी को छिपाते नहीं, प्रकट कर देते थे, अतः बली भी कहला सकते थे। खैर, नासीर ने अपनी कमजोरी प्रकट नहीं की, धोखे के आवरण में अमरावती को उसने रखा। जैसा कि तुम भी जानते हो, राष्ट्रीय विचारों के समावेश की वजह समाज से सदा लड़ने की उसकी प्रवृत्ति रही है। यह जानते हुए भी कि नासीर एक यवन-युवक है, उसने उसके साथ अपना गहरा सम्पर्क रखा। एक अवस्था आती है, जो उमङ्ग-आवेश, ज्वार का केन्द्र कहलाती है, जिसके आगे भयङ्कर आँधी भी ठहर नहीं सकती। इसी में एक दिन अमरावती अपने आप को भूल गई, और स्वार्थी नासीर अपने को न भूलता हुआ भी भूलने का बहाना कर अपनी चातुर्य शक्ति के बल पर उसने आन्तरिक आकांक्षा की जो उग्रता को लिए

रहती है, पूर्ति की। इसके बाद जब अमरावती की विचार-शक्ति ने झकझोड़ा, तब उसे ख्याल आया, मैं कमजोर थी, संसार और समाज के लिए। भविष्य के एक भाग ने कहा, रमेश ने तुम्हें एक सीख दी, जिससे तुमने लाभ नहीं उठाया। कुछ काल पश्चात् नासीर के आगे उसने यह प्रश्न रक्खा कि समाज के विरुद्ध या उसके विपक्ष में, हम दोनों एक सूत्र में बँध जायँ। इसका अर्थ नासीर ने जब विवाह समझा, तब लगा, अपने को उससे छुड़ाने। उत्तर में उसने यही कहा कि अपने समाज, अपनी जाति से लड़ने की शक्ति मुझ में नहीं, मेरा मजहब दूसरा है। अमरावती इस निश्चित स्वार्थ-पूर्ण उत्तर से घबराने लगी। उसने दृढ़ स्वर में कहा, देखो नासीर, धोखे की प्रवृत्ति बहुत बुरी है। कुछ भी सोचो, समझो, मनुष्यता भी कोई चीज है। मजहब, जाति, समाज, तुमको यह नहीं सिखलाता कि तुम किसी के साथ धोखा करो।

जो भी हो, कुछ सुनने को वह प्रस्तुत न हुआ। महीनों बाद जब फिर उसने कहा, नासीर, किसी के जीवन को नष्ट करना अच्छा नहीं। एक रमेश नाम के व्यक्ति ने मुझ में आरोप कर दिया कि सब के आगे वास्तविक आदर्श स्थापित करना ही मनुष्य का श्रेष्ठ धर्म या कर्त्तव्य है। मैं भी चाहती थी, हम दोनों विवाह कर, दो विभिन्न कट्टर जाति के समक्ष एक आदर्श स्थापित करें, पर तुम्हें यह इष्ट नहीं। आखिर मेरा भी तो जीवन है!

इतना सुनने के बाद उसने हिल डोल किया। अपने को बचाते हुए नासीर ने घर वालों पर यह फेंक दिया। उसे तो विश्वास था ही कि इस सम्बन्ध पर सब को एक ही आपत्ति होगी। किन्तु, अमरावती को जैसे आशा की एक किरण दीख पड़ी। उसने अपनी निर्मला को कहा, तुम नासीर के साथ घर जाओ, और इसके घर वालों से आग्रह करो, परिवार मेरे साथ उसका विवाह कर दे। परन्तु नासीर का परिवार, इस पर उबल पड़ा। नासीर भी एक ओर खिसक गया। बाद में एक अज्ञात भय, एवं अज्ञात आशङ्का से मैं भाग खड़ी हुई, चूँकि वहाँ के वातावरण से ऐसा लग रहा था, मानों सभी, कुछ कर बैठेंगे। यही तो घटना है, जो कहानी है।'

घण्टों रामायण सुनने के बाद रमेश अनुभव कर रहा था, तलमला कर

गिर पड़ूँगा। उसने अचेतन अवस्था में कहा आश्चर्य, निर्मला, अमरावती इतनी कमजोर हो गयी। समाज से लड़ने वाली उसकी प्रवृत्ति लुप्त हो गई। संघर्ष से जाने क्यों, वह पीछा छुड़ाने लगी। सच मानो, निर्मला, कदापि मुझे विश्वास न था कि आखिर अमरावती का एक दिन पतन होकर ही रहेगा। यवन-हिन्दू दो जातियों का, उसे अच्छी तरह परिचय मिल गया था, फिर भी जैसे वह अनभिज्ञ सी इतनी बड़ी घटना का प्रबल कारण बनी। क्या उसने कभी मेरी भी याद की! हाँ, तो किस रूप में। कुछ बता सकती हो, यदि कोई आपत्ति न हो, चूँकि मैं इस पर सोचना चाहता हूँ।

'तुम्हारी बराबर याद करती है, एक सम्बल के रूप में।'

'सम्बल के रूप में! नहीं, नहीं, गलत कह रही हो।'

'सच मानो, सम्बल के ही रूप में।' रमेश के आगे यह भी एक भयङ्कर समस्या बन गयी। वह चाहता था, सारी चिन्ताओं को दूर फेंक कर मैं अब केवल अध्ययन ही करूँ। पर वह देख रहा है, फिर आँधी उठने वाली है। रह-रह कर विचारने लगा, आगरा से हट कर और ही कहीं पढ़ूँ। प्रयाग! नहीं-नहीं, अब प्रयाग नहीं। वह अशोक की गहरी स्मृति का केन्द्र हो गया, मैं वहाँ कुछ नहीं कर पाऊँगा। निश्चय ही उसकी मृतात्मा बोल उठेगी, तुम हत्यारे हो। कमजोर हो, दब्बू हो, एक निरीह व्यक्ति की मृत्यु का सब से बड़ा कारण हो। वहाँ भी नहीं, और कहीं। पर इस प्रकार पिण्ड छुड़ाना क्या अच्छा है! मानवता क्या इसे स्वीकार करेगी! क्या यह कमजोरी नहीं कहलायगी! हाँ, यह ठीक नहीं, पर आखिर ठीक ही क्या है! रमेश पुनः झुँझलाने लगा। निर्मला ने इस व्यग्र प्रवृत्ति को देखा तो रमेश के प्रति उसे दया हो आयी। अपने आप पर उसे क्षोभ होने लगा कि क्यों रमेश को जगाने गयी! वह यह जानती थी कि रमेश के पीछे बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक घटनायें हैं। सब का उसने न चाहने पर भी सामना किया। जीवन के द्वन्द्व का उसे अनुभव नहीं है, फिर भी संसार का उसे थोड़ा-बहुत ज्ञान है। उसने सान्त्वना के स्वर में कहा, इसमें घबराने की आवश्यकता नहीं रमेश! नासीर और अमरावती के विषय में सोच कर इस प्रकार अपने आप से मत लड़ो। कर्म-परिणाम में तुम्हारा इस प्रकार खोजना

ठीक नहीं।

इतना सुनने की उसे थोड़े ही फुरसत थी। वह तो सोच रहा था, और सोचता ही जा रहा था। निर्मला के एक-एक शब्द सिनेमा की रील की भाँति गुज़र रहे थे, और वह बड़े ध्यानपूर्वक उसको सुन रहा था। अमरावती की विवश अवस्था का कारण नासीर है, और तैमुन्ना की विवश, दयनीय, शोच-नीय अवस्था का कारण वह है। किन्तु दोनों की अवस्था में महान् अन्तर है, समाज या जाति का दोनों जगह प्रश्न उठता है, पर समाधान की कोई आशा नहीं, किन्तु यह सच है कि तैमुन्ना के अधिक विरोध में विवशता मुँह बाये खड़ी है।

रात के अँधेरे में दीप जला। सहसा रमेश को याद आई, निर्मला ने अभी तक कुछ खाया नहीं है। उसने माँ से जाकर कहा, उसके खाने का प्रबन्ध कर दो। माँ बहुत कुछ जानना चाहती हुई भी, चुप रही। वह जानती थी, अधिक छेड़ने पर वह झुँझला उठता है, विशेष कर आजकल। निर्मला भोजन करने बैठी तो डरती हुई माँ ने पूछा, रमेश तुमसे कुछ कहता था!

'नहीं तो!'

'पढ़ेगा या नहीं, कुछ भी!'

'अभी तो कुछ नहीं।' भोजन के बाद रमेश के निकट आकर निर्मला ने कहा, पढ़ना-लिखना, सब छोड़ दिया है?

'हाँ, तो।'

'यह अनुचित है।'

'अब मेरी समझ में नहीं आता है कि संसार में उचित क्या है।'

'मैं तुममें परिवर्त्तन देखती हूँ।'

'चूँकि यह आवश्यक है।'

'जो भी हो, पढ़ना न छोड़ो।'

'यह तो मैं भी चाहता हूँ।'

'चाहने से क्या होगा, पढ़ो भी।'

'आगे इसी का प्रयत्न करूँगा।'

'कहाँ ?'

'निश्चय तो नहीं किया है।'

'आगरा ही आओ न !'

'देखो, और अधिक आशा है, वहीं की।'

'कब तक ?'

'यह तुरत नहीं कह सकता, पर जहाँ तक शीघ्र ही।'

'तब तो निश्चय ही अमरावती के सहायक होगे। वह तुम्हारा आना सुन कर अवश्य खुश होगी।'

'निर्मला, तुम विश्वास मानो, अब मैं इतना कमजोर हो गया हूँ कि शायद ही किसी की सहायता कर पाऊँ। रमेश, रमेश नहीं रह गया।

'मैं तो वही समझती हूँ।'

'यह तुम्हारी भूल है।'

'जो भी हो, खैर, छोड़ो इनको। कल सुबह चली जाऊँगी।'

'कल ही ?'

'हाँ, अमरावती घबराती होगी।'

प्रातः स्वयं स्टेशन तक जाकर रमेश ने निर्मला को पहुँचा दिया।

साथ ही यह भी उसने कहा, व्यर्थ की मुझसे आशा न रखना। लौटते समय में जाने क्यों, फिर एक बार उसकी इच्छा हो रही थी, उसी मल्लाह के साथ नाव पर चढ़ कर दूर की सफर करने की। इसी ख्याल से वह तट पर गया। किन्तु प्रयास करने पर भी उसकी आँखों ने परिचित उस मल्लाह को नहीं देखा कुछ क्षण रुक कर दूसरे नाविक से उसने कहा, उस पार ले चलो।

उस पार पहुँचने पर यों ही एक ओर सो गया किन्तु ज्यों ही उसे गहरी नींद लगी, त्यों ही दाढ़ी बढ़ाये, हाथ में बेड़ा पहने, कड़ी मूछ वाला कोई व्यक्ति उसे घूरने लगा। बहुत चेष्टा करने पर ऐसा लगा, जैसे वह रमेश को पहचान गया। निकट पार्श्व में बैठ कर वह रोने लगा। बहते आँसुओं का रुकना जब कठिन होने लगा, तब इस भय से कि कहीं भभक न पड़ूँ, जरा दूर हट गया। उसे भय था, शायद रमेश जग न जाय। जीवन इस प्रकार एक-एक

घटना पर अवलम्बित है कि मनुष्य उस पर कुछ सोच ही नहीं सकता, समझ ही नहीं सकता है। समझने पर भी निष्कर्ष पर पहुँचना, उसके लिये और कठिन है।

आन्तरिक स्थिति उषा की धुँधली प्रभा लिये रहती है, जिससे कुछ होता-जाता नहीं। घटना का सूत्र, व्यापक रूप से कभी-कभी बिजली के करेण्ट् का काम करता है, जिसके लगने से मनुष्य क्या से क्या हो जाता है। सारी सत्ता उस समय विलीन हो चुकी रहती है। रमेश के आगे अब सत्ता का कोई प्रश्न नहीं था, फिर भी तैसुना सब कुछ सोचने को बाध्य करती ही। इस समय भी ऐसे ही विचार-स्वप्नों में वह विचर रहा था कि उस व्यक्ति ने खाँसा। सहसा उसकी लगी नींद उचट गई। उठ कर आँखें मीचते हुये उसने कहा, ओ, तुम! तट पर मैंने तुम्हें ढूँढ़ा, पर न मिले। खैर, कहीं जाना नहीं न है? जरा सोने दो; और तुम भी यहीं रहो; साथ ही हम चलेंगे।

और फिर वह सो गया।

बहुत पहर बाद जब वह कड़ी धूप अनुभव करने लगा तब उठा, और मल्लाह की ओर देखने लगा। कुछ क्षण रुक कर उसने पूछा, इधर तुम कहाँ आये थे?

'कल बिटिया का जन्म दिन था। मैं साँझ ही को चला आया। उसकी चिता उधर ही जली थी। रात भर देखता और रोता रह गया।'

'पर रोने से क्या होगा, यह मूर्खता आगे से न किया करो।'

'जी थोड़े ही मानता है बाबू!'

'मनाना पड़ता है।' नाविक की आँखें उधर ही घूम गयीं, मानो वे कहने लगीं, तुम ही मानते हो!

रमेश का सर झुक गया। अतीत स्मृति फिर सजीव हो उठी, और फिर वह अपने को असहाय अवस्था में पाने लगा। नाविक ने झट प्रसङ्ग बदला।

'इतने दिन कहाँ थे बाबू!' यद्यपि पुनः भेंट होने की उसे आशा न थी, फिर भी उसने पूछा। जीवन के क्षण एवं परिस्थिति से वह परिचित था। अपनी अवस्था के अनुसार बहुत कुछ समझता भी था। रमेश की परिवर्तित

आकृति का बहुत कुछ अर्थ लगा लेता। पुनः उसने दुहराया, कहाँ थे बाबू !'

'यहीं कहीं अपने भाग से लड़ रहा था।'

'यह लड़ना कब तक जारी रहेगा, इस पर कभी सोचते क्यों नहीं बाबू !'

'सोचता हूँ, पर कोई लाभ नहीं होता।'

'तो जीवन में कभी कल नहीं पड़ेगी।'

'इसका उपाय ही क्या है।' नाविक आगे कुछ कहने में असमर्थ था। वह उपाय क्या बताये। चिन्ताशील मानव भाग्य पर सोचता ही जाता है, उससे लड़ता ही जाता है; परिणाम में उसका पतन हो या उत्थान, इस पर वह कभी नहीं सोचता, न परवाह करता। फिर कुछ देर रुक कर उसने कहा, चलो नाविक, कहीं चलें।

डोंगी लगी थी। उसी पर वह चढ़ गया। डोंगी चल पड़ी। बीच में अभी वह पहुँची भी नहीं थी कि जैसे रमेश को कुछ याद आ गया। उसने कहा, नाविक, तट पर शीघ्र ले चलो। मैं कहीं नहीं जाऊँगा।

'आखिर ऐसा क्यों बाबू !'

'यह सब तुरत नहीं बता पाऊँगा किन्तु इतना जान लो, कल प्रातः ही मुझे आगरा के लिए रवाना होना है।'

'ओ !' नाविक तेजी से डोंगी खेने लगा।

तट पर पहुँचते ही बिना कुछ कहे वह उतर कर एक ओर चल पड़ा। नाविक हत-प्रभ-सा उसकी ओर देखता ही रह गया। रमेश के प्रति एक अजीब ममता हो गई थी। उसकी उदास आकृति देख नाविक की आँखों में आँसू उमड़ पड़े। आँसुओं की धारा से कुछ नहीं सूझने लगा तो उन्हे पोंछता हुआ वह डोंगी को एक तरफ़ बाँधने लगा।

घर पहुँचते ही इधर-उधर की फेंकी वस्तुओं को रमेश एकत्र करने लगा। माँ ने कहा, क्यों कहीं की तैयारी है ? 'हाँ, कल सुबह की गाड़ी से आगरा जाऊँगा।'

'पढ़ने ?'

'शायद हाँ।' इस शायद पर माँ रुकी, किन्तु कुछ कहा नहीं।

'पहले कुछ खा लो, मैं इन्हें रख दूँगी।'

'भूख नहीं है, दूध हो तो ला सकती हो।' माँ ने वैसा ही किया। दूध पी चुकने के बाद यों ही रमेश ने कहा, माँ, मुझसे तुम्हें आराम न मिला न मिलेगा ही।

इस पर माँ रो पड़ी, किन्तु भीतर ही भीतर।

'ऐसा नहीं कहते। रमेश से किसी को भी आराम मिल सकता है, सच देखो तो, मुझी से तुमको आराम नहीं मिला।'

'ऐसा न कहो माँ ! रमेश से ही किसी को आराम नहीं मिला। अशोक तो ऊब कर मर गया।' माँ ने देखा, पुनः रमेश की आँखों में आँसू उमड़ने को हुये। उसने कहा, और कोई कारण होगा बेटा, अशोक को आखिर मैं भी पहचानती हूँ। दोनों को इस माँ ने साथ ही कितनी बार खिलाया सुलाया भी है।

'नहीं माँ, तुम नहीं जानती उसकी मृत्यु का सब से बड़ा कारण मैं ही हूँ।'

'यह तुम्हारी भूल है।'

'इस विषय में मैं कभी भूल नहीं कर सकता। अच्छा माँ, उसके माँ-बाप इस समय कहाँ हैं ?'

'पटना में, जब कभी तुम्हें याद करते हैं। पत्रों में कई बार लिखा, रमेश को अवश्य भेज दो।'

'सच !'

'मगर मैं कौन-सा मुँह लेकर जाऊँ !'

'इसमें मुँह छिपाने की क्या बात है, तुम्हारा दोष थोड़े ही है।'

'हाँ माँ, मेरा ही दोष है। खैर, मैं उनसे मिल कर जाऊँ तो कैसा रहेगा ?'

'बहुत अच्छा।'

'वहीं से सीधे आगरा चला जाऊँगा।'

'हाँ, ठीक है।'

आधी रात में पटना के लिए गाड़ी जाती थी। निश्चित समय पर गाड़ी जोतवा कर पिता ने कहा, रमेश, जाते ही पत्र द्वारा सूचित करना, कब से पढ़ना

आरम्भ करोगे। यदि वहाँ मन न लगे तो शीघ्र घर चले आना।

इतना कह कर उन्होंने रमेश के हाथों में तीन सौ के नोट रख दिये। उन्हें जेब में रखते हुए.दोनों को प्रणाम कर चलने को हुआ। माँ ने कहा, शरीर, स्वास्थ्य, सब पर ध्यान देना किसी बात की विशेष चिन्ता न करना। यहाँ ही-सा वहाँ भी जीवन न बिताना।

स्टेशन पर पहुँचते ही,गाड़ी मिली। नौकर ने सामान रक्खा, टिकट खरीदा। गाड़ी आई और खुल पड़ी। नौकर अपने बाबू को अच्छी तरह जानता है। अशोक और रमेश के लड़कपन के झगड़े का जाने, कितनी बार उसने निपटारा किया है। रमेश के गम्भीर परिवर्त्तन पर एकान्त में आँसू बहा कर रह गया।

कभी कभी उससे रमेश अपनी सारी व्यथा कह सुनाता है। इस समय गाड़ी दूर जा चुकी थी, फिर भी उधर ही देखता हुआ रो रहा था। पीछे किसी के कुरेदने पर उसने आँसू पोंछे। और घर की राह ली।

दूसरे दिन रमेश पटना पहुँचा। अशोक के माता-पिता उसे देख बहुत प्रसन्न हुए, पर दूसरे ही क्षण उनकी आकृति बदल गई। इसके पहले हमेशा अशोक और रमेश साथ ही घर आते थे। आज अशोक को न पाकर वे रो पड़े। आगे बढ़ कर रमेश ने दोनों को पैर छू कर प्रणाम किया। अशोक के पिता ने गले लगाया, और देर तक लगाये रहे। रमेश की भी आँखें सूजने लगीं। उनमें भी आग की सी लाली समाने लगी। अशोक की माँ कहने लगी, बेटा, अपनों को, अपने नहीं भूलते। हमारे लिये तो अब तुम्हीं अशोक हो। तुम्हारी माँ ने कितनी बार लिखा, रमेश रात-दिन चिन्ताओं में घुलता रहता है। उसका शरीर गलता जा रहा है।

'नहीं माँ, मैं ठीक हूँ।'

'झूठ, बेटा, माँ-बाप को ठगना आसान नहीं। पहले के रमेश का ऐसा ही शरीर था!'

'माँ, पहले तो रमेश की देख-भाल के लिए उसका भैया, अशोक था, पर अब.........!'

माँ-बाप फिर एक बार आँखें मीचने लगे। वे जानते थे, एक सगे से भी बढ़ कर दोनों में प्रेम था। पीछे वे ही रमेश को चुप कराने लगे। सचमुच रमेश की ओर देखते ही उन्हें भय हो आता, कहीं यह भी तो नहीं छोड़ चलेगा!

'रमेश, सब कुछ भूल कर अब तुम्हें अपने माँ-बाप के लिए कुछ करना होगा। वह यह कि अपना स्वास्थ्य सुधारना होगा। हमारे लिए तो अब तुम एक ही अशोक रह गये हो।'

'चेष्टा करता हूँ बापू, मगर चिन्ताएँ इस प्रकार आ घेरती हैं कि सारी चेष्टा व्यर्थ की प्रमाणित होती है। मेरे प्रत्येक कार्य, मेरी प्रत्येक स्थिति को सँभालने वाले एक मात्र भैया ही थे। मैंने खाया या नहीं, पढ़ा या नहीं, कहाँ क्या कर रहा हूँ, सभी की उन्हें ही चिन्ता थी।'

'पर अब उन्हें भूल जाना चाहिए।'

'यह असम्भव है बापू!'

'सब सम्भव है बेटा! तुम्हें भूलना होगा।'

'नहीं कभी नहीं; चूँकि संसार को भूल कर भी उन्हें मैं भूलना नहीं चाहता।'

'कम से कम हमारे लिए।'

'नहीं।'

'अच्छा, पहले आराम तो कर लो।'

एक रूम में प्रवेश किया।

दूसरे दिन आगरा जाने के लिए रमेश प्रस्तुत हुआ तो अशोक के पिता ने कहा, देखो रमेश, जब कभी अवश्य आ जाना। इसे कभी न भूलना कि हमारे लिए अब तुम्हीं अशोक रह गये हो। उत्तर की जीवन गाड़ी की एकमात्र इञ्जिन तुम्हीं हो।

१६

आगरा आये हुये रमेश के कई मास हो रहे हैं। उसने मन में सङ्कल्प कर लिया है, अब किसी से विशेष सम्पर्क न रक्खूँगा। अध्ययन करना ही एकमात्र कार्य रहेगा। कालेज में नाम लिखा कर होस्टल् में रहने लगा। जब कभी निर्मला के साथ अमरावती को उसने देखा है। किन्तु अपने को उनकी आँखों से बचा कर एक ओर खिसक गया है। इस प्रवृत्ति पर उसे क्षोभ और खेद भी हुआ है, परन्तु कर्त्तव्य के आदेशानुसार उसने ऐसा किया यह उसका अपना विश्वास है। माना कि यह उसकी कमजोरी भी है, पर इस कमजोरी के लिए क्या करे।

अपने आप को नष्ट कर देना ही बली कहलाना है, तो ऐसे बली कहलाने से निर्बल कहलाना ही वह अच्छा समझता है। जीवन के साथ कठोर कर्त्तव्य का गहरा सम्पर्क है। और आज के कर्त्तव्य की भित्ति की नींव कमजोर, झूठ, मक्कारी पर निर्भर है। अब रमेश ऐसे ही कर्त्तव्य का पालन करेगा। मानवीय परिस्थिति के अध्ययन करने के पश्चात् वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है कि जिस प्रकार भी हो, अपने को समय के अनुसार ले चलो। अनाचार का प्रचार हो, तुम चुप रहो। कोई पीड़ा से कराहता हो, तुम अपना रास्ता नापो। स्वार्थ के इस संसार में स्वार्थी बनो। दूसरों पर दया करना, देवता का भी कार्य नहीं रह गया, तो तुम मनुष्य बन कर क्यों दया करोगे ! दया, आज वह दवा है, जिसमें जहर अधिक है। अपने इस परिवर्त्तन पर वह सन्तुष्ट था। कभी-कभी परिवर्त्तित विचारों पर क्षुब्ध होता, किन्तु दूसरे ही क्षण एक उचित प्रशस्त मार्ग पर अग्रसर होने लगता। अमरावती के दुःखद जीवन पर सोचता तो सोचता ही रह जाता। नासीर से कुछ कहना चाहता, किन्तु कह नहीं पाता। आज ऐसे ही उदासी में होस्टल से निकला। एकान्त पथ से कुछ सोचता हुआ चला जा रहा था कि निर्मला मिली। उसने कहा, इतना छिपना अच्छा नहीं रमेश ! कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित होकर भी तो कम से कम अमरावती की सहायता

करनी चाहिये थी। तुम क्या जानो, वह इस समय क्या-क्या सोचा करती है। कालेज के जीवन से दूर, उसने अलग किराये पर मकान ले रक्खा है। उसके माँ-बाप जानते हैं कि वह पढ़ती है, किन्तु वह बेचारी आँसू कालेज में पढ़ती है, जिसकी पढ़ाई का कोई अन्त ही नहीं। इस समय उसकी सहायता करना, किसी भी मनुष्य का कर्त्तव्य था।

'आखिर मैं उसकी क्या सहायता कर सकता हूँ ?'

'बहुत कुछ, जानते हो, उसकी क्या दशा है ! जब कभी आत्महत्या करने पर उतारू हो जाती है।'

'क्यों !'

'यह तुम नहीं जानते ?'

'नहीं तो।'

'उसे एक-आध महीने में ही लड़का होने वाला है या यों कहो, नासीर के पाप का परिणाम होने वाला है।'

'तब भी वह आत्महत्या करना चाहती है ! जाकर उसे समझाओ,

भ्रूण हत्या महापाप है।'

'तुम्हीं समझाओ।'

रमेश अपने को पुनः जकड़ा हुआ पाने लगा। कुछ देर तक चुप्पी साधे रहने के पश्चात् उसने कहा, अच्छा, ले चलो। निर्मला के साथ वह चल पड़ा। पहुँचने पर एक ओर विचार मग्ना अमरावती को देखा, तो उसे बड़ी करुणा हो आई। उसने दबे स्वर में कहा, अमरावती !

इस परिचित आत्मीय-स्वर पर उसे कम आश्चर्य नहीं हुआ। बिना समझे विचारे वह उसके पैरों पर गिर गई। रमेश रोने को हो आया। उसने कहा, तुममें दृढ़ता रहनी चाहिए अमरावती ! प्रतिकार में प्रतिशोध की भावना रहनी चाहिए। अब तुम शायद इसको भूलने लगी हो। अमरावती से मुझे कदापि ऐसी आशा न थी। जीवन से लड़ने वाली अमरावती में इतना परिवर्त्तन।

अमरावती देख रही थी, अब भी रमेश के दृढ़ स्वर में वही बल है, जो पहले था। उसने कहा, इस परिवर्त्तन का बड़ा कारण नासीर है। झूठ के

विश्वास के बल पर उसने बड़ा अनर्थ किया। मुझे लग रहा है, अब आत्म-हत्या में ही कल्याण है। मेरा सञ्चित बल उसी में समा गया।

कहीं की नहीं रही रमेश !

'यह व्यर्थ की बात है, तुम नहीं जानती, एक सबल अवस्था का यह सब दोष है। अब तुम्हें चाहिए कि अपने को सँभालो।'

'कोई अवलम्ब भी तो होना चाहिए।'

'हाँ, पर कैसा अवलम्ब !'

'पुरुष के रूप में।'

'आखिर पुरुष पर तुम भी अवलम्बित होने लगी !'

'मेरे अपने अनुभव हैं, उसके बिना नारी सचमुच निर्बल है।'

'झूठ अमरावती !'

'सच रमेश !'

'तुम्हारा यह भ्रम है, अपने आप की सभी रक्षा कर सकते हैं। अस्तु, तो क्या पुनः नासीर से कुछ कहना होगा !'

'नहीं, नहीं, अब कुछ नहीं कहना होगा। सैकड़ों बार उसने अपमान किया, किन्तु मेरी एक न सुनी। जैसे मेरे लिए वह बहरा है।'

'मैं कह देखूँ !'

'तुम्हारी इच्छा, किन्तु विश्वास मानो, वह एक न सुनेगा।'

'वह रहता कहाँ है ?'

'होस्टल् में, रूम नम्बर तीन। तुम आखिर मिलोगे ही !'

'हाँ।'

वह नासीर से मिलने गया। अपनी जगह पर वह मिल भी गया। किन्तु अमरावती का नाम आते ही उसने तपाक से कहा, उसके विषय में बात करने की मुझे थोड़ी भी फ़ुरसत नहीं। रमेश को यह अपमान अच्छा नहीं लगा, पर विवश हो यह सहना ही पड़ा। अन्त में उसने यह कहा, नासीर, मनुष्य को ऐसा कभी नहीं होना चाहिए। एक भोली नारी के साथ यों ही धोखे का खेल खेलना क्या अच्छा था ?

'अच्छा-बुरा, मुझे कुछ नहीं मालूम, पर यह मालूम है कि आगे उसके विषय में चर्चा होने पर एक काण्ड अवश्य खड़ा हो जायगा।'

'ऐसा !'

'हाँ।'

उग्र इस उक्ति पर रमेश को क्रोध हो आया। उसने चाहा, यहीं गला दबोच दूँ। वह क्रोधी नहीं था, किन्तु हाड़-मांस के बने मानव में ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा सब कुछ रहता है। परन्तु अपने को संभाल कर पुनः वह अमरावती के पास आया। वह चेतना शून्य हो पड़ी थी। आर्त्त स्वर में, आहट पाने पर उसने कहा, 'कह देखा, तुमने !'

'हाँ।'

'कोई लाभ !'

'नहीं, अच्छा छोड़ो इनको, यह बताओ, आगे क्या होगा ?'

'मेरे जानते मरना।'

'यह कभी नहीं होने का। रमेश ऐसा नहीं होने देगा।'

'ऐसा ही होगा रमेश ! तुम इसे रोक नहीं सकते ! समाज से लड़ना आसान नहीं।'

'बिना लड़े हो जाय तो !'

'यह असम्भव है।'

'जो भी हो, इसके लिए प्रबल प्रयत्न करूँगा।'

'वह तुमसे नहीं होगा।'

'क्या नहीं होगा !'

'यही कि तुम अपने साथ मुझे रख सको।'

रमेश का माथा चकराया। उसके आगे कुछ नाचने लगा। वह कुछ भी देखने में असमर्थ हो रहा था। लोग, समाज, माँ-बाप, सभी क्या कहेंगे, रमेश कितना नीच है।

उनका विश्वास था, मैं इतना निकृष्ट न हूँगा। नहीं, ऐसा सम्भव नहीं। तो दो जीव की हत्या होने दूँ। यह अनुचित है, तो क्या सब उचित का एक-

मात्र मैं ही ठीकेदार हूँ। तैमुना भी क्या कहेगी, कुछ भी कहे; अमरावती को रक्षा होनी चाहिए। कुछ देर रुक कर उसने कहा, 'फिर मिलूँगा।'

'अब क्या मिलोगे!'

'मैं नासीर नहीं हूँ अमरावती! धोखा से स्वयं मुझे घृणा है।'

एक अलग मकान ठीक कर निर्मला से उसने कहा, जा कर कहो, अमरावती का यहीं सारा प्रबन्ध हो गया। वह मेरे ही साथ रहेगी। मैं उसे लाने आ रहा हूँ।

निर्मला रमेश का मुँह देखने लगी। आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सोचने लगी, समाज से अकेला एक रमेश लड़ सकता है! नहीं तो क्यों वह व्यर्थ का प्रयास करता है। शक्ति के अभाव में उसका कोई भी प्रयास निरर्थक है। किन्तु उसने वही किया, जिसका रमेश ने आदेश दिया था।

एक रात में अमरावती जाने क्या सोच रमेश के यहाँ चली गई। इस समय वह विशेष कुछ कहने के लिए असमर्थ थी।

जीवन के एक ऐसे प्रवाह में बही जा रही थी, जिसमें ममता नहीं थी, जिसका कोई अस्तित्व न था। पीड़ा से कराहने लगी। चेतना शून्य हो पड़ी थी, अवस्था के अनुसार रमेश ने लेडी डाक्टर की व्यवस्था कर दी।

१७

एक मास हुआ, अमरावती को एक स्वस्थ सुन्दर लड़का हुआ। किन्तु अमरावती चुप, गूँगी-सी कुछ नहीं बोल रही थी। बालक रोता तो रोता ही रह जाता। *मातृत्व भी उसे भूलने लगा। वह सोच रही थी, माँ-बाप* क्या कहेंगे। रमेश का क्या होगा। यह बेचारा बे मौत मरा। सुख का एक कण भी इसे न मिला।

उसकी आकृति देखते ही वह विष पान कर लेना चाहती है। करुणा की ऐसी गहरी छाप देखती कि आँखें उस पर टिक ही नहीं पातीं। खाना-पीना छोड़ कर अपना शरीर गला कर, इस प्रकार चिन्ता के प्राङ्गण में विचरती रहती कि

किसी को भी उसके प्रति दया उमड़ सकती है। निरीह बालक की मृत्यु की जितनी उसे चिन्ता न थी, उससे अधिक चिन्ता, बेचारे रमेश की थी।

रमेश ने अपने जानते अमरावती के सुख की सारी व्यवस्था कर दी थी। विशेष आवश्यकता होने पर ही अमरावती के पास वह जाता अन्यथा निर्मला की नियुक्ति ही पर्याप्त समझता था। समाज पर दृष्टि दौड़ाने पर सहसा अनायास ही उस मासूम बच्चे पर उसका ध्यान जाता, जो अभी संसार के वातावरण से नितान्त अपरिचित था। उसने आरम्भ में ही एक महान् अपराध किया, वह यह कि संसार में आया, उसमें भी अमरावती का लड़का बन कर। भविष्य पर सोचने लगता तो परिणाम में विदित होता, बालक संसार को छोड़ कर ही रहेगा। यहाँ पर जैसे वह सब कुछ करने के लिए प्रस्तुत हो जाता। अकेले उस बच्चे के लिए वह लड़ेगा।

सन्ध्या समय यों ही कहीं जाने को हुआ कि निर्मला ने कहा, आज अमरावती सङ्केत से भी कुछ नहीं कहती। दशा शोचनीय है।

रमेश के ललाट पर चिन्ता की रेखाएँ खिंच गईं। एक भय से काँप उठा। उसने शीघ्र लेडी डाक्टर को बुलवाया। पूछने पर अमरावती ने यह कहा कि व्यर्थ में परेशान न होओ। कोई परिणाम नहीं निकलेगा।

'ऐसा न कहो, अमरावती! जीवन दे कर भी मैं तुम दोनों की रक्षा करना चाहता हूँ। ऐसी दशा में तुम्हारी यह उक्ति कष्टप्रद मालूम होती है।'

'अब ऐसी उक्ति नहीं होगी, किन्तु आज तुम कुछ सुनना।'

अमरावती की अवस्था इस समय कुछ सुधरी थी। चिन्ता सर पर मड़रा रही थी, किन्तु शारीरिक स्वास्थ्य पर जाने, उसका कैसे प्रभाव नहीं पड़ा। इसी समय रमेश ने उसके रूम में प्रवेश किया। बच्चे की ओर देखते हुए उसने कहा 'कितना स्वस्थ और सुन्दर है!'

'होने दो।'

'क्यों?'

'इसलिए की यह पाप का घड़ा है।'

'यों इस बेचारे के सर पर दोष न मढ़ो। यदि बुरा न मानो तो, मैं यह

कहूँ, तुम दोनों के पाप का यह प्रायश्चित्त है।'

इस पर अमरावती का सर नीचे झुक गया। इस कठोर सत्य का विरोध करने की उसमें थोड़ी भी शक्ति न थी। पुनः रमेश ने कहा, तुम चिन्ता न करो, सारे कष्ट मैं झेल लूँगा।

'अपना जीवन नष्ट कर।'

'हाँ!'

'तब मैं और यह बालक............।'

'क्या कहा?'

'यही कि.........।'

'नहीं, ऐसा नहीं, कम से कम इस निरीह बच्चे पर दया करना, इसका कोई अपराध नहीं, कोई दोष नहीं; अमरावती, इसके लिये, हाँ, इसी के लिये अनर्थ न करो।' रमेश गिड़गिड़ाने लगा। अमा के अन्धकार से भी अधिक घना अन्धकार उसकी आँखों के आगे छा गया। अकाश से नीचे जैसे वह धरती पर आ गिरा हो। एक प्रकार वह उस बच्चे के लिये अमरावती से दया की भीख माँगने लगा। और अमरावती में जैसे मातृत्व का अंश भी न था। सारा मातृत्व, संसार के कठोर दुःशासित समाज में मिल गया, फलतः दया, ममता, स्नेह, सब से अलग वह अपने को पाने लगी। बच्चे का उसके आगे कोई महत्त्व न रहा। रमेश के जीवन की चिन्ता उसे सताने लगी। किन्तु कभी-कभी बच्चे की आँखें जब उसकी आँखों में जा मिलतीं, तब उसे लगता, मानो वे कह रही हों, भूलो नहीं, नारी का पर्यायवाची शब्द माँ है। और अफसोस कि तुम नारी हो कर, उसमें भी माँ बन कर ऐसा अनर्थ सोचती या करती हो। इस पर वह विचलित हो उठती। आँखें बन्द कर उस पर कपोल रख रोने लगती। कभी यह भी सोचती, इसका क्या दोष है! परन्तु दूसरे ही क्षण रमेश, नासीर, समाज, जाति, कर्त्तव्य, सभी उसके हृदय में उथल-पुथल मचाने लगते। और फिर सब से विमुख हो विरोध में कुछ करने के लिये उतारू हो जाती।

सदा चिन्ता में डोलने वाला रमेश आज व्यथा अनुभव कर रहा है। अमरावती ने देखा, वह रुग्ण हो गया है, ज्वर की तीव्रता थी। करुण स्वर में

उसने कहा, रमेश, अपने आप को नष्ट न करो ।

'यों ही बीमार पड़ गया हूँ, अच्छा हो जाऊँगा; चिन्ता न करो । बच्चे पर सदा ध्यान रक्खो ।' अमरावती क्या कहे, चुप हो एक ओर चली गई ।

बच्चे का नाम पड़ा सुरेश । प्रायः छः मास हुये, उसकी उत्पत्ति के । रमेश अब अच्छा है, किन्तु अमरावती में महान् अन्तर हो गया है । चुप रहना ही एक मात्र उसका कार्य है । सुरेश पर रमेश का ही ध्यान अधिक रहता । वह भी उसे ही पहचानता है । माँ की विशेष कोई खोज नहीं । रमेश अपने को उसमें भुला देता, खो देता । अमरावती को धीरे-धीरे भूलने लगा, सुरेश उसका जीवन बनने लगा । ठीक इसके विपरीत अमरावती की अवस्था बदल गई । रमेश की ओर देखने का उसे साहस भी नहीं होता । पर यों कब तक जीवन-गाड़ी चलती रहेगी, इस पर सोचते ही अन्धकार का प्रवेश पाती । सब उत्पात का कारण स्वयं अपने को समझती । भविष्य की ओर दृष्टि पात करने पर उसे लगता, रमेश शायद ही संसार में रहे ।

और उसके नहीं रहने पर अमरावती ही नहीं कई का उपकार शायद ही हो । माँ-बाप का एक मात्र रत्न लुट जायगा । नहीं नहीं, वह ऐसा नहीं होने देगी । वह इतना स्वार्थी नहीं कि अपने आप के लिये कितनों का विनाश कर दे । इसका परिणाम बुरा होगा । हाँ, बुरा होगा; मगर वह बुरा नहीं होने देगी ।

सुरेश के जीवन के विषय में बिना सोचे ही, आधी रात में रमेश के नाम से एक पत्र लिख कर पता नहीं अमरावती कहाँ चली गई । सुबह उठने पर रमेश ने देखा, अमरावती कहीं भी नहीं है । उद्विग्न, विकल हो उसने ढूँढ़ना आरम्भ किया । सुरेश के पास पहुँचने पर उसने एक ओर देखा, एक लिफाफा पड़ा हुआ है । खोल कर पढ़ा । अधिक बातें न थीं, सिर्फ इतना ही कि आधुनिक सामाजिक जीवन व्यतीत करना, बड़ा कठिन है । जाति की भिन्नता, राष्ट्रीय उन्नति का रोड़ा है । मैंने अनुभव किया है, इस रोड़े को हटाना, कम से कम मेरे लिए आसान नहीं । तुम्हारा भविष्य अन्धकारमय लग रहा था, केवल मेरे ही कारण । मैं चाहती थी, सुरेश को भी साथ ही लेती जाऊँ; परन्तु हृदय ने कहा, अपने लिये नहीं तो कम से कम, रमेश के लिये ऐसा न करो । फिर

खूब सोचने पर भी उस बेचारे का कोई दोष नहीं दीख पड़ा, अतः तुम्हारे ऊपर छोड़े जा रही हूँ। मैं जानती हूँ, मुझ से भी अधिक तुम्हें ही उसकी चिन्ता है। विशेष में, अमरावती का अन्तिम आग्रह है, किसी भी समय अपने जीवन की सदैव रक्षा करना। इसलिये कि तुम्हें अमरावती जैसी कितनी नारियों का उपकार करना है।

पत्र पढ़ कर वह सुरेश की ओर देखने लगा। उसकी आँखों में अजीब करुणा समा गई थी। उसको उठा कर लगा पुचकारने और रोने। सुरेश हक्का-बक्का-सा उसकी ओर देख रहा था। उसकी समझ में यह सब कुछ नहीं आ रहा था। निर्मला एक ओर आँसू पोंछ रही थी। ऐसा भी कहीं होता है! जीवन से सब को लड़ना पड़ता है। केवल रमेश को ही नहीं। पर वह देख रही है, रमेश ही लड़ रहा है और हार भी वही रहा है। इस हार में एक दिन वह खो न जाय, विलीन न हो जाय। उसने कहा, रमेश, सुरेश के सँभालने में अपने आप को सँभालना न भूलना।

'देखो कौन सँभलता है। सब का झूठ का सम्बल मैं ही बनता, और मेरा सम्बल कोई नहीं, कुछ नहीं। जानती हो निर्मला, दुनिया एक ओर, और सिर्फ मेरा अशोक एक ओर। आज वह रहता तो मुझे अन्य किसी सम्बल की आवश्यकता नहीं थी। आज वह जाने कितने सुरेश और अमरावती का उपकार करता। अमरावती भी इसे जानती थी।'

'खैर, इस समय विगत को भूल कर वर्त्तमान पर सोचना चाहिये।'

'देखो, कभी भूल भी पाता हूँ। अच्छा निर्मला, कालेज में पढ़ना अब जारी करो। चूँकि पढ़ते रहने में एक अज्ञात सुख और सन्तोष मिलता है।'

'किन्तु अब पढ़ने की इच्छा नहीं होती। सब ओर से जी उचट गया है। जा कर घर ही कुछ दिन रहूँगी। बापू मसूरी जा रहे हैं, मैं भी साथ ही जाने की सोच रही हूँ।' रमेश सोचने लगा, लो अब यह भी चली। जो मेरे अनुपस्थिति में सुरेश की देख-भाल करती, वह भी नहीं होने का। उसने करुण स्वर में कहा, तुम्हारी जैसी इच्छा, कभी याद कर लिया करना निर्मला! यह न भूलना की रमेश की बराबर विवश परिस्थिति रही है। और यह भी

सच है, जब तक उसका जीवन रहेगा, उसकी ऐसी ही परिस्थिति रहेगी। यह उसे दण्ड स्वरूप एक अभिशाप या बर्दान मिला है। पूछ सकती हो किस अपराध का ! इसका उत्तर मैं शायद नहीं दे पाऊँगा। पर इतना जानो एक ऐसा भयङ्कर अपराध मैंने किया है, जिसके लिये यह दण्ड प्रयाप्त तो नहीं कहा जा सकता है। अस्तु, रुको नहीं, जाओ।

सुरेश को चूम कर गीली आँखों से रमेश की ओर देखती हुई निर्मला भी चली गई। अब रह गया केवल दुर्भाग्य का बल रमेश, और रह गया दीपक की लौ सुरेश। सारा घर भयावह लगता। उसे लगा, शायद इस घर में मुझ से भी न रहा जायगा।

दूसरे दिन वह भी बिना किसी को सूचना दिये घर चल पड़ा, सुरेश भी साथ ही था। उसे वह अपना लग रहा था, जीवन लग रहा था, और लग रहा था, एक साथी।

१८

रमेश के उलझे बालों से सर का बाल विचित्र लग रहा था। घर पर पहुँचा तो सभी को आश्चर्य होने लगा। उनके लिये सुरेश एक अजीब कहानी बन रहा था। माँ-बाप उसे देख, नाना प्रकार की कल्पना कर रहे थे। कितनी बार पूछना चाहने को हुये कि सामने रमेश की साँझ की, उदास आकृति देख उन्हें साहस भी नहीं होता, कुछ पूछने का।

जब सुरेश जगा रहता तब वह उसके साथ खेलता, कूदता, हँसता। जीवन का उद्देश्य जैसे एक मात्र सुरेश को खेलना ही रह गया। बहुत दिनों बाद रमेश को प्रसन्न देख माता पिता की आँखों में हर्ष के आँसू उमड़ पड़ते। पर दूसरे ही क्षण पुनः वे खिन्न क्लिष्ट रमेश को पाते। माँ ने एक बार पूछा, क्यों बेटा, यह सुरेश कौन है ?

'माँ, यह एक कहानी है, बस तब तक इतना ही जानो।' रमेश इसके आगे विशेष कुछ कहना नहीं चाहता। विगत-जीवन की कहानी मार्मिक थी, वह

चाहता था, यह अप्रकट ही रहे। माँ-बाप का रमेश पर पूर्ण विश्वास था। उनकी धारणा भ्रान्तिपूर्ण न थी उनके जानते, रमेश ऐसा कोई कार्य कर ही नहीं सकता, जो अनुचित कहा जा सकता था। परन्तु सुरेश को देख कर माँ के हृदय में सन्देह का अंकुर उत्पन्न होने लगा। सोचती यह सुरेश जाने किस इतिहास का प्रथम पृष्ठि है। बहुत सोचने-विचारने पर भी वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाती, पीछे मन ही मन निर्णय करती, रमेश के पाप का परिणाम तो नहीं है! नहीं, नहीं, हाँ, हो भी सकता है। आज के युग में मानव पर विश्वास करना अपने को भ्रम में डालना है। रमेश कहीं छिपा अङ्गारा तो नहीं है। अब तो शायद वह यही है।

पिता के हृदय में भी कई विचार उठते, कई सङ्कायें उठतीं, किन्तु वे यह कभी मानने को तैयार न थे कि सुरेश, रमेश के पाप का परिणाम है। वे जानते थे, रमेश छिपना-छुपाना नहीं जानता है। फिर भी उन्होंने एकान्त में एक दिन पूछा, क्यों रमेश, सुरेश किसकी सन्तान है?

'बापू! यह हिन्दू-यवन, दो के पाप का एक प्रायश्चित्त है।'

'मतलब?'

'इसका पिता यवन है, और माँ हिन्दू।'

'फिर यह तुम्हारे पास कैसे आया?'

'यह सब कहने में देर लगेगी, किन्तु इतना जानो, इसके जीवन का एक रक्षक अब मैं ही हूँ।'

'परन्तु यह तुम्हें सोचना चाहिये था, हिन्दू समाज को इस सुरेश को अपनाने में कितनी आपत्ति होगी, तुमने भूल की।'

'निरीह, निर्दोष बालक को अपना कर, मैंने भूल की, यह आप भी कह रहे हैं!'

'हाँ, लाचार हो कर।'

'तो अब क्या करूँ!'

'कहीं अनाथालय में दे दो, या फेंक दो।'

रमेश सन्न हो गया। उसकी आँखें ऊपर उठीं, उनमें क्षोभ और क्रोध

दोनों भर आये। पिता ने पुनः कहा, ऐसा ही करना होगा रमेश !

'बापू, जीवन में आज पहली बार आप के इस आदेश का पालन न कर सकूँगा, क्षमा करेंगे। मैं जानता हूँ, आप को इसका खेद होगा। समाज भी भला-बुरा कहेगा। इसके लिये मैं सोच रहा हूँ, यहाँ से कहीं दूर सुरेश को ले कर चला जाऊँ।' पिता के आँखों में अजीब दीनता भर गई। वे मानो कहने लगीं, नहीं रमेश, ऐसा न करना। मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि तुम्हीं कहीं चल दो। यदि ऐसा है तो मुझे समाज की परवाह नहीं।

रमेश वहाँ से हट कर एक दूसरे रूम में चला गया, जिसमें सुरेश था। जा कर उसने देखा, सौम्य आकृति वाला सुरेश यों ही सोया है। उसे बड़ा अच्छा लग रहा था। धीरे से उसने चूमा। और यह कह कर चलने को हुआ कि सुरेश मैं तुम्हें किसी भी दशा में छोड़ नहीं सकता।

पारिवारिक उथल-पुथल के कारण रमेश आज बड़ा खिन्न था। आश्चर्य, पिता, पुत्र से सहानुभूति न रख कर व्यर्थ के झूठ समाज से सहानुभूति रखे। खैर, पुत्र का दुर्भाग्य है कि वह अपने पिता का प्रिय नहीं रहा। एक बार वह रो पड़ा। उसे लग रहा था, यह जीवन व्यर्थ है। अपना कहने के लिये कोई न रहा।

इस समय जाने क्यों, तैमुन्ना की स्मृति बड़ा बल ले कर उसके मानस-पटल पर अङ्कित हो रही थी। वह चाह रहा था, इस समय तैमुन्ना रहती तो कितनी सान्त्वना देती! भगवान् जाने, उसके दिन कैसे कटते होंगे। निरपराध, निर्दोष तैमुन्ना का जीवन कष्ट का केन्द्र है। समाज से दुःशासित तैमुन्ना के लिये सुख का स्वप्न भी हराम होता होगा। जब से गई, तब से उसका पता भी नहीं, मरी या जीती है।

सन्ध्या समय रमेश विह्वल हो तैमुन्ना की ओर चल पड़ा। पहुँचने पर देखा, उसके घर का दरवाजा बन्द है। बाहर बड़ी भीड़ लगी है। और भीतर किसी के मारने की जोरों से आवाज आ रही है। साथ ही जोर से रोने, कराहने, चीत्कारने का भी स्वर है—'बचाओ, अब नहीं भैया, माफ कर दो; खुदा की कसम, अब नहीं जाऊँगी'—की आवाज से वहाँ का सारा वातावरण प्रकम्पित हो रहा था। रमेश पहचान गया, यह तैमुन्ना का आर्त्त-चीत्कार या पुकार है।

समझ गया, अवस्था से ऊब कर उसने वैसा कुछ किया होगा जो समाज की दृष्टि में बड़ा अपराध होगा। जिसकी वजह यह ज्यादती हो रही होगी। फिर भी वास्तविक घटना जानने के लिये बड़ा उत्सुक था। उतावलापन आ गया, किन्तु इस भय से कि लोग कहीं मुझ पर ही कुछ सन्देह न करने लगें, चुप था। पर हृदय की डाँवाडोल परिस्थिति, जो व्यग्रता को लिये हुये थी, की वजह दूर एकान्त में जा कर एक परिचित से उसने पूछा, तो सारी घटना की जड़ उसकी समझ में आ गई। कुछ मास पहले जराजीर्ण अपने पति से ऊब कर एक दिन वह यहाँ भाग आई, फलतः उसका भाई, कठोर हैदर लगा, तसीहा देने। खाना-पीना, कितने दिनों के लिये उसने बन्द कर दिया, जिसकी वजह वह अपनी जान गँवाने पर उतारू हो गई, पर हैदर की कड़ी निगाह थी कि कहीं बह जाय नहीं। दैववश एक रात को एक धनी युवक के साथ भाग गई। किन्तु उस स्वार्थी ने उसका साथ नहीं दिया, बीच ही में छोड़ अपना रास्ता लिया। लाचार तैमुन्ना को फिर घर की शरण लेनी पड़ी। कल की सुबह को घर के एक कोने में दब कर सिकुड़ी थी कि उसकी अम्मा देख कर चीख पड़ी। वह जानती थी, हैदर कल ही से क्रोध के नशे में चूर हो गुप-सुप इधर-उधर घूम रहा है। उसने कहा, डूब क्यों न मरी ! इस समय हैदर नहीं है; अब भी कहीं डूब मर, नहीं तो घुला-घुला कर मारेगा।

'मारने दो, अम्मा ! पर अपने से न मरूँगी। एक बाबू ने कहा है, भूल कर भी अपनी जान गँवाने की मूर्खता न करना।' दूसरे दिन दोपहर में हैदर आया, तभी से वह लोहे की एक छड़ आग में तप्त कर उसे दाग रहा है। कुछ उसके पक्ष में हैं, कुछ तैमुन्ना के।

रमेश इस भयावह, भीषण घटना को सुन कर थर्रा गया। रोम-रोम काँप उठा। अवस्था के आवेग-उद्वेग, चढ़ाव-उतराव को न रोक सकने के कारण एवं असह्य पीड़ा की वजह तैमुन्ना किसी युवक के साथ भाग गई, यही अपराध हुआ, जिसका उसे इतना कड़ा दण्ड भोगना पड़ रहा है। भगवन् ! दया के तुम आगार हो न ! धन्य है, तुम्हारी दया ! यदि तुम्हारे यहाँ अत्याचार का ही नाम है दया तो ऐसी दया अपने ही पास रक्खो।

खीझता हुआ रमेश घर आया, तो देखता है, सुरेश रो रहा है। नौकर उसे पुचकार रहा था, किन्तु वह चुप होने का नाम ही नहीं ले रहा था। रमेश ने आते ही अपनी गोद में उसे लिया, तो बस सिसकता हुआ, उसका मुँह निहारने लगा। दूसरे शब्दों में पूछने लगा, कहाँ छोड़ गये थे! रमेश इसके उत्तर में, सब कुछ भूल कर उसे लगा, झुलाने और झूलने।

तैमुन्ना की घटना पर रात भर वह सोचता रहा। कहीं भी कल नहीं, चैन नहीं। मिलने के लिये उत्सुक एवं व्यग्र था। कभी-कभी यह भी सोचता, मैंने उसे अपना बना लिया होता तो शायद उसकी ऐसी दुर्गति न होती। नहीं, मगर हैदर! हाँ, हैदर ....!

दिन भर वह चिन्ता के मौन प्राङ्गण में विचरता रहा। इस बदली अवस्था पर सुरेश भी हैरान-सा था। उसकी आँखें रमेश पर टिकतीं तो टिकी ही रह जातीं। माता-पिता ने भी देखा, परसों से इसने दूध पीना भी छोड़ दिया है। चलते-फिरते, वे उसे रोकना चाहते, पर रोक नहीं पाते।

और वह उसासें भरता हुआ अफ-आफ कर रह जाता, टहलने लगता तो टहलता ही रह जाता। स्नेही नौकर ने समझाया, बाबू तुम्हें क्या हो गया है! तुम तो ऐसे कभी नहीं थे! बोलो, बाबू! तुम्हें क्या हो गया है!

'कुछ नहीं'।

'कुछ तो जरूर हुआ है, न कहो, दूसरी बात है।'

रमेश ने रुक कर देखा, और देख कर फिर टहलने लगा, यह कह कर कि मुझसे कुछ पूछो नहीं, मेरे पास किसी का कोई उत्तर नहीं। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। मेरी आँखें कुछ देख नहीं पातीं। जीभ कुछ कह नहीं सकती। शरीर हिल-डुल नहीं सकता।

'आखिर यह सब क्यों?'

'यही मत पूछो।' नौकर एक ओर चला गया, कुछ देर तक उसकी ओर देख कर पुनः वह टहलने लगा। इस समय वह चाह रहा था, तैमुन्ना को छोड़ कर दूसरा कोई भी प्रश्न मुझ से न किया जाय। उसकी कारुणिक परिस्थिति पर वेदना उमड़ पड़ती है। किसी भी अवस्था में बिना उससे मिले, रमेश से

शायद नहीं रहा जायगा। और इसी विचार की आँधी में वह बड़ी तेजी से निकल पड़ा। उसका अनुमान था, बहुत सम्भव है, आज गङ्गा-तट पर तैमुन्ना आये; चूँकि अनेक विपत्तियों के झेलने के समय वह अपने आप को सन्तोष देने के लिये तट पर ही जाती है। आज उसके हृदय में बड़े-बड़े तूफान उठते होंगे, हैदर के अनाचार से वह विक्षुब्ध हो उठी होगी। बचाव की आशा की एक किरण भी न देख पाती होगी। उसकी इस समय ठीक वही दशा होगी, जो अथाह सागर के मध्य टूटी नाव के एक तख्ते पर बचे मानव की होती है। ऊब कर गङ्गा की शरण लेने न जाय। इतने कठोर दण्ड को भोगते रहने पर भी तप्त आँच में झुलसती हुई भी उसने मेरे इस वाक्य को भूलने का प्रयत्न नहीं किया कि कदापि आत्महत्या न करना। तट पर ही चलना चाहिये। उद्दाम अवस्था में सचमुच कहीं अनर्थ न कर बैठे।

सन्ध्या की एकान्त प्रकृति के आँगन में स्वयं चिन्ता बन कर गङ्गा-तट पर उपस्थित हुआ। चारो तरफ आँखें फैला कर देखने पर कोई भी दीख नहीं रहा था। पीछे यह सोच कर हताश होने लगा कि शायद किसी भी प्रकार तैमुन्ना नहीं मिल सकती। माथे पर दोनों हाथ रख, दोनों ठेहुनों के बीच सर रख, वह जल से थोड़ी दूर हट कर बैठ गया। हवा के झोंके से उसके बाल उड़ने लगे। सिल्केन ट्वील की कमीज का कालर हवा से बातें करने लगा। ऐसा लगता, मानो कोई चिड़िया असमर्थ होती हुई भी उड़ने के व्यर्थ प्रयास में अपना पंख फैला रही हो। अपने उसी छोटे से दायरे में वह बहुत विशाल तैमुन्ना की आकृति देख रहा था। उस आकृति से कभी-कभी उन्मत्त-सा जाने, क्या-क्या पूछता। पीछे जब ख्याल आया, ओ, वह यहाँ कहाँ! आज घर से वह निकल पायगी, नहीं, असम्भव है।

ठीक इसी समय किसी ने कहा, आखिर मैं अभी तक याद हूँ!

'कौन, तैमुन्ना!'

'जी!'

'स्वप्न में भी मैं नहीं सोच सकता था कि तुम आ सकती हो। बड़ी-बड़ी तकलीफें बर्दाश्त करनी पड़ीं! है न?'

'मालूम होता है, सारी बातों से आप वाकिफ हो गये !'

'हाँ, किसी-किसी तरह ।'

'तब तो आप मुझसे रञ्ज और रुष्ट होंगे !'

'क्यों !'

'इसलिये कि मैं भाग गई थी ।'

'यह तुम्हारा नहीं, तुम्हारी अवस्था का दोष था । खैर, अब आगे क्या होगा तैमुन्ना !'

'मरना, निश्चय जानो ।'

'यह मेरे साथ अन्याय होगा ।'

'मेरे साथ भी तो तुमने बड़ी इन्साफी ही की है, यह कह कर कि कभी अपनी जान न गँवाना ।'

रमेश इस पर विकल हो उठा, सचमुच उसने देखा, जीवन में यह भी मैंने एक अपराध किया, तैमुन्ना के प्रति; यह कह कर कि कभी आत्म-हत्या न करना । बराबर आग में जलती रहने वाली तैमुन्ना का जीवन, भला कैसा बीतता होगा ! और जान कर मैंने उसी में जलते रहने को कहा । अब भी चाहता हूँ, वह जलती ही रहे, जलती ही जाय । कुछ देर बाद उसने कहा, जो मैंने कहा है, उस पर तुम दृढ़ रहना तैमुन्ना !

बीच ही में तैमुन्ना जैसे बौखला गई । चिन्ता की जलती चिता में जलने वाले रमेश से कहा, मेरे साथ तुम्हारा यही इन्साफ है ! कुछ भी कहो, किसी भी हालत में मैं यहाँ से लौट नहीं सकती । सचमुच आदमी बन कर सोचोगे तो जानोगे, तैमुन्ना के लिये मर जाना ही अच्छा है । दुनिया के इस सिरे से उस सिरे तक आँखें फैलाओगे तो मालूम होगा, तैमुन्ना के लिये कहीं भी ठौर नहीं मिलने की । हैदर भैया भी ठीक कहता था, लानत है, तुम्हारी जिन्दगी पर ।

रमेश चुपचाप रोता हुआ सुनता चला गया । आधी रात के समय चाँद निकलने को हुआ । रमेश चुप बैठी हुई तैमुन्ना को देखने लगा । इस समय दोनों चुप थे । भविष्य का एक-एक क्षण दुःखद होगा, दोनों सोचते थे । रमेश

कभी सोचता, संसार के एक ऐसे छोर में तैमुन्ना को लेकर चला जाऊ जहाँ पर जाति-विजाति और समाज का कोई प्रश्न न उठता हो। दूसरे देश में जाना भी उसे कठिन ही लग रहा था। अपने ऊपर उसे इतना भी विश्वास न था कि वह यह समझे तैमुन्ना का पालन पोषण कर लूँगा, इस शक्ति का तो उसमें सर्वथा अभाव था। बिना हाथ-पैर हिलाये रोटी की समस्या हल नहीं होने की। और रोटी के लिये हाथ-पैर हिलाना, रमेश से हो नहीं सकता। साथ ही यह भी निश्चय है, सामने यों तैमुन्ना को मरने भी नहीं देगा। तैमुन्ना भले ही उसे दगा दे दे।

ऐसा ही कुछ सोच कर रमेश ने कहा, अच्छा, तैमुन्ना, मेरे साथ चलो, तो कैसा रहेगा!

तैमुन्ना का रोम-रोम काँप गया, बाप रे, हैदर कच्चे चबा डालेगा।

हैदर की कल वाली, जल्लाद की-सी आकृति नाचने लगी। उसे लगा, शायद फिर वह आ रहा है। वह रमेश में सिकुड़ गयी। उसने सान्त्वना के स्वर में कहा, यहाँ कोई नहीं है। और यदि हैदर आ भी गया तो, अब तुम्हीं नहीं, मैं भी मरूँगा।

तैमुन्ना संभली। भय खाते हुये उसने कहा, नहीं रमेश, अब जाने का नाम न लो। हैदर कहीं न कहीं पहुँच ही जायगा, और रेत-रेत कर मार ही डालेगा। देखो न, ये कल के घाव हैं। कहीं-कहीं तो आग में तपाई छड़ ने सट् से मांस को खींच लिया है।

रमेश ने व्यग्र हो कहा, रहने दो, तैमुन्ना, मैंने सब देख लिया। सच, चन्द्रमा के थोड़े से प्रकाश में तैमुन्ना को नीचे-ऊपर, सब जगह, रमेश ने देखा, और देख कर मौन हो गया। उसने निश्चय कर लिया, तैमुन्ना को लेकर अवश्य ही कहीं चल दूँगा, और तुरन्त। उसने कहा, कल मेरे साथ चलना होगा, तैमुन्ना!

'बड़ी मुश्किल है।'

'कोई मुश्किल नहीं। बोलो, तुम चल सकती हो! घाव की वजह से चलने में तकलीफ तो अवश्य होगी, फिर भी मैं जहाँ तक हो सकेगा, तुम्हारे आराम

का प्रयत्न करूँगा ।'

'मुझे आराम की परवा नहीं, हैदर की परवा है, उसी का डर है ।'

'इस समय वह कहाँ है ?'

'कहीं ढालने गया होगा या सिनेमा देखने ।'

'अच्छा, इसी समय या इसके कुछ पहले तुम यहाँ चली आना, जब वह ढालने गया हो । हम रात की गाड़ी से अपने जानते, अधिक दूर चलेंगे । यों यदि दुर्भाग्य, पीछे पड़ जायगा तो दूसरी बात है; किन्तु जहाँ तक चेष्टा रहेगी, दूर, बहुत दूर, जहाँ भरसक हैदर पहुँच न पाये ।'

'फिर भी डर लगता है ।'

'डर तो मुझे भी लगता है, किन्तु दूसरा उपाय भी तो नहीं है ।'

'हाँ, सो तो है ।'

'तो रहा न यही !'

'तुम कहते हो तो, यही रहा ।'

तैमुन्ना घर जा कर एक ओर पड़ गई । नींद तो हराम थी ही । सिर्फ करवटें बदल रही थी । कल की रात की प्रतीक्षा कर रही थी । इधर रमेश, सुरेश के रूम में बैठ कर एक पत्र लिखने लगा । पहले तो उसे रोना आ गया, जब यह देखा कि सुरेश के कपोल पर आँसू के चिह्न आ गये हैं । फिर कल के लिए निश्चित प्रोग्राम के अनुसार उसने सोचा, माता-पिता को इसका बड़ा क्लेश होगा, कि उनका लड़का ऐसा नीच, नालायक निकला, कि जिसका मुँह देखने पर प्रायश्चित्त करना होगा । जो भी हो, अपनी ओर से मुझे विश्वास दिला देना चाहिए । अब तक मेरे ऊपर उनका विश्वास था, आगे भी ऐसा विश्वास रहा तो सोच लेंगे, किसी खास परिस्थिति के आने से ही मुझे ऐसा करना पड़ा होगा, अन्यथा, उनका रमेश कदापि इतना बड़ा काण्ड नहीं खड़ा कर सकता ।

इसी उद्देश्य से उसने पिताजी के पास पत्र लिखा कि बाबू ! कालेज के जीवन में, विशेष कर अशोक भैया के जाने के बाद से मुझे अनेक विपत्तियों के साथ जूझना पड़ा है । आप जानते हैं, आदि से ही समाज-सुधार की ओर

मेरा ध्यान अधिक था। इसके परिणाम में कठिन से कठिन कष्टों का मुझे सामना करना पड़ा है। उसी सुधार की भावना से प्रेरित हो कर आज सब के जानने में एक भयङ्कर अपराध करने जा रहा हूँ, जिसका मुझे बड़ा से बड़ा दण्ड मिलेगा। एक विजातीय यवन युवती के साथ दूर जा रहा हूँ। पता नहीं कहाँ। मैं यहाँ रुक सकता था, पर समाज आप का सम्मान नहीं करता, समाज आप को प्रिय भी था; उसी की आप को परवा थी; अतः यहाँ रुकना मेरे लिए सम्भव नहीं था। मैं जानता हूँ, रमेश से आप को कभी सुख न मिला न मिलेगा। क्षमा करेंगे।—पत्र को तकिये के नीचे रख कर अपना सामान इकट्ठा करने लगा।

जिस किसी तरह रमेश ने आज का दिन बिताया। कुछ रात बीत जाने पर नौकर से यह कह कर कि आधी रात में स्टेशन पर सामान लाना, सुरेश को ले कर गङ्गा-तट पर गया। घण्टों, देर तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् उसने उदास, खिन्न तैमुन्ना को देखा।

'तुम आ गई?'

'हाँ, किन्तु चला नहीं जाता, बड़ा दर्द हो रहा है।'

'चलो, आगे ताँगा कर लिया जायगा।'

'यह कौन है?'

'आफत का मारा हुआ, दुनिया के पाप का एक फल।'

'मतलब?'

'किसी का लड़का है, जिसका पालन-पोषण मुझे ही करना है।'

'ऐसा क्यों?'

'पीछे कह लूँगा, पहले जल्दी चलो। दोनों साथ में सुरेश को लिए चल पड़े। सन्नाटे की रात थी। अब भय का कोई कारण नहीं था, फिर भी एक अज्ञात आशङ्का से दोनों काँप उठते, सिहर उठते। निरापद स्थान में भी तैमुन्ना को लग रहा था, पीछे से हैदर दौड़ा आ रहा है। चौकन्नी-सी इधर-उधर देखती हुई चली जा रही थी। रमेश ने स्वयं डरते हुए कहा, डरो नहीं; शायद वह इस समय नहीं आ पायेगा।

'उसका क्या ठिकाना, कहीं भी आ सकता है।'

'नहीं भाई, अभी उसे नहीं मालूम होगा।'

'कहीं मालूम हो गया तो!'

'इसके लिए बोलो क्या करूँ?'

'अच्छा है रमेश! खुदकुशी कर लूँ।'

'नहीं।'

'अच्छा तैमुन्ना, मैंने यह नहीं पूछा कि मेरे साथ चलने में तुम्हें इतराज तो नहीं है?'

'इतराज रहता तो, चलती क्यों! कितना अच्छा होता, शादी के पहले ही हम चल चुके होते।'

'खैर, अब पछता कर ही क्या होगा!'

'हाँ, सो तो है।'

१६

रमेश और तैमुन्ना, जीवन के अन्धकारमय भविष्य पर बिना सोचे ही कराँची के सुदूर प्रान्त में रहने लगे। कई दिनों तक न रमेश, तैमुन्ना से बोला, न तैमुन्ना, रमेश से। हृदय में जब एक दिन परिवर्त्तन हुआ, तब रमेश ने कहा, तैमुन्ना, जीवन-गाड़ी को खींचने के लिए हाथ-पैर हिलाना होगा न? नौकरी करने आती नहीं, फिर भी उसी की तो शरण लेनी होगी। हम दोनों भूखों भी कुछ दिन तक काट सकते हैं, पर बेचारे इस अबोध सुरेश के लिए तो कुछ करना होगा।

थोड़े से प्रयास पर ही रमेश ने अपनी विनम्र प्रकृति के कारण एक जगह नौकरी पा ली। जिस किसी तरह सन्ध्या आ कर रोटी पा लेता। तैमुन्ना ने भी सोचा, चलो, अब तो मेरे लिए रमेश ही सब कुछ है। सारी फिक्र दूर फेंक कर उसे सहारा दें। किन्तु जब कभी हैदर की आकृति का उसे ख्याल हो आता और वह चिल्ला पड़ती, रमेश, भाग जाओ; नहीं तो हैदर रेत देगा। आदमी

नहीं वह जानवर है, जानवर। इस पर रमेश समझाता, इस प्रकार डरने से कोई लाभ नहीं तैमुन्ना ! परिस्थिति आने पर पीछे वातावरण बदल जायगा, उसी के अनुकूल सब कार्य किया जायगा।

उधर हैदर पी कर शान्त हुआ तो उसे पता लगा, तैमुन्ना फिर भाग गयी। बहुत छान-बीन के बाद जब उसे यह पता लगा कि वह एक हिन्दू युवक, रमेश के साथ भागी है, तब आँखें चढ़ गईं, भौंहें तन गयीं, साँसें जोर से चलने लगीं। और वह चाहने लगा, चाहे जैसे भी हो कटार से लाद चीर कर ही रहूँ। एक हिन्दू की इतनी हिमाकत कि वह मेरी तैमुन्ना को भगा ले जाय। उस मरदूद को इतना पता नहीं कि हैदर इसके लिए उसे जीता न छोड़ेगा। खैर, अब तो खुदा भी शायद ही उसे बचायें। जिसकी जिन्दगी ही मार-काट में कटी, वह भला क्योंकर किसी की जान लेने में हिचके।

तैमुन्ना की अम्मा मारे भय के चुप थी। वह जानती थी, हैदर इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता, वह बिना बदला लिये छोड़ नहीं सकता। या अल्लाह ! गुनाह माफ कर, और तैमुन्ना की खैर कर, नहीं तो अब वह गयी, साथ-साथ नाहक में एक बेचारे बेकसूर नौजवान की भी जान चली जायगी। हैदर को भले ही मार डाल, पर उन दोनों को बचा दे।

अम्मा खाना-पीना छोड़ कर मन ही मन हाय-हाय कर तैमुन्ना और रमेश के लिये अल्लाह से दुआयें माँगने लगी। हैदर की लाल-लाल आँखों को देख कर चीख पड़ती, पर धीरे से। इसलिये कि कहीं मुझसे इसकी कैफियत न पूछने लगे। न बोलने पर मुझे भी वह मार सकता है। अपनी जिन्दगी की उसे कभी भी परवा न रही। हलाल करने में उसे कोई हिचक नहीं होती। अपने आगे वह किसी की कुछ नहीं सुनता। उसकी अपनी दलील है, उसका अपना दिल, दिमाग है। खुदा का भी उसे तनिक डर नहीं। गालियों से बातें करने वाले हैदर से कौन कुछ कहने की हिम्मत करे। किसके सर पर मौत नाच रही है ! लेकिन वे दोनों तो बेमौत मरे। शायद ही दोनों में से किसी की जान बचे।

घनी रात में हैदर आया। और चुप सो रहा। सुबह उठ कर एक भयावह छूरा कमर में छिपा लिया और रमेश एवं तैमुन्ना की टोह में निकल पड़ा।

उसकी माँ सब देखती रही। जब वह बाहर निकलने लगा, तब उसने उसका पाँव पकड़ते हुये कहा, मुझे जान से मार दे, लेकिन अभागी तैमुन्ना को न मारना।

'तू सामने से हट, नहीं तो तेरा भी सर उतार लूँगा।'

'ले, उतार ले, मगर तैमुन्ना का सर छोड़ दे।'

'भाग यहाँ से' कह कर हैदर ने ऐसी लात मारी कि वह दूर फेंका गई। फिर वह आँधी के झोंके में आगे बढ़ पड़ा। इस समय सिर्फ वह अपनी आँखों के आगे रमेश और तैमुन्ना को ही देखना चाहता। इसमें किसी बाधा स्वरूप वस्तु को नहीं चाह रहा था। उठी दावाग्नि का शान्ति होना, तब तक सम्भव न था, जब तक वह दोनों को हलाल नहीं कर लेता। तैमुन्ना अकेली जाती तो शायद उसकी ऐसी भयङ्कर अवस्था न होती, लेकिन वह एक जलील जात हिन्दू के साथ भाग गई, जो मेरा दुश्मन था। भाई के दुश्मन के साथ भागी दोस्त समझ कर, यही उसे असह्य हो रहा था। दीपक की बत्ती की लौ के समान वह घट-बढ़ रहा था। उसके विचार में तैमुन्ना ने वह अपराध किया है, जिसका कोई भी दण्ड नहीं। जो भी उसे दण्ड दिया जाय थोड़ा है। इसलिये कि वह एक हिन्दू के साथ भागी है। उसने हैदर, उसकी जाति का अपमान किया है। उसका क्या हक था, एक हिन्दू के साथ भागने का।

महीनों अनेक तकलीफें सह कर हैदर आगरा पहुँचा। सहसा वहाँ नासीर से भेंट हुई। जो कभी का थोड़ा परिचित था। रमेश के प्रति उसकी द्वेष की भावना थी, अमरावती को ले कर। प्रतिशोध की भावना उबल पड़ी, अतः वह भी उसके विनाश पर तुल गया। उसने हैदर के हृदय में रमेश के विपरीत ऐसी भावना बैठा दी कि वह और उग्र बन गया। प्रतिशोध की तप्त आग में झुलसने के कारण वह खाने-पीने को भी भूल गया। नासीर की बहुत कुछ सहायता से उसे अपने कार्य में लाभ हुआ। यद्यपि दोनों में से कोई यह नहीं जानता था कि रमेश या तैमुन्ना कहाँ हैं। किन्तु उनका अनुमान था, पश्चिम-दक्षिण की ही ओर वे गये होंगे। इसी ख्याल से नासीर ने हैदर को इधर ही बढ़ने की सलाह दी।

उह-आह में जिन्दगी की लम्बी-चौड़ी गाड़ी खींचता हुआ रमेश, तैमुन्ना और सुरेश, में अपने को भुला देना चाहता था, पर समाज की हठ-नग्नता पर सोचना वह नहीं भूला। अमरावती का दुःखद अन्त, तैमुन्ना का कष्टप्रद परिणाम, और दोनों को यहाँ तक पहुँचाने के कारण स्वरूप हिन्दू-यवन समस्या का निदान ढूँढ़ने पर भी न पा सकने के कारण कभी-कभी संसार, विशेष कर भारतीय समाज पर उसे बड़ा खेद था। वह चाहने लगता, तैमुन्ना, और सुरेश का गला घोंट कर समाज से प्रतिशोध लें, हैदर का सामना कर, एक ऐसे समाज की स्थापना करूँ, जो सब में समभाव का आरोप करे। मनुष्यता, सारी सबल सत्ता का माप दण्ड है, यह आदर्श का रूप ले कर, सब के सम्मुख हिमालय की तरह अडिग-अटल् खड़ा रहे। इसको हटाने वाले टकरा कर अस्तित्व विहीन हो कर ही रहें। पर इधर के निराशमय जीवन, जिसमें क्रान्ति का बहुत बड़ा हाथ था, बिताने की वजह नृशंसता से दूर भाग कर शान्त वातावरण की शरण लेना चाह रहा था। किसी भी दशा में तैमुन्ना और सुरेश को लुटते देखना, उसे इष्ट न था। विश्व के महा ऐश्वर्य की तुलना में भी दोनों को श्रेष्ठ समझता था। सब को त्याग सकना, उसके लिये कठिन नहीं है, पर इन दोनों को त्यागना, असम्भव है। यद्यपि अब भी जब कभी हैदर का उसे भय हो आता किन्तु जैसे प्रबल बल का अपने में आरोप पाता, और कह उठता, लड़ा भी जायगा, जीते जी, दोनों को विनष्ट होते नहीं देखा जा सकता।

इन्हीं विचारों में मग्न था कि तैमुन्ना ने कहा, जानते हो रमेश! कभी-कभी बिजली-सी कड़क उठती हूँ, उस समय जब हैदर का चेहरा याद आ पड़ता। खास कर हिन्दुओं को इतनी नफरत की निगाह से वह देखता है कि क्या कहूँ। मुझसे कहा करता था, दुनिया में हमारा सब से बड़ा दुश्मन, हिन्दू ही हैं। सारी फसाद की जड़, हिन्दू हैं, इसे कभी तुम मत भूलना। 'जाने दो हिन्दुओं में भी ऐसे कितने होंगे, जो मुसलमानों को इसी प्रकार कहा करते होंगे। इन दोनों के लिये कुछ कहना कठिन है।'

'इसके लिए हम कुछ कर नहीं सकते।'

'क्यों नहीं, मगर यों ही जान गँवाने से थोड़े कुछ होगा। बहुतों को

हमारी बात खिलवाड़ लगेगी ।'

'तब यों ही कब तक हम सिहो-सिहो जिन्दगी काटेंगे ।'

'देखो कब तक कटती है । इसके बाद तैमुन्ना चुप हो, कुछ सोचने लगी । निष्कर्ष पर पहुँचते न पहुँचते हैदर का भयङ्कर चेहरा नाचने लगा, तब एक गम्भीर साँस ले, एक ओर चली गई ।

सान्ध्य प्रकृति की गोद में तैमुन्ना, सुरेश के साथ टहलती हुई जा रही थी । विचार की कड़ियाँ जुटती जा रही थीं, किन्तु इस प्रकार मौन थी, जैसे निस्तब्ध रात हो । सुरेश आँ-आँ करता रह जाता, और वह चुप ही रहती । एक ओर से रमेश भी आ पहुँचा । तैमुन्ना की इस गति को देख उसने कहा, तैमुन्ना कहाँ जा रही हो ?

'कहीं नहीं ।' रमेश भी चुप हो गया । उसकी समझ में आ गया कि हैदर को याद करती होगी । उसकी जाने कैसी आकृति कैसा व्यवहार है कि वह डरती है ।

भविष्य के कई प्रकार की कल्पनाओं को स्थिर करता हुआ रमेश जब अपने दफ्तर में पहुँचा, तब सुना, लोग काना-फुसी कर रहे थे, उसी को ले कर । हिन्दू कह रहे थे, महा भ्रष्ट है । यवन कह रहे थे, हैवान है, धोखेबाज है, दुश्मन है ।

वह सोचने लगा, आज ये कन्नियाँ क्यों कसते हैं । व्यङ्ग के बौछार क्यों छोड़ रहे हैं । ये जान तो नहीं गये, तैमुन्ना यवन है, जो भाग कर मेरे साथ आई है । पर इन्हें पता कैसे लगा ! कहीं हैदर तो नहीं पहुँच गया है ! यह जानने के लिये चारो ओर दृष्टि दौड़ाना चाहता, पर सर ऊपर उठता ही न था । प्रश्न करने के लिये ओठ खुलते, पर उसी क्षण बन्द हो जाते । विवशता तो यह थी, कि वह दोनों का दुश्मन है । दोनों घृणा की दृष्टि से देखते । दोनों के जानते, उसने भयङ्कर अपराध किया था, फिर भी थोड़ी हिचक के साथ वह वहाँ गया, जहाँ उसका एक मित्र, क्लर्क था । उसने सङ्केत से कहा, आफिस बन्द होने पर ।

सारी उद्विग्नता को ढोता हुआ रमेश आफिस का कार्य करता रहा, या करने का बहाना करता रहा । सन्ध्या समय अपने मित्र क्लर्क के साथ, वह

एकान्त प्रान्त में पहुँचा। पूछने पर उसे पता लगा, तैमुन्ना के यहाँ से कोई शख्स आया है जो उसके विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करता है। यवनों में इसकी बड़ी चर्चा हो रही है। हिन्दुओं को भी वह अपने में मिला लेना चाहता है।

रमेश के साथ क्लर्क की गहरी और सच्ची सहानुभूति थी। रमेश की प्रकृति से वह परिचित था। उसने सान्त्वना भी दी, मैं तुम्हें, और तुम्हारी तैमुन्ना को बचाने का प्रबल प्रयत्न करूँगा।

भय और आशङ्का के आवरण में अपने को छिपाता हुआ रमेश इधर-उधर दौड़ लगा रहा था कि एक आफिस-कर्मचारी सदीक से भेंट हुई। वह कुछ राष्ट्रीय प्रकृति का था। तैमुन्ना और रमेश की कहानी सुन चुका था। जाति-समस्या दूर करने के पथ में था। उसने रमेश से कहा, घबराओ नहीं, मैं हमेशा हर तरह से तुम्हारी मदद करूँगा।

रमेश पता नहीं, इन बातों को सुन रहा था या नहीं। हाँ, हुँ, करता हुआ बढ़ा जा रहा था। इस समय उसकी आँखों के आगे तैमुन्ना का भराया चेहरा, और सुरेश की विवश करुण आकृति नाच रही थी। सोचता, भाग जाऊँ, पर कहाँ, कब ! और कब तक ! क्या वहाँ हैदर नहीं पहुँच सकता है ! फिर अमरावती की अमानत की रक्षा कौन करेगा ! तो क्या धरता रहूँ ! हाँ, यही ठीक होगा।

पिता जी के पास उसने तार दिया। डेरा आने पर उसने तैमुन्ना से कुछ नहीं कहा। केवल बड़ी-बड़ी साँसें छोड़ता हुआ करवटें बदल रहा था कि तैमुन्ना ने कहा, यह उदासी, यह घबराहट, यह बेचैनी काहे की !

रमेश स्थिर नयनों से उसकी ओर देखने लगा। तैमुन्ना की आँखों में मानो कई प्रश्न नाच रहे थे। कुछ देर चुप रह कर उसने कहा, अच्छा, तैमुन्ना, इस समय यहाँ हैदर आ जाय तो !

'कौन, हैदर !' वह गिरने-गिरने को हुई कि रमेश ने सँभाल लिया।

'अरे, कुछ नहीं, मैं तो यों ही कह रहा था। उठो, चलो, सुरेश शायद तुम्हें खोज रहा है।'

'यों ही हैदर का नाम न लिया करो, मैं डर से भी मर जा सकती हूँ।'

२०

हैदर दूर एक जगह कटार लिये बैठा था। कभी सोचता, दोनों को मार दूँ, कभी सोचता, नहीं, केवल उसी हरामजादे को। इतने बड़े फसाद की जड़, वही है। तैमुन्ना को छोड़ दूँ, मगर वह आई क्यों! अपने दुश्मन के साथ!

इसी समय सदीक पहुँचा। उसने हैदर को समझाया, बेकार के लड़ने, और हम-हम, तुम-तुम करने से कोई फायदा नहीं। दुनिया में सिर्फ इन्सानियत, सब से बड़ी चीज है। इस खून-खतरे से कोई फायदा नहीं। मस्जिद-मन्दिर, कभी दो पहलू नहीं हैं। सब की मखसद एक है, सब की सफर एक है। यों बेकार की बगावत न करो। जिन्ना हों या सावरकर सब को अपनी-अपनी जगह रहने दो पर हम तो दोनों में से कुछ नहीं। एक गाछ के हम कई फल हैं। हम रहीम को जानते हैं, वे राम को। हम कुरान पढ़ते हैं, वे पुराण। बस इसी फर्क को ले कर हम लड़ते-झगड़ते रहें, यह ठीक नहीं इससे यकीनन कुछ नहीं सधेगा हैदर! अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मारने से तुम्हारा ही नुकसान होगा।

हैदर जैसे यह सब सुनने के लिए तैयार न था। वह एक ओर चला गया। सदीक इसे बर्दाश्त न कर सका। वह भी जाने क्या सोच बड़ी तेजी से एक ओर बढ़ गया।

रमेश आज आफिस नहीं गया। तैमुन्ना को बार-बार इसका कारण पूछने पर भी नहीं बताया। बहुत माथा-पच्ची करने पर भी तैमुन्ना की समझ में कुछ नहीं आया। कितनी बार दोनों की इस स्तब्धता पर सुरेश रो कर रह गया। रसोई भी नहीं बन पाई है। जब रमेश को यह मालूम हुआ तब सुरेश के लिए कुछ लाने को सोचने लगा। इसी विचार से कुछ दूर वह बढ़ा ही था कि देखता है, कुछ संख्या में लोग उसी ओर बढ़े आ रहे हैं। एक वैसे व्यक्ति को भी देखा जिसकी आँखें लाल थीं, भौंहें चढ़ी थीं। सदीक क्लर्क भी थे

और जो कौन-कौन थे। उससे न भागते बन पड़ा, न कुछ कहते ही। हैदर पहचाना गया। आगे आ कर उसने कड़े स्वर में पूछा, मेरी तैमुन्ना कहाँ है?

वह चुप रहा। तैमुन्ना यों हल्ला सुन कर खिड़की से झाँकने लगी। हैदर को आगे बढ़ते देख, उसके होश उड़ गये। जाने क्यों सोच बिजली-सी दौड़ पड़ी। हैदर और रमेश के बीच आ खड़ी हुई, यह कहती हुई कि भैया! सब कसूर मेरा है, यह बेदाग है। तुम इसे न मारो। खुदा की निगाह में भारी गुनाह होगा, रहम करो, भैया, रहम करो। 'अबे हट रहम की बच्ची। खानदान को मिट्टी में मिला कर, हरामजादी को शर्म भी नही आती'।

इस बार रमेश ने कहा, हैदर, जरा सोचो भी, किसी की जान ले कर क्या करोगे! हिन्दू-मुसलमान में कोई फर्क नही।

हैदर ने गुरेरते हुये तैमुन्ना को अलग कर तीखे कटार को रमेश में हला दिया। तैमुन्ना दौड़ी कि उसे भी किसी ने घायल किया। हैदर की आँखें आग उगल रही थी। वह भागना ही चाहता था कि सदीक ने उसके पैर में छुरा मार दिया। रमेश में हैदर जब कटार हलाने लगा तब वहाँ सदीक पहुँच ही रहा था कि किसी के छुरे से घायल हो कर गिर पड़ा और रमेश को नहीं बचा सका।

भीड़ जमा हो चुकी थी। तैमुन्ना ने कराहते हुए कहा, बस, हो गया! इतने ही के लिये बेचैनी थी। इसी के लिये इतना परेशान थे! लानत तुम्हारी जिन्दगी पर, इस करतूत पर। लाख समझाने पर भी, तुम्हारी समझ में नहीं आया, एक खुदा के हम कई औलाद हैं।

हैदर गिर पड़ा था। तैमुन्ना की आँखों में दर्द के आँसू थे। कराह और लाचारी स्वर में जो कुछ वह कह रही थी, उसे बड़े ध्यान से सुन रहा था। पीछे की ओर जाता तो लगता मैंने अपनी जिन्दगी में सिर्फ गुनाह ही गुनाह किये हाँ, ठीक ही तो एक खुदा के सभी औलाद हैं। रमेश-तैमुन्ना दो थोड़े ही लेकिन अब! हाँ, अब!!

रमेश में अभी प्राण थे। हैदर की आँखों में उसने आँसू देखा। जैसे वह कुछ भूल गया। हँसी भी आ गयी। धीमे स्वर में उसने कहा, हैदर!

हैदर ने कहा, रमेश ।

उधर तैमुन्ना मुस्कुरा ही रही थी कि कराह कर चल बसी । हैदर, रमेश के मुख से एक ही साथ ही निकला, तैमुन्ना ! तैमुन्ना ! !

ठीक इसी समय रमेश के पिता पहुँचे । अपने रमेश को देख कर रो पड़े करुण स्वर में उन्होंने कहा, मेरा ही अपराध था, रमेश ! मैं जीवन भर इसका दन्ड भोगूँगा ।

'अपराध कैसा बापू ! मुझे दुःख है, आप के कुल का मैं [illegible]

'नहीं बेटा, एक दीप थे, ज्योति थे, चन्द्र थे ।'

रमेश के कानों ने सुरेश के रोने के स्वर सुने । उसने सक्तेतिक ! बापू !

बापू सब समझ गये । सुरेश अब उनकी गोद में था । रमेश ने कहा, अब आप का यही रमेश रहा ।

थोड़ी देर बाद बड़ी पीड़ा से उसने अपनी मन्जिल तय की; यह कह कर कि अशोक भी तो चला ही गया है ।

सदीक ने भी हैदर के मुख से सुना, तुम ठीक ही कह रहे थे । गांधी मेरे ही थी । हिन्दू मुसलमान में कोई फर्क नहीं, कोई भेद-भाव नहीं ।

सब एक हैं, हाँ .....ए .....क ..

जीवन का प्रायश्चित समाप्त हो चुका था । वह क्यों रुकता ! भीड़ [illegible] थी । सब की आँखों से दरिया बह रही थी, बही जा रही थी ।

रमेश के पिता सुरेश को रमेश कह कर लिये चले जा रहे [illegible] ही जा रहे हैं ।